जीवन की आवश्यकतायें

कवि विनोद वैद्यभूषण
पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य
आविष्कारक अमृतधारा, लाहौर।

प्रथम बार १०००] [मूल्य १॥)

॥ ओ३म् ॥

जीवन की आवश्यकतायें
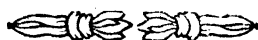
लेखक

अमृतधारा के आविष्कारक, देशोपकारक के सम्पादक

तथा अनेक वैद्यक पुस्तकों के लेखक

कवि विनोद वैद्यभूषण पं० ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य

पं० हीरानन्द शर्म्मा मैनेजर देशोपकारक पुस्तकालय

ने

पं० ईशरदास भार्गव के प्रबन्ध से अमृत इलेक्ट्रिक प्रेस में

छपवा कर अमृतधारा भवन, अमृतधारा रोड,

लाहौर से प्रकाशित किया।

प्रथम संस्करण] १९३१. [१,०००

प्रस्तावना

स्वास्थ्य रक्षा के सम्बन्ध में आजकल संसार की लगभग सब भाषाओं ही में ऐसी लाभदायक और सरल पुस्तकें लिखी जा रही हैं जो साइंटिफिक विषय को सर्व साधारण के लिये बहुत सरल करदें जिससे प्रत्येक व्यक्ति सोच समझ कर स्वास्थ्य को बनाने वाले नियमों का पूर्णतया पालन करे। किन्तु हमने जो पुस्तकें लिखी हैं उनमें यह बात स्पष्ट है कि हमने प्रत्येक विषय पर किसी एक ही विचार को लेकर नहीं लिखा है वरन प्राचीन और आधुनिक ज्ञान और विचारों की नींव पर सविस्तर विवाद किया है जिस से उसमें अधिक मनोरञ्जन की सामाग्री एकत्रित हो गई है और पढ़ने वालों के लिये बहुत जानकारी का विषय आगया है। जीवन की आवश्यकताओं में वैद्यक, यूनानी और डाक्टरी तीनों विधियों से ही वर्णन किया गया है और हमें आशा है कि पाठक गण इसको अन्य पुस्तकों से जिनमें केवल डाक्टरी अथवा केवल हिन्दुस्थानी मत के अनुसार ही लिखा जाता है बहुत अच्छा पायेंगे।

स्वास्थ्य रक्षा की किसी पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ जाने ही से कुछ लाभ नहीं हो सकता। इससे लाभ प्राप्त करने के लिये आवश्यकता इस बात की है कि इस के विषय को मन में जमाया जाये और दैनिक जीवन में इनके अनुसार कार्य्य किया जाये। इससे न केवल अपना स्वास्थ्य बनता है वरन् उत्तम राष्ट्रीय स्वास्थ्य की नींव पड़ती है। मुझे आशा है कि पाठक इस बात को न भूलेंगे।

ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य

जीवन की आवश्यकतायें

स्वास्थ्य लाभ करने और स्थिर रखने के लिये मनुष्य को कुछ न कुछ ज्ञान सर्वदा प्राप्त करते रहना चाहिये। जिन पाठकों ने हमारी लिखी पुस्तकें "ऋतुचर्य्य" "दिनचर्य्य" "आहार" "क्या मैं स्वस्थ हूं ? स्वास्थ्य और दीर्घ आयु का भेद"। "भारतवासियों की शारीरिक निर्बलता और उसके दूर करने का उपाय" "जीवन शक्ति" "मीठी नींद" इत्यादि पढ़ी हैं उन के लिये यह एक और पुस्तक लिखना चाहते हैं जो जीवन की आवश्यकताओं पर पूर्ण प्रकाश डालेगी।

जीवन के लिये क्या क्या आवश्यकतायें हैं और उन की कितनी और कैसी आवश्यकता है, उन का अच्छा वा बुरा उपयोग क्या है इन सब बातों का वर्णन इस पुस्तक में किया जायेगा।

जीवन विषयक आवश्यकताओं में सब से प्रथम स्थान वायु का है। वायु के बिना एक क्षणमात्र भी कोई जीवधारी नहीं रह सकता है। दूसरा दर्जा जल का है। जल के विना भी हमारा जीवन थोड़े दिवसों से अधिक नहीं रह सकता है। अमरीका में डाक्टर सिंकलेयर ने ६० दिवस तक का लङ्घन किया है, और कोई आहार नहीं खाया, परन्तु जल का त्याग उसने भी नहीं किया था॥

जीवन के लिए तृतीय आवश्यक वस्तु अन्न है। इनके अतिरिक्त जीवन विषयक जो अन्य आवश्यकताएं हैं, वह इन से उतर कर हैं, यद्यपि जीवन का उन पर भी बहुत कुछ आधार है। परन्तु कहां तक है ? इसकी कोई सीमा नियत नहीं है। वह आवश्यकताएं यह हैं, शयन व जागृति काम व आराम. रोकना व छोड़ना, मनोविकार, इन सब की व्याख्या क्रमशः होगी। अब सब से प्रथम हम—

वायु का वर्णन

आरम्भ करते हैं। वायु मानुषी जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। वस्तुतः प्रत्येक जीवधारी वायु में ही जीवित रह सकता है, अग्नि का प्रज्वलित होना भी वायु पर ही निर्भर है। यदि

किसी कमरे की वायु को हम निकाल लें, तो उस में जो जीवधारी प्रविष्ट किया जावेगा वह मर जावेगा। वायु प्रत्येक स्थान में हमारे चहुंदिश आगे पीछे दहिने, बायें, उपर, नीचे, वर्तमान है। यह निराकार वस्तु है, परन्तु भार इसका भी होता है। इसके भार का अनुमान लगाया गया है, कि एक इञ्च भूमि के ऊपर साढ़े सात सेर वायु का भार होता है। यह इस से भी अधिक बोझल होती, यदि यह ऊपर बहुत हल्की तथा न्यून न होती जाती। ऊपर चढ़ते २ हम ऐसे स्थान में जा सकते हैं कि जहां वायु न हो और श्वास घुट कर मर जावे। इतना भार होने पर भी हर समय हम दबते नहीं जाते हैं। इस का कारण यह है, कि हमारे चहुं ओर वायु वर्तमान होती है। जिस प्रकार पानी में डुबकी लगाने पर यद्यपि सैकड़ों मन पानी के नीचे मनुष्य दब जाता है, परन्तु चारों ओर ऊपर नीचे पानी होने से उसका भार मालूम नहीं होता है इसी प्रकार वायु के भीतर भी हम फिर रहे हैं। स्कूल में जब हम पढ़ा करते थे, तो एक तजरुबा किया करते थे, कि पियालों को जोड़ देते। उनके भीतर बाहिर वायु होने से वह सहज में अलग २ होजाते। परन्तु जब उन्हीं प्यालों को जोड़कर एक मैशीन द्वारा उनके भीतर की वायु खींच ली जाती थी, तो बाहिर की वायु का उन पर पूरा भार पड़ता और बाहिर की वायु भीतर घुसना चाहती। उस समय दो तीन लड़के एक पियाले को और दो तीन लड़के दूसरे पियाले को अपनी २ ओर खींचते परन्तु वह अलग न होते थे। पियाला या कूज़ा लगाने का भी यही नियम है, कि एक कूज़े में कुछ अग्नि प्रज्वलित करते हैं, जिस से उसके भीतर की वायु लघु होकर निकल जाती है और कुछ जलाने के काम आती है, जिस से यह और भी थोड़ी होजाती है। तब शरीर के किसी स्थान पर रखने से, वह कूज़ा उस पर चिमट जाता है। अभी उस वायु में न्यूनता ही होती है सर्वथा कूज़ा रिक्त नहीं होता। यदि सर्वथा रिक्त हो, तो शरीर पर उसका इतना अधिक भार और आकर्षण हो, कि शरीर सहन न कर सके। डाक्टर कूज़े के स्थान में गिलास लगाते हैं। उस गिलास के ऊपर रबड़ का थैला सा बना होता है जिसको दबाते हैं, तो वायु उस में से निकल जाती है।

फिर शरीर के किसी भाग पर इसको रख कर उस रबड़ के थैले को ढीला कर देते हैं। गिलास की वायु उस थैले में चली जाती है। मानो यहां वायु न थी, वह स्थान भी इसी वायु को पूरित करना पड़ा। वह बाहिर की अपेक्षा कम है, इस वास्ते खिचाव होजाता है। नेत्रों में दवाई डालने के ड्रापर के पीछे की रबड़ को दवाकर दवाई में डुबो कर पीछे ढीला करते हैं, तो औषधि भर जाती है। वहां भी वायु है। ऊपर की वायु कम होने से बाहिर की वायु भीतर जाना चाहती है, तो खिचावट होती है जिससे पानी ऊपर चढ़ जाता है। इसी वास्ते वायु को सब से प्रबल माना है॥

जिस वायु में हम रहते या स्वांस लेते हैं, वह एक ही अमिश्रित वस्तु नहीं है, बरन् चन्द गैस मिले हुए हैं। वायु, हवा बाद, एयर (air) इत्यादि शब्द इसी मिश्रित वायु के लिये उच्चारण किए जाते हैं, और पृथक २ हर एक को वैज्ञानिक लोग गैस कहते हैं॥

इस वायु मण्डल में अधिकांश गैसें हैं। एक का नाम आक्सीजन है, जिस पर प्रत्येक जीवधारी का जीवन निर्भर है। परन्तु यह लगभग २१ प्रति सैकड़ा इस वायु मण्डल में होती है। (२०-२१) का पूरा अनुमान है। दूसरी गैस जो आक्सीजन (Oxygen) की तेज़ी को कम करती है, वह नाइटरोजन (Nitrogen) है। यह वायु मण्डल में ७६-६५ प्रति सैकड़ा है मानो यह दोनों गैसें १०० में ६८ या ६७ दर्जा तक होती हैं, और केवल दो या अढ़ाई दर्जा अन्य वस्तुयें हैं। कारबोनिकऐसिड गैस जो कि विषैली गैस है और हमारी श्वासादि से उत्पन्न होती है, उसकी मात्रा शुद्ध वायु में ·००४ प्रति सैकड़ा होती है अर्थात् दश सहस्र भाग में ४ भाग॥

सन् १८६४ ई० में एक और वस्तु गैसवत वायु में मालूम हुई, जिसका नाम (Argon) आरगन है, जो एक प्रति सैकड़ा वर्तमान है। इन गैसों के अतिरिक्त जल वाष्प सदैव न्यूनाधिक मात्रा में वर्तमान होती है। इस में बनस्पति परमाणु खनिज लवण, नौशादर, शोरा आदि कई वस्तुओं के परमाणु पाए जाते हैं, और एक वस्तु जो जीवधारियों के जीवन में बहुत गुणकारी प्रभाव रखती है, वह (Ozone) ओज़ोन है। इनका थोड़ा २ वर्णन हम अवश्य करेंगे॥

आक्सीजन ।

आक्सीजन एक बेरंग, गन्ध और स्वाद रहित गैस है, जो कि अकेली समस्त वायु मण्डल से कुछ अहित होती है । वायु मण्डल में २०$\frac{३४}{१५}$ भाग आक्सीजन वर्तमान रहती है, और तजरुबों से यह सिद्ध हो चुका है कि वायु में इतना अंश जीवधारियों के भीतर जाकर उनके रुधिर को साफ करने और कारबन के परमाणु जलाने के वास्ते पर्याप्त है । ऐसी वायु किसी कमरे में कृत्रिम बनाई गई जिसमें आक्सीजन का अंश बहुत अधिक रक्खा गया, तो उसने मानुषी शरीर पर कोई अधिक प्रभाव नहीं किया । वही परिणाम उस से उत्पन्न हुए जो साधारण वायु मण्डल में होते हैं । आक्सीजन संसार की बहुत सी वस्तुओं के भीतर वर्तमान हैं । ९ पाउण्ड पानी में ८ पाउण्ड आक्सीजन होती है और १ पाउण्ड हाईड्रोजन, चाकादि कई वस्तुयें हैं । अर्द्ध आक्सीजन होती है । हमारे रक्त के भीतर उसका बहुत सा भाग है । इसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते । इसके द्वारा हम श्वास लेते हैं, इसी के द्वारा आग जलती है, प्रकाश होता है । यही सलफ्यूरिक एसिड की बनावट में सम्मिलित होती है, यही अंगूरों की मदिरा बनाती है । इसी के द्वारा पुष्पों को सुन्दर रंग मिलते हैं, और फल पकते हैं ।

यह १०० भाग पानी में ३ भाग तक घुल जाती है, अर्थात् पानी की बनावट में तो सम्मिलित है परन्तु उसके अतिरिक्त ३ प्रति सैकड़ा वैसे ही पानी में घुली रहती है । इसी वास्ते खुली वायु के पानी अधिक गुणकारी होते हैं. कई वस्तुयें इसके साथ मिलते ही जलने लगती हैं, यथा फास्फोरस और लोहे व सीसे पर भी इसका प्रभाव देखा जाता है । एक बोतल में जिस में आक्सीजन पर्य्याप्त हो, थोड़ा महीन लोह चूर्ण, या नाग चूर्ण डालकर अंधेरे में हिलावें, तो मालूम होगा कि उस से चिनगारियां निकल रही हैं, हमारी बहुत सी भस्में आक्सीजन के द्वारा बनती हैं । जस्त को अग्नि पर गरम करके हिलाकर जो भस्म बनाते हैं उसमें वायु से आक्सीन भी सम्मिलित होकर उसको भस्म करती है । पारा को तीव्र अग्नि देर तक देते हैं, इस प्रकार कि वह उड़ न जावे, परन्तु ताज़ी

वायु उसमें सम्मिलित होती रहे. तो उस से लाल रंग की पारद भस्म तैयार होती है, जिसको रेडआकसाईड आफ़ मरकरी कहते हैं,। बाज़ी वस्तुओं पर अपने आप प्रभाव होता रहता है और उनकी भस्म या आक्साइड (आक्सीजन मिला हुआ) बनती रहती है, परन्तु सीसा के साफ़ चमकते हुए टुकड़े को वायु में रख दें, तो थोड़ी देर पीछे आक्सीजन के मिलने से एक महीन तह आकसाइड की हो जाती है। लकड़ी पड़ी २ जो गल जाती है, तो इस पर आकसीजन मिलकर ही इसको भस्म बना रही है। जब आक्सीजन किसी वस्तु के साथ मिलती है, तो आकसाइड बनती है। आक्सीजन मिलने से भार बढ़ जाना चाहिए। लड़की जब जलती है. तो राख शेष रह जाती है, वह बहुत लघु होती है, वास्तविक उसके भीतर से आक्सीजन व कारबानिक मिलकर कारबानिक एसिड गैस बन कर निकल गई है, पानी के परमाणु वाष्प बन कर निकल गए हैं। सब वस्तुओं को एकत्र किया जावे तो भार अधिक होगा। पारा को वायु में गरमी पहुंचा कर जो रेडआक्साइड आफ़ मरकरी बनाया जाता है, तो उसमें कोई वस्तु बाहिर नहीं निकलती। इस वास्ते भार अधिक हो जाता है। हम जो श्वास लेते मैं, और जितनी वायु भीतर प्रविष्ट करते हैं, उसके अधिक श्वास के साथ कारबानिक एसिड गैस, जलकण आदि बाहिर आते हैं। जो भस्में भस्म होने के पश्चात् हल्की हो जाती हैं, उनमें से कोई न कोई वस्तु निकल जाती है. आक्सीजन सर्व जीवधारियों के जीवन की हेतु है। इसकी अत्यन्त शुद्धावस्था का नाम—

ओज़ोन Ozone

है। अब तो यह विचार होता है, कि किसी वायु में ओज़ोन अधिक हो, उतनी ही वह अधिक जीवन तथा बल दायक होती है। तजरुबों के पश्चात् ज्ञात हुआ है कि आक्सीजन वायु के प्रत्येक परमाणु को यदि २ भाग से बना हुआ समझें तो ओज़ोन ३ भाग बना होता है। अर्थात् आक्सीजन की किञ्चित जमी हुई दशा ओज़ोन है। ३ भाग आक्सीजन, बराबर २ भाग ओज़ोन उसके भीतर एक भीनी सी विशेष गन्ध होती है, जिसको हम शब्दों में वर्णन नहीं कर सकते।

खुले मैदानों में अत्यन्त सावधानी से इसको समझ सकते हैं फ़ास्फ़ोरस की एक सीख को शीतोष्ण पानी में डाल देवें थोड़ा सा भाग उसका बाहिर रहे उस समय एक प्रकार की गंध आती है, जो ओज़ोन के उत्पन्न होने से आ रही है इसको समझ लो, एक गिलास में ज़रा सा ईथर डाल दें और सीख गरम करके ईथर के पास ले जावें, और ईथर को छूने लगें तो उस समय भी ओज़ोन उत्पन्न होगी। किसी बिजली की मैशीन को जब चलाना आरम्भ करें, तो उस समय भी ओज़ोन की सी सुगन्ध आती है। आकसाईड करने का काम ओज़ोन की अपेक्षा आक्सीजन बहुत शीघ्रता से करती है। सड़ी हुई घास फूस और पाश्विक वस्तुओं को बिना किसी संशोधन के निर्विकार बना देती है।

यदि यह वायु के भीतर अधिक मात्रा में हो तो इस वायु में श्वास लेने से नरम झिल्लियों पर कुछ खराश सी होती है। यह इसी आकसाइड करने की शक्ति की अधिकता के कारण से है। ओज़ोन समुद्रों की तह पर और किनारों पर इस वास्ते अधिक होती है, कि पानी की वाष्प बनने के समय यह उत्पन्न होती है। इस वास्ते समुद्र की ओर से आई हुई समुद्र के किनारे की वायु को स्वास्थ्य दायक कहते हैं। प्रकृति में जो बिजली है, वह भी इसको उत्पन्न करती है। इसी वास्ते यदि समीप ही बिजली ज़ोर से चमके तो उसके पीछे यह वहां उत्पन्न होती है। पहाड़ों के ऊपर भी यह अच्छी मात्रा में होती है, और चील के वृक्षों के पास अधिक देखी गई है। इसी वास्ते स्वास्थ्य स्थान (Sanitorium) ऐसे पहाड़ों पर बनाते हैं, जहां चील के वृक्ष हों। शहरों की वायु में तो यह होती भी नहीं है। शहरों के समीप बागों तक में अनुसन्धान किया गया परन्तु ओज़ोन नहीं मिली है। हां! बरफ़ानी ओर की वायु चले तो कुछ ओज़ोजन का पता लगता है। शहर की ओर से वायु आवे तो ओज़ोन को लेशमात्र भी नहीं होती, तत्ववेताओं ने वर्णन किया है, कि जब वायु के भीतर ओज़ोन होती है, तो उसमें श्वास लेने से चित पर अत्यन्त आनन्द जनक और स्वास्थ्य दायक प्रभाव पड़ता है। आलस्य मिट कर फ़ुर्ती आती है। अनुसन्धान कर्त्ता जिन बागों में अनुसन्धान करते थे, जब

इस प्रकार का उनके हृदय पर प्रभाव होता, तो वह समझ लेते कि अब ओज़ोन वर्तमान है, और अनुसन्धानों से ऐसा प्रमाणित हो जाता है।

वायु के ७ लाख भागों में एक भाग ओज़ोन मिले तो यह पर्याप्त मात्रा समझी जाती है, क्योंकि साधारणतयः इस से कम मिलती है। वायु में ओज़ोन की वर्तमानता जानने के कई उपाय हैं, परन्तु साधारण जनों को इस में ऐसी मनोरञ्जकता न होगी, इसलिये इस को परित्याग करते हैं॥

नाइटरोजन

नाइटरोजन बिना रंग, बेस्वाद बिना गन्ध गैस है, जो कि वायु मण्डल में लगभग प्रति सैकड़ा ७९.३% वर्तमान है मानो वायु के भीतर सब से अधिक मात्रा इसी की है। नाइट्रिक एसिड (तेज़ाब शोरा), नाईटर (शोरा) आदि में इसकी मात्रा अधिक है, इस वास्ते इसका नाम नाईट्रोजन रक्खा गया है। शोरा में १३ प्रति सैकड़ा (भारानुसार) नाईटरोजन होती है। यह संसार की बहुत सी वस्तुओं में सम्मिलित है। हमारे मांस में भी इसका बहुत सा भाग है। जिस आहार में मांसोत्पादक परमाणु बहुत हों उसको नाइटरोजन वाला आहार कहते हैं। नाइटरोजन वायु आक्सीजन की तेज़ी को कम करता है। न यह श्वास लेने में सहायता देती है न आग जलाने के काम आती है, न स्वयम् जल सकती है, परन्तु इसके मिश्रित योग बड़े काम के हैं, यथा शोरा आदि। नौशादर भी नाइटरोजन व हाईडरोजन का बना होता है। जब आहार का वर्णन आवेगा तो हम बतलावेंगे कि नाइटरोजन हमारे शरीर के लिए कितनी आवश्यक है।

हाइडरोजन

हाइडरोजन गैस सब से लघु है। इस से अधिक हल्की वस्तु संसार में कोई नहीं है। यह बेरंग, बे स्वाद जलने वाली गैस है। आक्सीजन के साथ मिलकर इस से पानी बनता है। यह वायु मण्डल में वायु के साथ वर्तमान नहीं होती, इस वास्ते इसका वर्णन यहां नहीं किया जाता॥

कारबानिक ऐसिड गैस

यह भी अल्प मात्रा में सदैव वायु में वर्तमान रहती है। यह जीवधारियों के लिए हानिकारक है, अतः इसको वायु में अधिक बढ़ने नहीं देना चाहिए। उत्तम वायु में दस सहस्र भाग में ४ भाग वर्तमान होती है, और ऊंचे पहाड़ों पर से वरन् बेलून में उड़कर इस से भी ऊपर से ली हुई वायु में लग भग इतनी मात्रा पाई गई है। परन्तु इसकी मात्रा घटती बढ़ती अवश्य रहती है और पृथक स्थानों में पृथक होती है। तंग कमरों घनी बस्तियों में बहुत अधिक होती है। संसार में हर समय कारबानिक एसिड गैस उत्पन्न होती रहती है। जीवधारी जो श्वास लेते हैं, वह आक्सीजन भीतर खैंचते हैं, और कारबानिक एसिड गैस उनके श्वास से निकलती है। मानुषी पाश्विक और उद्भिद् वस्तुयें सड़ कर कारबानिक एसिड गैस उत्पन्न करती हैं। जितनी अग्नि जलाई जाती है, या तैल व गैसादि के लैम्प जलते हैं उन से कारबानिक एसिड गैस उत्पन्न होती है, परन्तु गैसों में फैल कर मिलने की ऐसी खूबी है, कि कारबानिक एसिड जो उत्पन्न होती है वह सब वायु से मिलकर एक जगह बुरा प्रभाव नहीं कर सकती, सिवाय इसके कि स्थान बन्द हो। आप किसी पानी के टब या तालाब में कोई रंगीन वस्तु या थोड़ा सा दूध फेंक दें, तो आप देखेंगे कि वह शीघ्र उसमें फैल जाता है, और अधिक मात्रा में मिलकर लुप्त सा हो जाता है। उससे भी अधिक शीघ्रता से गैस फैलती है। हम जो श्वास निकालते हैं, वह शीघ्रता से सम्पूर्ण वायु मण्डल में फैलना आरम्भ कर देती है और हमें उसी समय श्वास लेते हुए शुद्ध वायु मिल जाती है, अन्यथा घोर कष्ट होता है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण वृक्ष व पौदे भी वायु को शुद्ध करते रहते हैं जिसका सविस्तर वर्णन किया जावेगा।

समुद्र भी कारबानिक एसिड गैस को कम करने के हेतु हैं। ज्यों ही कि कारबानिक ऐसिड गैस की मात्रा नियत सीमा से बढ़ जावे, तो पानी के भीतर कारबोनेट आफ़ लाइम और मैगनेशिया जो वर्तमान होते हैं इसके साथ मिलकर इनको बाईकारबोनेट (या दुगना कारबोनेट, कम कर देते हैं। बाई कारबोनेट पानी में घुल जाने वाली

वस्तु है जिस से कारबानिक ऐसिड गैस की मात्रा कम हो जाती है ॥

डाक्टर फ़ौडर ने एक विचित्र बात वर्णन की है, कि भूमि के ऊपर की तह कारबानिक ऐसिड गैस की मात्रा को कम करने में सहायता देती है। गीली मिट्टी वायु से कारबानिक एसिड गैस को शोषण करती है, यद्यपि वह स्वयम् अधिक कारबानिक एसिड गैस को निकालती है। कारबानिक एसिड गैस भारी है, इस वास्ते पहाड़ों पर कम होती है, समुद्र में अधिक होती है। कहते हैं, कि वायु मण्डल में साधारणतयः कारबानिक एसिड गैस प्रारम्भिक ग्रीष्म में अधिक और हेमन्त के अन्त में कम होती है ॥

कारबानिक एसिड गैस संसार की बहुत सी वस्तुओं में सम्मिलत है। औषधियों में जितनी कारबोनेट हैं, उन में कारबानिक एसिड गैस सम्मिलित होती है। बड़े २ पहाड़ों और चटानों में बहुत सी मात्रा कारबानिक एसिड गैस की होती है। वायु में कारबानिक एसिड गैस की मात्रा जानने के कई उपाय हैं परन्तु इनका वर्णन छोड़ते हैं ॥

वाष्प ॥

वाष्प भी वायु मण्डल में सदैव वर्तमान रहती है। परन्तु मात्रा इसकी भिन्न होती है। संसार में समुद्रों से और प्रत्येक जगह से जहां पानी है, भानुताप से वाष्प उठ कर वायु में मिलती है। हम जो श्वास लेते हैं, उसके भीतर भी पानी की वाष्प वर्तमान रहती है, जैसा कि किसी शीशे पर श्वास लेने से देखा जाता है। गिलास में ठंडा पानी व बर्फ़ डाल दें तो गिलास के बाहिर पानी के परमाणु जम जाते हैं। वह कहां से आये ? वायु मण्डल में जो वाष्प थी वह सरदी से जम कर गिलास के साथ लग गई है। ओस इसी नियम-के अनुसार पड़ती है। रात्रि को जब सूर्य्य के न होने से और भूमि से ताप के निकलने से भूमि शीतल हो जाती है, तो वाष्प कण जम कर इन वस्तुओं पर लग जाते हैं। यदि बहुत ही शीतल हो तो वही वाष्प कण जम जाते हैं। वायु मण्डल मे जब बहुत ऊपर शीतल समीर पहुंचती है, तो बादल बनते हैं, और इस से भी अधिक जब

शीतलता पहुंचती है, तो और भी जम कर वृष्टि होने लगती है, और इस से भी अधिक शीत पहुंचे तो ओले बनते हैं, या पहाड़ों में बर्फ़ गिरती है।

वायु मण्डल में विशेष ताप में विशेष मात्रा वाष्प कणों की सम्मिलित होती है। जब वायु मण्डल इन वाष्प कणों से परिपूर्ण हो तो थोड़ी सी शीत भी इन वाष्पकणों को जमा कर वर्षा कर देगी। परन्तु यदि और ऊष्णता पहुंचाई जावे, तो वही वायु मण्डल और जलकण अपने भीतर शोषण करने के योग्य हो जायगा। अब वही शीत जिसने पहिले वर्षा की थी वर्षा नहीं करेगी। अब उसके भीतर और वाष्प कण आवें तब वह जमने योग्य होगी॥

इन्हीं जल कणों की न्यूनाधिकता वायु को आर्द्र व शुष्क बनाती है। शुष्क जल वायु में वाष्प कम होती है और स्निग्ध जल वायु में अधिक इस रुक्षता व आर्द्रता का प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़ता है। जल वायु पर वाष्प का कितना प्रभाव होता है? इसकी बदौलत ऊष्णता घटती बढ़ती है॥

जब वाष्पकण थोड़ा सा जम कर बादल के आकार में हों तो सूर्य्यताप से गिरते हैं, और भूमि से जो गरमी ऊपर चढ़ती है, उसको ऊपर जाने से रोकते हैं।

सरदियों में जिस दिन रात्रि को बादल हों, उस दिन शीत कम होती है। कारण यही है कि भूमि से ताप निकल कर जो ऊपर जा रहा था, उसे बादलों ने रोक लिया, और वायु मण्डल पूर्ण शीतल होने पाया। जैसे सूर्य्य से ताप आ रहा है, वैसे ही भूमि से हर समय गरमी निकलती ही रहती है। गरमियों में सूर्य्य की किरणें सीधी भूमि पर पड़ती हैं, और दिन बड़ा होने से ताप अधिक प्रविष्ट होता है, और निकलता थोड़ा है; इस लिए गरमी दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है।

हेमन्त में सूर्य्य की किरणें तिरछी पड़ने से ताप प्रविष्ट भी कम होता है, और निकलने का समय बहुत होता है. इस वास्ते प्रत्येक वस्तु शीतल हो जाती है। शुष्क वायु में यह गरमी इतनी निकल सकती है कि बर्फ़ बहने तक नौबत पहुंच जावे, परन्तु आर्द्र वायु मण्डल

में बहुत अधिक शीत नहीं आती है। बीकानेर इत्यादि की ओर जहां इतनी गरमी होती है, वायु शुष्क होने से रात्रि को शीत हो जाती है। अफ़रीक़ा के रेगिस्तानों में भी रात्रि को शीत होती है, क्योंकि भूमि के भीतर से वाष्प शीघ्र ही रात को निकल जाती है, और जलीय वाष्प उनको शोषण नहीं करती है, जिस से शीत आ जाती है।

वायु मण्डल में समुद्र तल या उसके समीप मैदानों की अपेक्षा अधिक आर्द्र वाष्प होती है। ऐसे ही उष्ण कटिबध के देशों में उत्तरीय ध्रुव की अपेक्षा अधिक गरमियों में सरदियों से अधिक, और सायम् प्रातः से दो प्रहर को अधिक होती है। जहां जलाशय झीलें आदि अधिक हों, ओस पड़ती हो वहां यह बहुत होती है। जिन पहाड़ों की शुष्क वायु है, वहां ही लोग जा कर स्वास्थ्य प्राप्त करते हैं।

इन वस्तुओं के अतिरिक्त वायु में कई प्रकार के लवण और धूली आदि, व रोग कीटाणु आदि मिले रहते हैं, जिन का वर्णन आप के सन्मुख किया जावेगा।

वायु किस प्रकार दूषित होती है।

(१) श्वास लेने से—मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े मकोड़े, समस्त जीवधारी जब श्वास लेते हैं, तो उस से वायु खराब होती है। इसके समझने के वास्ते श्वास कर्म को समझना चाहिए। हम श्वास लेने के बिना जीवित नहीं रह सकते, परन्तु क्यों? इसका संक्षिप्त वर्णन लिखा जाता है:—

जो कुछ हम खाते हैं, वह मुख में डाल कर बारीक किया जाता है। मुखलार उसके पचाने के वास्ते सम्मिलित होती है। निशास्ता के साथ मुखलार मिलने से उस में परिवर्तन होकर पचने योग्य हो जाता है। वहां से आहार आमाशय में जाता है। तब उस में आमाशय रस मिलता है और उसको पचाता है। फिर वह वहां से पक्काशय (छोटी अन्त्रियों) में चला जाता है। मार्ग में पित्त और क्लोमादि अन्य रस इसको पचाने के वास्ते मिलते हैं, और अन्त्रिरस भी इस में सम्मिलित होता है। पाचन क्रिया अन्त्रियों में पूर्ण होती

है। अब रस पृथक हो जाता है, और मल प्रधनाग्नि में बाहिर निकलने के लिये प्रविष्ट होना आरम्भ होता है। रस वहां से हृदय में आता है, और भ्रमण करता हुआ यकृत व प्लीहा में से गुज़र कर लाल हो जाता है, फिर सम्पूर्ण शरीर को आहार पहुंचाता है। उसके भीतर प्रत्येक अंग का आहार वर्तमान है। जो आहार हम खाते हैं, वह स्वतः शरीर को बना नहीं सकता है, जब तक वह रक्त रूप में परिवर्तित न हो जावे। रक्त हृदय से निकल कर पहिले बड़ी फिर छोटी इसी प्रकार क्रमागत भ्रमण करता हुआ, नस २ में जाता है। यह नसें अन्त में जाकर रोम से भी अधिक सूक्ष्म हो गई हैं। उपनिषदों में इनकी संख्या २ करोड़ लिखी है। इसी प्रकार शरीर के कोने २ में पहुंच कर यह पुनः लौट आता है। लौटने की भी यही विधि है, अर्थात् प्रथम रोम से भी अधिक सूक्ष्म नसों में, वहां से उन से बड़ी, फिर एक बड़ी नाली के द्वारा हृदय में जाता है। वापिस हुआ रक्त कृष्ण रहता है। रक्त जब शरीर में जाता है, तो शरीर की पालना के अतिरिक्त वहां पड़े हुए सम्पूर्ण दूषित परमाणुओं को बहा लाता है, सड़ी हुई सम्पूर्ण वस्तुओं को अपने साथ लाता है, जैसे कोई अग्नि प्रज्वलित करने के वास्ते और ईंधन रक्खे, और राख कोयले आदि बाहिर निकाल ले। इन्ही खराब परमाणुओं के कारण इसका रंग कृष्ण होता है। जब हृदय संकुचित होता है, तो रक्त दोनों भागों से निकलता है। लाल रक्त तो शरीर की पालना के वास्ते चारों ओर फैल जाता है, और कृष्ण रक्त फुफ्फुस में चला जाता है। जब हम श्वास लेते हैं, तो बाहिर की वायु फुफ्फुस में आकर उस रक्त को साफ़ करती है, और ख़राब सड़े हुए परमाणु अपने साथ ले जाती है, और खूनको लाल कर देती है। जब हृदय फिर खुलता है, तो फुफ्फुस से शुद्ध रक्त लाल खाने में चला जाता है, और शरीर का कृष्ण रक्त दूसरे खाने में और यह क्रम आयु पर्य्यन्त चला चलता है। नाड़ी गति अनुसार हृदय सदैव गति कर रहा है, और रक्त इतनी शीघ्रता से शरीर में भ्रमण करता है, कि जो रक्त हृदय के लोहित भाग से निकलता है, वह चालीस सेकण्ड में कृष्ण खाने में वापिस आ जाता है। श्वास लेने की आवश्यकता अब स्पष्ट है। रक्त प्रति

समय खराब हो रहा है। इसको प्रति समय साफ़ करने की आवश्यकता है। यदि मनुष्य का श्वास बन्द कर दिया जाये, तो उसका सम्पूर्ण रक्त खराब होकर तुरन्त मर जाता है। यही कारण है, कि सदैव साफ़ खुली वायु में श्वास लेना चाहिए। अशुद्ध वायु रक्त को भली भांति साफ़ नहीं करती, इस वास्ते मनुष्य निर्बल हो जाता है, रोगी हो जाता है। श्वास गहरा लेना चाहिये, जिस से भली भांति वायु फुप्फुसद्वय में भर जावे, और कृष्ण रक्त को अच्छी तरह साफ़ कर सके। श्वास को निकालना भी भली भांति चाहिए, ताकि दूषित परमाणु जो वायु में सम्मिलित हुए हैं, वह पूर्णतयः निकल जावें। हिन्दुओं में दैनिक बाहिर जाकर जो प्राणायाम की विधि प्रचलित थी, और अब भी धार्मिक लोगों में है, उसका उद्देश्य मन की एकाग्रता के अतिरिक्त रक्त शोधन भी है। व्यायाम से भी यह उद्देश्य पूरा होजाता है, पट्ठों के हिलने से उनकी दृढ़ता के अतिरिक्त श्वास शीघ्र २ और खूब भर कर भीतर जाता है रक्त को शुद्ध करता है, रक्त परिभ्रमण भी बढ़ जाता है, और अब शरीर में जहां कहीं भी कोई दूषित परमाणु अटक गया हो, वह ज़ोर के बहाव में बह जाता है, स्वेद आने से उसके द्वारा भी कई बिष निकल जाते हैं। व्यायाम भी खुली वायु में करना चाहिए। अशुद्ध वायु अधिक मात्रा में भीतर आकर लाभ के बदले हानि पहुंचा सकती है।

ईश्वर की विचित्र शक्ति है। शरीर में रक्त लाल हो जाता है, और कृष्ण लौट आता है, परन्तु फुप्फुसद्वय में कृष्ण जाता है, और लाल लौट आता है।

फुप्फुस को थोड़ा समझ लेना चाहिए, क्योंकि हम यहां कोई बात सविस्तर नहीं लिखेंगे केवल आवश्यक बातें समझा रहे हैं।

फुप्फुस का आकार
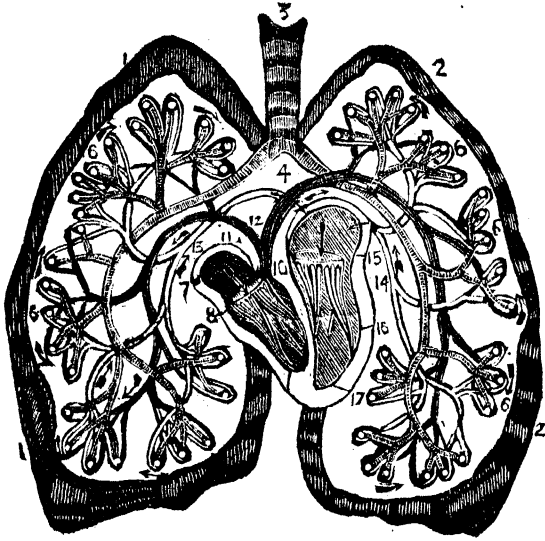
(१) दक्षिण फुप्फुस (२) वाम फुप्फुस, (३) वायु नलिका, और (४-५) वायु नलिका और दो भाग (६) हृदय है।

गले के सन्मुख वायु की नाली है, जो आगे जाकर दो भागों में विभक्ति हो जाती है। एक दक्षिण फुप्फुस में चली जाती है, दूसरी वाम में। फुफुस्स स्पञ्जवत होते हैं, जो कि सूक्ष्म वायु कोठरियों से पूर्ण होते हैं, ताकि जो वायु श्वास द्वारा आवे वह फुप्फुस में पहुंच जावे, जैसा कि स्पञ्ज पानी भरने से पहिले की अपेक्षा बढ़ जाता है। इसी प्रकार श्वास भीतर जाने से फुप्फुस फूलता है, गम्भीर श्वास लेने वाले की छाती इसी वास्ते दृढ़ और बड़ी होती है। जैसे वृक्ष तने से शाखा, प्रति शाखा में विभक्त होता है, वैसे ही यह वायु नलिका शाखा प्रति शाखा में विभक्त हो रही है, और अन्तिम बहुत सूक्ष्म नालियां हो जाती हैं। प्रत्येक सिरे पर एक कोठरी बनी हुई है जो कि पिन के छिद्र से बड़ी नहीं होती, परन्तु महीन नालियों के विचार से वह बड़ी कोठरी है। इस प्रकार की कोठरियां अर्थात् वायुगृह फुप्फुस में लगभग ६६ लक्ष वर्तमान हैं।

फुकनी का मुख जब खोला जाय तो वह वायु से भर जाती है, जब दबाया जाय तो ख़ाली हो जाती है। ऐसे ही जब हमारी छाती फैलती है, वायु उसके भीतर प्रविष्ट हो जाती है, जब सिकुड़ती है, तो सर्वथा निकलती जाती है। प्रकृति ने हमारे शरीर में ऐसी पेशियां रक्खी हैं जो प्रति क्षण यह कार्य्य सम्पादन करती रहती हैं, जैसा कि फुकनी को हमारे हाथ खोलते व बन्द कराते हैं। प्रकृति ने ऐसा प्रबन्ध रक्खा है, कि यह कार्य्य प्रति क्षण होता रहता है क्योंकि थोड़े मिनट भी बिना श्वास लिए हम जीवित नहीं रह सकते हैं॥

अब आपको ज्ञात हो गया होगा, कि वायु श्वास द्वारा कैसे ख़राब होती है जब कि लिखा जा चुका है, कि फुफ्फुसद्वय में वायु नलिकाओं के अतिरिक्त सूक्ष्म रक्त तन्तु भी हैं। कहते हैं कि यदि इन सभों को सिरे के साथ सिरा मिला कर रक्खा जाये, तो कई मील लम्बी हो सकती हैं। इधर से वायु नलिकाओं से वायु गई उधर से दूषित रक्त फेफड़ों में आया, दोनों का मिलाप हुआ। केवल नाम मात्र सूक्ष्म परदा इनके मध्य है। वायु इसी परदे के भीतर से अपना कार्य्य कर लेती है। वायु में जो आक्सीजन है, उस में से कुछ भाग रक्त के साथ मिलकर उस को लाल बना देता है, और कुछ भाग उसके भीतर की दूषित वस्तुओं से मिलकर कारबानिक एसिड गैस बन कर बाहिर निकल जाता है। इसके साथ दूषित परमाणु वैसे ही मिले हुए जाते हैं, जैसे किसी वायु में गर्द मिली हो, और जैसा कि वर्णन हुआ इसके भीतर पानी भी होता है। किसी शीशा आदि पर श्वास लेने से यह बात भली भांति ज्ञात हो सकती है, कि हमारे श्वास में पानी भी है॥

शीत ऋतु में हम श्वास लेते हैं, वह बाष्पवत मालूम होती है। भीतर से वाष्प नहीं निकलती है। भीतर से वैसे ही वायु निकलती है, जैसी ग्रीष्म में निकलती है। भेद केवल यह है कि बाह्यिक वायु हमारे आन्तरिक शरीर से बहुत शीतल होती है, पानी जो बाष्पाकार निकलता है वह दिखाई नहीं देता है। परन्तु हेमन्त में अति शीत के कारण वह मुख से निकलते ही जम कर गाढ़ा हो जाता है, और धुन्ध सा दिखाई देने लगता है॥

हिन्दुओं का शुद्धि सिद्धान्त।

हिन्दुओं में सार्वजनिक प्रथा है कि किसी का जूठा नहीं खाते। एक के भीतर से दूषित परमाणु दूसरे में जाने सम्भव हैं। उन्हों ने यहां तक इस सिद्धान्त को महत्व दिया है, कि श्वास द्वारा भी जूठ जाना मानते हैं और जब कि हमारे भीतर से पानी हर समय निकल रहा है तो कौन कह सकता है कि जिस गिलास को हमने मुख लगाया है केवल वही जूठा हुआ है। श्वास की सीमा शास्त्रों ने २४ अंगुल नियत की है। अतः आमने सामने दो मनुष्य खड़े हों, तो उन में ४८ अंगुल का अन्तर हो, या न्यून से न्यून २४ अंगुल से अधिक अन्तर हो, तो एक श्वास दूसरे में नहीं जा सकता है। परन्तु बहुत समीप होने की दशा में एक दूसरे के दूषित परमाणु अवश्य भीतर जा सकते हैं, जबकि दूरावस्था में वह वायु मण्डल में मिल जाते हैं। प्रसारण शक्ति वायु में बहुत अधिक है, अन्यथा जो श्वास लेते हैं, उस में साधारण वायु से लगभग १०० गुणा अधिक कारबानिक ऐसिड गैस होता है। यदि वह देर तक एक जगह स्थिर रहे, तो बहुत सा वायु विभाग खराब हो जावे। अब हमारे भाई इन सूक्ष्म सिद्धान्तों को भूल गए हैं। यह नियम हम को स्वास्थ्य रक्षा की शिक्षा देते थे। इन के पालन कर्त्ता संकीर्ण गृह के भीतर भिच कर नहीं बैठ सकते थे। अब हम हैं कि एक छोटे से कमरे में कई २ मनुष्य और वह भी द्वार बन्द करके सोते हैं, और हम में से ऐसे मनुष्य भी हैं जो कहते हैं कि इस कमरे में वायु कहां है? यहां तो कुछ भी नहीं है। उन से कहो कि पंखा करने से वायु कहां से आई? तो वह हैरान होते हैं॥

अब आप को ज्ञात हो गया होगा, कि वायु मनुष्य, पशु, पक्षी, जीव जन्तु सब के श्वास लेने से दूषित हो रही है॥

२—अग्नि जलने से

दूसरी बात जिस से वायु दूषित हो रही है. वह अग्नि का जलना है। आक्सीजन का काम ही वास्तविक जलना है। शरीर के भीतर भी यह दूषित परमाणुओं को जलाती है, जिस से शरीर के भीतर प्रति समय उष्णता है। भेद केवल यह है, कि वह प्रत्यक्ष ज्वाला रूप

नहीं है। जैसे एक जीवधारी बन्द करने से मर जाता है, वैसे ही जलना बिना वायु के नहीं हो सकता, जलती हुई अग्नि को या कोयलों को किसी घड़े में बन्द कर दो तो वह तुरन्त बुझ जावेंगे परन्तु किसी जलती हुई लकड़ी को बुझाओ और आकसीजन से भरी बोतल के भीतर ले जाओ तो वह तुरन्त भड़क उठेगी। वायु में केवल ५वां भाग आकसीजन है इस वास्ते अग्नि कभी बुझ भी जाती है, और बहुत तेज़ नहीं जलती है। यदि केवल आकसीजन होती, तो यह अग्नि बहुत प्रचण्ड होती, और हानि करती, क्योंकि जो वस्तुएं साधारण वायु में जल नहीं सकतीं, वह आकसीजन में खूब जलती हैं, यहां तक कि खालिस आकसीजन में लोहा भी काष्ठवत जलता है॥

जलने का जितना काम संसार में हो रहा है, इस से भी वही बात होती है जो हमारे श्वास लेने से होती है। जलने से वायु मण्डल की आकसीज, लकड़ी की कारबन जल जाती हैं और कारबानिक एसिड गैस बन जाती है। लकड़ी के भीतर जो जल परमाणु थे वह गरमी से वाष्प बन जाते हैं जैसे कि पानी की वाष्प हमारे भीतर से निकल रही है। किसी दीपक को बाल कर बड़े मुख वाली बोतल के भीतर बन्द करो तो पहिले वह जलता रहेगा, फिर ज्यों २ करबानिक एसिडगैस उस में अधिक होती जावेगी त्यों २ वह मध्यम पड़ता जावेगा और अन्तिम बुझ जावेगा। अब इस बोतल के भीतर कारबानिक एसिड गैस की वर्तमानता जानने के वास्ते वही कार्य्य करो, जो कि चूने की दशा में किया था। उसके भीतर चूने का साफ़ पानी डाल कर हिलाओ, तो वह दुग्धवत श्वेत हो जायगा, क्योंकि कारबानिक ऐसिडगैस लाइम, वा चून के साथ मिल कर कारबोनेट आफ़ लाइम, या चाक बना देती है। इसी वास्ते कारबोनेट गैस का नाम चाक गैस भी है। एक गिलास में चूने का पानी भर कर एक नाली उस में रख कर उस से फूकते जाओ तो वह पानी दूधवत हो जायगा जिस से स्पष्ट प्रगट है, कि जलने से वही कार्य्य होता है जो कि श्वास लेने से होता है॥

विचारणीय

जब हमको ज्ञात हो गया, कि चूना का पानी (क़लई चूना को पानी में घोल कर साफ़ पानी ऊपर से निथार लें) कारबानिक एसिड गैस के साथ मिलकर श्वेत हो जाता है, तो वायु के भीतर कारबानिक एसिड गैस की वर्तमानता इसी से मालूम हो सकती है। चूने के पानी को किसी खुले मुख वाले पात्र में डाल रक्खो, तो अगले दिन मालूम करोगे कि उस पर श्वेत मलाई सी जम गई है। यह वायु की कारबानिक एसिड गैस से हुआ है। यदि यह बहुत शीघ्र श्वेत हो जाता है, तो यह कारबानिक एसिड गैस की अधिकता को प्रगट करता है। अपने कमरे के भीतर तुम एक प्याला चूने के पानी का रख कर देख सकते हो। यदि बहुत शीघ्र श्वेत होता है, तो तुम्हारे भीतर चाक गैस बहुत अधिक है, उसको ठीक करो।

द्वितीय

कभी मिट्टी के तैल से जलते हुए लैम्प को अग्नि लग जाती है, कभी भूल से बालक के वस्त्रों को अग्नि लग जाती है। कभी पकते हुए तैल या किसी दवाई को अग्नि लग जाती है, तो वह लोग जो इस सिद्धान्त को नहीं समझते, कि अग्नि के जलने के वास्ते वायु आवश्यक है वह उसको बढ़ा लेते हैं।

एक बार हमारे एक कमरे में एक पात्र कर्पूर से भरा हुआ पड़ा था। किसी बालक से भूल वश उस पर जलती हुई दियासलाई गिर गई, और तुरन्त अग्नि भड़क उठी। नौकर ने उस पात्र को बाहिर निकालने का प्रयत्न किया। दरवाज़ों से जब निकालने लगा तो द्वारों को अग्नि लग गई। उस समय सम्पूर्ण कार्य्यालय के कार्य्यकर्त्ता एकत्र हो गए, और अग्नि अत्यल्प हानि करने के पश्चात् शान्त हो गई। जब मैंने उस मूर्ख को समझाया कि कई लिहाफ़ तुम्हारे पास पड़े थे, तुम एक लिहाफ़ उठाकर पात्र पर डाल देते तो अग्नि तुरन्त बुझ जाती तो यह सुनकर वह हैरान हुआ, और कहने लगा कि लिहाफ़ को अग्नि क्यों न लग जाती? एक दिन कड़ाही में हम शिङ्गरफ़ पका रहे थे। उस में मालकंगनी, भिलांवा, और घी था। अग्नि प्रचण्ड होकर ऊपर लग गई। नौकर ने तुरन्त खबर दी, और मैंने झट

जाकर पास पड़ी हुई एक बोरी ऊपर डाल कर दबा दिया। अग्नि बुझ गई, तब उसको समझ आई, और अब सब नौकर इस सिद्धान्त को समझते हैं।

जब वस्त्रों को अग्नि लगे तो किसी कम्बल आदि में लपेट दो, अग्नि बुझ जायगी। ऐसे ही जब किसी मनुष्य के वस्त्रों में अग्नि लग जाती है, तो वह इधर उधर भागता है, जिस से अग्नि और भी भड़कती है। यदि वस्त्रों को अग्नि लग जावे, तो उस ओर को नीचे लेकर गुच्छा होकर भूमि पर लेट जाओ, और यथा सम्भव उस अग्नि को ऐसा दबाओ कि वायु भीतर को न जा सके। यदि पास कोई कम्बल लिहाफ़ आदि पड़ा हो, तो उसको इस प्रकार लपेट लो कि वायु भीतर न जा सके, अग्नि बुझ जावेगी। यदि किसी बालक के वस्त्रों को अग्नि लग जावे, तो जो गाढ़ा वस्त्र, बोरी, बोरा, कम्बल, लिहाफ़ दरी तुम्हारे पास पड़ा है उस में बालक को लपेट दो, और यदि सिर तक अग्नि न हो, तो मुख खुला रक्खो। यदि ऊपर तक अग्नि है तो भी मुख को शीघ्र खोल दें, क्योंकि वायु के बिना भी तो वह जीवित नहीं रह सकता है।

तृतीय

विचार हो सकता है कि जब अग्नि के जलने से वायु में कारबानिक एसिड गैस उत्पन्न होती है तो कमरों की सफ़ाई के वास्ते वहां अग्नि क्यों जलाई जाती है? क्यों हवन किया जाता है? इसका उत्तर यह है कि कमरों की वायु उनके बन्द रहने से भारी हो जाती है। उसके गमनागमन का क्रम न्यून हो जाता है आर्द्रता आदि से उसके भीतर कई गन्दे माद्दे उत्पन्न हो जाते हैं। अग्नि जलने से ऊष्णता उत्पन्न होती है तो वह सम्पूर्ण वायु ऊष्ण होकर बाहिर निकल जाती है और दूषित परमाणु सब दग्ध हो जाते हैं। हलकी फुलकी बाहिर की वायु भीतर प्रविष्ट हो जाती है। कारबानिक एसिड गैसादि जो उत्पन्न हुई थी वह भी गरमी से हल्की होकर बाहिर निकल जाती है। यदि कमरे में झरोखे हों तो उनसे भी नहीं जायेगी और द्वारों से नई प्रविष्ट होती रहेगी। यदि झरोखे भी नहीं हैं तो द्वार के ऊपरी भाग से बाहिर निकलती है और निचले भाग

से उसमें प्रविष्ट होती है। बाहिर की वायु का भीतर प्रविष्ट होना कई बार आपने देखा होगा, जब कि बाहिर कोई वायु न चलती हो, तो देखोगे कि अग्नि का झुकाव भीतर की ओर होता है। यह इस वास्ते होता है कि बाहिर की वायु भीतर आ रही है इस के ज़ोर से धूम्र आदि का मुख भीतर को है।

इस प्रकार अग्नि कमरे की दूषित वायु को निकाल कर शुद्ध वायु को भीतर ले आती है। अतएव कमरों की शुद्धि के निमित्त इसको वर्तते हैं। इस से आप को यह भी ज्ञात हो गया, कि कमरों के भीतर झरोखों का होना कितना आवश्यक है। इसका वर्णन आगामी भी आवेगा।

(३) सड़ांध से

तीसरी बात जिससे वायु खराब होती है सड़ांध है। हम घरों में प्रति दिन अनेक प्रकार से इसे दूषित करते हैं। यथा हम कदली फल खाते हैं, तो उसके छिलके फेंक देते हैं, मीठा चूस कर शेष सब कुछ फेंक देते हैं। खरबूज़ा खाकर उसके छिलके और बीज फेंक देते हैं। इसी प्रकार सेबादि सम्पूर्ण फलों का कुछ न कुछ भाग फेंकते हैं शाक भाजियों के भी कई भाग फेंकते हैं, भोजन पश्चात् शेष जूठन फेंकते हैं। यह सम्पूर्ण वस्तुयें सड़ गल कर वायु को दूषित करती हैं। ऐसे ही मूषक, बिल्ली, स्वान, पशु, पक्षी अनगणित प्रति दिन मरते रहते हैं जो कि एक जगह पड़े २ सड़ कर वायु को दूषित करते हैं और दुर्गन्ध फैलाते हैं। खेतों तथा वाटिकाओं में कई प्रकार के पुष्प पत्र, फल, पौदे आदि जो गिर पड़ते हैं या उखाड़े जाते हैं वह आर्द्र भूमि में पड़े हुए अपने भीतर से सड़ांध निकालना आरम्भ करते हैं। नालियां और मोरियां जो उत्तम बनी नहीं होती हैं या भली भांति साफ़ नहीं की जाती हैं उनके भीतर कूड़ा कर्कट और अन्य कई वस्तुयें पड़ी हुई सड़ांध उत्पन्न करती हैं और बीसियों रोगों की उत्पत्ति की हेतु बनती हैं। मनुष्यों और पशुओं के मल मूत्रादि सभी दुर्गन्धोत्पातदक हैं। और वायु को दूषित करते हैं। तालाबादिकों में या ऐसे ही अन्य स्थानों में जहां पानी संग्रह रहता है उनमें भी बनस्पति व पाश्विक पदार्थ गिर कर उड़ते रहते हैं। डाक्टर पार्क्स साहिब ने लिखा है कि "उद्भिद व

पाश्विक पदार्थों की सड़ांध से जो परमाणु उड़ कर वायु में सम्मिलित होते हैं, वह प्रायः उन दुर्गन्धित पदार्थों के सदृश होते हैं, जो कि मल मूत्र द्वारा वायु में सम्मिलित होते हैं, और यह खारी होते हैं"। इनको इन्होंने टोमेन (Ptomaine) और लियोकोमेन (Leucomaine) लिखा है। उनका कथन है कि मोरियों और तड़ागों आदि से जो सड़ांध निकलती है वहां वास्तविक हर समय खमीर बनता रहता है और उस खमीर की वाष्प वायु में मिलती है। यह वाष्प कार्बोएमोनीकल (Corboammonical) होती है। अर्थात इस में कार्बन और नौशादर के परमाणु सम्मिलित होते हैं। इस वास्ते वह अत्यन्त तीव्र दुर्गन्धित होती है। ऐसी वायु में और नाना प्रकार के रोग भी सम्मिलित होते हैं॥

सड़ांध युक्त वायु में क्या होता है ?

प्रश्न हो सकता है कि वायु में ऐसी वस्तुओं से क्या आता है! इस का उत्तर यह है कि जब कोई बड़े से बड़ा या छोटे से छोटा जीवधारी मर जाता है तो वह शीघ्र गलना आरम्भ होता है और उस के परमाणु उस से पृथक होकर वायु में मिलते हैं। साथ ही कई प्रकार की दूषित गैस उन से निकल कर या बाष्प उड़ कर वायु में सम्मिलित होती है इस से वायु दूषित हो जाती है। हम ने कर्पूर की एक डली कमरे में रक्खी हो, तो उस से सम्पूर्ण कमरे में सुगन्ध आती है। वह क्यों आती है? इस लिए कि उस के सूक्ष्म परमाणु निकल २ कर वायु में फैल रहे हैं। वह हम को दिखाई नहीं देते परन्तु उस कर्पूर के परमाणु हैं जो हमारी नासिका में पहुंच कर सुगन्धी उत्पन्न करते हैं। इसी वास्ते कर्पूर लोप हो जाता है। परन्तु बाज़ी वस्तुओं के परमाणु ऐसे सूक्ष्म भी निकलते हैं कि प्रत्यक्ष रूप से उन में बहुत न्यूनता न आती हुई भी उन के अनगणित परमाणु वायु में सम्मिलित होकर सुगन्धी उत्पन्न करते हैं यथा चन्दन, कस्तूरी, इत्यादि ऐसे ही जो वस्तुएं सड़ती गलती हैं खमीर उत्पन्न करती हैं, उन के सूक्ष्म परमाणु वायु में मिलते हैं। वह हमारे भीतर जाकर हमारे मस्तिष्क को ख़राब करते हैं और वही रक्त में सम्मिलित होकर शरीर को रुग्ण करते हैं। इन परमाणुओं के अतिरिक्त बाष्प और कई प्रकार की पवनें निकल कर वायु

में मिल कर उस को दुर्गन्धित करती हैं । इन वस्तुओं को हम चक्षु द्वारा देख नहीं सकते हैं । परन्तु हमारी प्राण शक्ति ईश्वर ने बहुत श्रेष्ठ बनाई है। इसी लिए जब वायु में इस सड़ांध और सुगन्ध के परमाणुओं का मेल होता है तो तुरन्त पता लग जाता है । हम को सदैव दुर्गन्ध में रह कर अपनी प्राण शक्ति को नष्ट नहीं कर करना चाहिए। यदि हम इसे ठीक रखते हैं तो थोड़ी सी दुर्गन्ध भी हम को प्रतीत होती है ॥

वायु के भीतर सूक्ष्म परमाणु और धूलि गर्द सदैव मिली रहती है

इसकी परीक्षार्थ किसी कमरे में झरोखे से जो धूप आरही हो उसको देखो। एक विशेष सीमा के अन्तर्गत प्रकाश होने से कितने ही परमाणु उस में घूमते हुए दिखाई नहीं देते हैं और यदि हमारे नेत्र नासिका की भांति तीव्र होते, तो हम सड़ते हुए माद्दों से इस प्रकार के परमाणुओं की पंक्तियां निकलती हुई देखते। कबरों से यदि वह बहुत गहरी न हों, ऐसी हो सड़ांध निकलती है जब कि भीतर शरीर गलता है। श्मशानों की वायु में भी यदि अग्नि न्यून हो तो सर्वांग भली भांति दग्ध न होने के कारण कई परमाणु वैसे ही निकल कर वायु में सम्मिलित होते हैं और दुर्गन्ध फैलाते हैं। परमाणुओं के साथ कई प्रकार की पवनें और वाष्पें भी होती हैं॥

वाष्प भूमि से भी निकलती रहती है—आर्द्र भूमि से प्रति क्षण वाष्प निकलती है और वायु को दूषित करती है। इसी लिए आर्द्र गृहों में रहना सदैव वर्जित है। सड़ांध भी अधिकांश ऐसी ही वस्तुओं से निकलती है जो आर्द्र भूमि पर पड़ी हो। शुष्क भूमि पर सड़ांध का भय बहुत कम होता है। वर्षा पश्चात् भूमि आर्द्र होती है। फिर असोज कार्त्तिक में धूप पड़ती है तो कई प्रकार की वाष्पें निकलती हैं और ज्वरादिक कई रोग उत्पन्न करती हैं ॥

सड़ांध व कीटाणु ।

सरल बात है कि जो वस्तुयें हमारे स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं वह हमारे शत्रुओं के स्वास्थ्य के लिए हितकर होंगी। इस लिए सड़ांध जो हमारे स्वास्थ्य को महा हानिकारक है वह नाना

प्रकार के रोग जन्तुओं के लिए हितकर है। वह इस में पलते और बढ़ते हैं। यही कारण है कि कोई भी रोग फैले तो सफ़ाई पर ज़ोर दिया जाता है और सफ़ाई को खुदाई से दूसरे दर्जे पर माना जाता है। और सड़ांध और दुर्गन्ध में कीटाणुओं के अतिरिक्त ऐसे जीव भी पलते हैं जो स्वयम अपने भीतर बहुत से कीटाणु रखते हैं, और इधर उधर फिर कर उनको फैलाते हैं। हाईजीन की बहुत सी पुस्तकों में यह भी अंकित है, कि मोरियों की वायु में कीटाणु नहीं होते हैं। डा० पारी रोज़े ने तो यहां तक लिखा है कि मोरियों की वायु में यदि कीटाणु होते हैं, तो वह दूसरी वायु से आए हुए होते हैं, मोरी में उत्पन्न नहीं होते हैं। परन्तु जहां तक हमने ज्ञात किया है, इसका कारण यह मालूम होता है, कि मोरियों की आर्द्रता के कारण कीटाणु मोरियों में ही लगे रहते हैं, और वायु में नहीं मिलते हैं। जो पक्की और उत्तम प्रकार की मोरियां बनी होती हैं, वह कीटाणुओं को नहीं फैलाती हैं। परन्तु जो साधारणतयः हमारे शहरों में हैं, उनकी दशा यह है, कि उन से भंगी गन्दगी निकाल २ कर साथ २ ढेर लगाता चला जाता है। वह धूप में सूख कर कीटाणुओं को फैलाती है, इस लिये मोरियों की वायु कीटाणु रहित नहीं हो सकती है। जहां सड़ांध है, वहां कीटाणु अवश्य बढ़ेंगे, और अवसर पाकर फैलेंगे।

पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि प्रायः कीटाणु शुष्क वायु में भी सम्मिलित रहते हैं। क्षई ग्रस्त जिस कफ को निकालता है, उस में कीटाणु भरे होते हैं। परन्तु वह किसी अन्य तक नहीं पहुंच सकते हैं। जब तक उस में आर्द्रता है, कीटाणु वायु में प्रविष्ट नहीं होते हैं। उस कफ को यदि जला दिया जावे तो रोग नहीं फैलता है। किन्तु जहां तहां पड़ा रहे तो शुष्क होकर वह कीटाणु धूलि घट्टे के साथ वायु में सम्मिलित हो जाते हैं। और स्वस्थ मनुष्यों की श्वास के साथ भीतर चले जाते हैं। इसी वास्ते मोरियों की वायु में जो नई विधि से बनाई जावें डा० चारीरीप ने कीटाओं की वर्तमानता का निषेध किया है।

ख़राब मोरियों से कीटाणुओं के अतिरिक्त मक्खियां, मच्छर, और कई छोटे २ इस प्रकार के अनगिणित कृमि उत्पन्न होते हैं और

वह कीटाणुओं को अपने साथ ले जाकर मनुष्यों के शरीरों में प्रविष्ट करते हैं। दुष्ट का दुष्ट मित्र होता है। कैसे आश्चर्य्य की बात है, कि यह क्षुद्र जीव मच्छर, मक्खियां आदि सहस्रों कीटाणुओं को अपने भीतर न केवल रखते वरन् पालते हैं, परन्तु वही कीटाणु हमारे भीतर जाकर हमको रुग्ण कर देते हैं।

(४) धूलि, रज से

चतुर्थ वस्तु जिस से वायु दूषित होती है, धूली, रज है। गर्द, मिट्टी, धूम्रादि के परमाणु हर समय वायु में उड़ते रहते हैं, और वायुवेग से दूर २ पहुंच जाते हैं। केवल समुद्र और पर्वतों के ऊपर की वायु धूली से रहित होती है। अन्य स्थानों में यह धूलि वायु को बहुत दूषित करने का हेतु होती है।

धूलि में कोई बुरी वस्तु न भी मिली हो, किसी रोग के कीटाणु न भी हों, तो स्वयम् छोटे २ धूलिकण श्वास द्वारा हमारे भीतर जाकर हमारे स्वास्थ्य को हानि पहुंचाते हैं। ईश्वर ने उस से बचने के वास्ते—

नासाछिद्र में रोम

उत्पन्न कर दिए हैं यह सूक्ष्म रोम घ्राण द्वार पर वायु छानने का कार्य्य करते हैं, और कई परमाणु वहीं रह जाते हैं। कई आगे जाकर नाक की झिल्ली में लग जाते हैं, और जब हम नाक साफ़ करते हैं, तो बाहिर आ जाते हैं। वह लोग भूल करते हैं, जो इन रोमों को कटाते रहते हैं। प्रकृति ने उनको एक छाननी दी थी, उसको वह गंवाते हैं। वह लोग भी भूल करते हैं जो—

मुख द्वारा श्वास

लेते हैं क्योंकि इस से अन्य हानियों के अतिरिक्त धूलि भीतर जाने का अधिक भय है। ईश्वर ने मुख आहार खाने व शब्दोच्चरण के लिए बनाया है। इन दो अवसरों के अतिरिक्त मुख को बन्द रखना चाहिए। बाज़े मनुष्यों को शयन समय मुख खुला रखने का व्यसन होता है। वह बुरा है। फुफ्फुसद्वय की निर्बलता से ऐसा होता है, और ऐसा करने से वह और निर्बल हो जाते हैं। इस

लिए जिन को यह व्यसन हो उनको परित्याग करना चाहिए। गृह में सब को समझा दो कि मुख को खुला न रक्खें। चिपकने वाला प्लास्टर लगा कर भी इस व्यसन को दूर किया जा सकता है। डाक्टर ऐनी ब्रन्स स्मिथ साहिबा लिखती हैं:—

"यदि लोग केवल नासिका द्वारा श्वास लिया करें, विशेष कर जब कि वह गृह से बाहिर हों; तो निसन्देह राजयक्ष्मा, निमोनिया, कास, ज्वर, प्रतिश्याय के केस बहुत कम हो जावें"।

नासिका द्वारा श्वास लेने से जहां धूलि कम प्रविष्ट होती है, वहां एक बड़ा लाभ यह है; कि श्वास फुफ्फुसद्वय तक पहुंचते २ लम्बे मार्ग में ऊष्ण हो जाता है, मुख द्वारा श्वास लेने से सीधी शीतल वायु भीतर चली जाती है, और श्वास अंगों को रुग्ण करती है। श्वास निकालना भी नासिका ही से चाहिए। वायु भीतर जाकर ऊष्ण हो जाती है, इस लिए वह नाक से निकल कर नासिका को भी गरम कर देती है, और वह पुनः बाहिर की वायु को ऊष्ण करने के योग्य होती है। यदि हम श्वास को मुख मार्ग से निकालते हैं, तो नासिका शीतल रहती है, और भीतर प्रविष्ट होने वाली वायु को ऊष्ण नहीं कर सकती, इस लिए शीतजन्य रोग उत्पन्न होते हैं। अतः सर्वोत्तम यही है, कि हम नासा द्वार से श्वास ले।

मैं वर्णन कर रहा था, कि वायु में जो धूलि है, वह बहुत हानिकारक है। जनसाधारण इस लिए सारा दिन धूलि घट्टे का भय लगा रहता है। घर वाले जब चाहें अपनी दरी, वस्त्र, गालीचा आदि खिड़की से झाड़ने लग जाते हैं। उनको किसी मार्ग गामी के स्वास्थ्य का विचार नहीं होता। दुकानदार सारा दिन कुछ न कुछ उड़ाते रहते हैं, झाड़ू देने, सड़कें साफ करने के वास्ते कोई ऐसे उपाय नहीं वर्ते जाते जिन से धूलि कम उड़े। मज़दूर लोग जहां जी किया बैठ जाते हैं, और फिर उठ कर वहीं अपनी मिट्टी झाड़ने लग जाते हैं। सवारियां हर समय गर्द उड़ाती रहती हैं।

मोटरकार

ने तो ग़ज़ब कर दिया है। जिधर से यह गुज़र जावे धूलि के बादल पीछे उड़ते जाते हैं। दुर्गन्धित धूम्र और धूली चलने वालों

के प्राण व्याकुल कर देती है। बड़े २ शहरों में सड़कों पर मिट्टी का तैल या लुक डालते हैं ताकि गर्दा न उड़े। फिर भी गर्द उड़ती ही है। लाहौर में मालरोड पर लुक डाला गया है। गर्द तो कुछ कम परन्तु घोड़े गाड़ियों को अति कष्ट है। कई घोड़ों के पांव फिसल कर गिरते हमने देखे हैं। स्वयम् हमारी घोड़ी एक दिन पांव फिसल कर गिर गई, और बहुत चोटें आई। यदि चौपहिया गाड़ी न होती तो सवारियों को भी बड़ा कष्ट होता।

मोटर सवारी तो उत्तम है, परन्तु गर्द के प्रश्न पर अवश्य ध्यान देना चाहिए। बड़े २ शहरों में मैशीनों का धूम्र भी वायु को बहुत दूषित करता है। शरद् ऋतु में आप ने देखा होगा, कि घरों का साधारण धूम्र भी भूमि के आस पास ही रह जाता है। आज कल लाहौर के इतस्ततः सायम् को चलते हुए इतना धूम्र दिखाई देता है कि मानो वहां ढेरों अग्नि सुलग रही है।

मैशीनों के लिए नियम है कि उनके धूम्र निकलने की चिमनियां बहुत ऊंची बनाई जाती हैं, फिर भी वायु में धूम्र सम्मिलित हो जाता है, और लन्डन जैसे स्वच्छता प्रिय नगर में भी लोग इन मैशीनों के कारण व्याकुल हैं, और विचार होते रहते हैं कि मैशीनें नगर से बाहिर दूर फ़ासले पर लगाई जायें। जैसा कि हम वर्णन कर चुके हैं, इस धूली घट्टा से बहुत बचने की आवश्यकता हैं; क्योंकि इसके भीतर अनेक रोगों के कीटाणु होते हैं।

क्षयी (दिक्क़)

के विषय में यह निश्चय हो चुका है, कि उसके फैलने का बहुत बड़ा कारण शुष्क खंकार (कफ) है। जब शुष्क होकर यह मिट्टी के साथ मिलता है, और वायु में उड़ता है, तो बहुत हानिकारक प्रमाणित होता है।

यही वायु दूसरों के भीतर जाकर रोग उत्पन्न करती है। हम लोगों में तो इतनी सामर्थ्य भी नहीं है, कि यदि गर्द में जाने का अवसर हो तो और नहीं तो रूमाल ही से रक्षा करें।

जब तक लोग इन बातों को नहीं समझते तब तक भय दूर नहीं होता है। क़ानून पास हुआ, सरकारी कार्य्यालयों में लिख

कर लगाया गया, कि थूकना वर्जित है, परन्तु थूकने से कोई भी नहीं रुकता है, इसी वास्ते वायु में सदैव कीटाणु वर्तमान रहते हैं। न्यूयार्क में एक डाक्टर ने २३०० शवों का व्यवच्छेद किया, तो ज्ञात हुआ कि सब के फुपफुसों में इस प्रकार के चिन्ह थे, कि उनके भीतर राजयक्ष्मा के परमाणु प्रविष्ट हुए। रोगारम्भ हुआ परन्तु किसी कारण से रुक गया। हम में से प्रत्येक के भीतर यह कीटाणु जाने सम्भव हैं। यदि हम पूरी सावधानी करें तो यह स्वयम् ही अकड़ कर मर जाते हैं, या रोगआंस हुआ परन्तु रोगी के हृष्ट पुष्ट होने और व्यायम करने पर वहीं रुक गया। फ्रान्स के एक डाक्टर ने बहुत सी लाशों को चीरा। उसकी सम्मति है, कि ६० प्रति सैंकड़ा रोगों में जो प्रत्यक्ष क्षयी से नहीं मरते, किसी न किसी समय क्षयग्रस्त होने के लक्षण पाए जाते हैं।

राज्यक्ष्मा ॥

डाक्टर एनीब्रन्स स्मिथ साहिबा लिखती हैं, "शुष्क ऋतु में ही बहुत से लोगों के गले में खराश हो जाती है, और सम्पूर्ण लक्षण साधारण शीत लगने के होते हैं। यह धूलि के छोटे २ परमाणु कण्ठ व फुप्फुसद्वय के भीतर जाकर खराश करने के कारण होते हैं, या कीटाणुओं के भीतर जाने से उनका कुछ विषैला प्रभाव हो जाता है।

"जब स्वस्थ मनुष्य धूलिकणों को श्वास द्वारा भीतर ले जाता है, तो सदैव प्रकृति उसको निकालने के वास्ते एक उद्योग करती है, ताकि वह फुप्फुसद्वय में टिक न जावे। कल्पना करो कि धूली का एक तीक्ष्ण अणु वायु नलिका के भीतर घुस जाता है, उस से खराश होती है। आप उसको दूर करने के लिये खांसते हैं। यदि उस से वह दूर न हो तो वायु नलिका के भीतर लगी हुई सूक्ष्म झिल्ली एक कला गाढ़ा श्लेष्म जिसको म्यूकस (बलगम कहते हैं निकालती है, जो कि निकल कर खराशकारी अणु को घेर लेता है, ताकि सुकमार त्वचा और म्यूकस मेम्बरीन को कष्ट न पहुंचे। कफ का यह छोटा सा टुकड़ा जो कि ज़रा ऊपर आ गया है वह भी आपको खास कर इस परमाणु को निकाल देने में सहायता करता है॥

"परन्तु यदि धूलि कण वायु नलिका में दूर तक चला जावे, तो प्रकृति ने इसके वास्ते एक और प्रबन्ध किया है, कि वह हानि पहुंचाने के बिना निकल सके। यह प्रबन्ध अत्यन्त सुन्दर व विचित्र निम्न लिखित है॥

"वायु नलिका में जो सूक्ष्म श्लेष्म कला (म्यूकसमेम्बरीन) लगीहुई है, उस में लाखों अत्यन्त सूक्ष्म रोम जैसे लगे हुए होते हैं, जिनको अंग्रेज़ी में (Cilia) कहते हैं। यह प्रति समय हिलते रहते हैं, जैसा कि गेहूं का खेत जब वायु आवे सब एक ओर को झुक जाता है, और फिर सबका सब खड़ा हो जाता है। यह सूक्ष्म रोमाकार तन्तु केवल एक ओर झुकते हैं अर्थात् मुख की ओर, जब कि हम वायु को बाहिर निकालते हैं। इस प्रकार से धूलि कण सरक २ कर फुप्फुसुद्वय से बाहिर आता है। तब फिर खांसी आती है, और वह धूलि कण उस कफ सहित जिस ने उसको घेरा हुआ है, मुख में आ जाता है। यह सुन्दर प्रबन्ध है जो स्वभावतः फुप्फुसुद्वय की रक्षा करता है, और उनको हानि से बचाता है।

"परन्तु अब विचार करो कि खराशकारी धूली कण दिन प्रति दिन श्वास द्वारा भीतर जाता है, जैसाकि धूम्र वाले शहरों, कारखानों, मैशीनों आदि में होता है, जहां काम होते समय बहुत सी धूली व धूम्र उड़ता है। ऐसी दशा में वह प्रबन्ध जिस से फुप्फुसुद्वय से खराश कारी परमाणु निकलते हैं, सदैव पूरा नहीं होता है, क्योंकि वह सिलिया (Cilia) इतने अधिक धूली कणों का सामना नहीं कर सकते हैं। इस वास्ते धूली और धूम्र के परमाणु कुछ समय तक उन सुकमार कलाओं में पड़े रहते हैं, जहां सोज़िश उत्पन्न हो जाती है, और बहुत सा कफ़ (म्यूकस) निकलना आरम्भ होता है। परन्तु अब यह प्रथम जैसा स्वस्थ कफ नहीं होता है, वरन् गाढ़ा व रुग्ण होता है, जिस को निकालने के वास्ते बहुत सा खांसने की आवश्यकता पड़ती है॥

"यदि यह खराश और खांसना दिन प्रतिदिन होता रहे, तो रोगी को दुःसाध्यकास (क्रानिक बरंकाइटिस) का रोग हो जाता है। धूलि कणों का निरन्तर चिरकाल तक फुप्फुसुद्वय में जाते रहना

निमोनिया और रक्त वमन को उत्पन्न कर देता है। कठोर तीक्ष्ण नुकीले परमाणु अधिक हानि करते हैं। टीन की खान खोदने वालों कुम्हारों, लुहारों, राजों, संगतराशों, इत्यादिकों को न्यूनाधिक अवश्य इस प्रकार की हानि पहुंचती है। कोयले की खान में काम करने वालों को उस से कम हानि पहुंचती है, क्योंकि कोयले के परमाणु उन से कम नुकीले होते हैं, पत्थर या धातुओं से कम खराश करते हैं।

जिन घरों के भीतर वायु के गमनागमन का उचित प्रबन्ध न हो, उनकी वायु में भी छोटे २ परमाणु होते हैं, और यह परमाणु पाश्विक द्रव्यों के होते हैं, क्योंकि जो लोग भीतर रहते हैं, उन की श्वास के साथ शारीरिक दूषित मल निकलते हैं। उन से जो सूक्ष्म परमाणु पृथक होते हैं वह इस वायु में वर्तमान रहते हैं। ऐसे बन्द कमरों में चन्द घन्टे रहने से भी शिरःशूल गरुता, आलस्य, और तन्द्रा सी होने लगती है। पाश्विक परमाणुओं से दूषित हुई वायु में नित्यम् प्रति श्वास लिया जावे तो स्वास्थ्य सर्वथा नष्ट हो जाता है, जैसा कि बन्द मकानों में रहने वाले लोगों को प्रायः देखा होगा। तब रोगी का शरीर कीटाणुओं का जो हर समय वायु में वर्तमान रहते हैं सामना करने के योग्य नहीं रहता है, और रोग कीटाणु प्रति समय वायु में रह सकते हैं। यही कारण है कि ऐसे लोग क्षयी ग्रस्त अधिक होते हैं, जो संकीर्ण घरों में रहते हैं।

"सर्दी लग जाने की सम्भावना भी ऐसी वायु में रहने से बहुत अधिक रहती है, जो कि पाश्विक परमाणुओं से पूर्ण हो। प्रतिश्याय या शीत ऐसे मनुष्य के साथ रहने से हो सकता है, जिस को यह रोग हो। नासिका से जो मल निकलता है उस में कीटाणु वर्तमान होते हैं, वह इतस्ततः दीवारों पर फेंकी हुई वस्तुओं के साथ शुष्क होकर धूलि बन कर वायु में मिल सकता है, जब शरीर अच्छी दशा में हो तो वह कीटाणुओं का सामना कर सकता है, परन्तु वह कब तक स्वस्थ रह सकता है, यदि दूषित वायु में दैनिक श्वास लिया जाता है। इस वास्ते ऐसे गृहों में रहने वालों को संसर्गिक प्रतिश्याय हो जाता है, और जितना शरीर

निर्बल होगा उतना अधिक शीघ्र रोग का प्रभाव होगा, और देर तक रहेगा।

इस के पश्चात् हम एक बात का वर्णन करना आवश्यक समझते हैं, वह यह कि धूलि के यह परमाणु कतिपय समय वायु नासिका तक नहीं पहुंचते हैं नासा छिद्र में ही अटक जाते हैं। घ्राण इन्द्रिय इसी प्रकार से श्लेष्म निकालती है, और नासिका साफ़ करते समय वह निकल जाते हैं। बहुत से नाक में ही अटक कर आगे नहीं जाते हैं। उपर्युक्त सम्पूर्ण बातों का ध्यान करके निम्न लिखित शिक्षाओं का पालन करना चाहिये :—

किंचित् दुर्व्यसन

जिन का त्याग प्रत्येक के लिये आवश्यक है। बाज़ लोगों को देखा है कि वह नासिका के भीतर जब श्लेष्म संग्रह होता है, तो वह उस को कण्ठ द्वारा ज़ोर से भीतर खींच कर मुख से बाहर निकालते हैं, और बाज़ों को इससे भी बढ़ कर घृणित दुर्व्यसन होता है, कि वह उसे उदर में ले जाते हैं। आप ने भी कई मनुष्यों को ऐसा करते देखा होगा। यह कैसा घृणित दुर्व्यसन है, इसके लिखने की आवश्यकता नहीं। वह मल जो बाहर निकलना चाहिए और जिसके भीतर कई कीटाणु लिपटे हो सकते हैं, उसका अमाशय में ले जाना कैसा हानिकारक है, प्रत्येक ज्ञानवान् समझ सकता है। जिस किसी को यह व्यसन हो, परित्याग करना चाहिये, और दूसरों से त्याग करवाना चाहिए। नज़ला की दशा में जब कि वह कण्ठ में गिरता है, उस समय श्लेष्म का कंठ की ओर जाना आवश्यक होता है, तब भी उसको भीतर कदापि न निगला जावे, प्रत्युत झट मुख मार्ग से बाहर थूक दिया जावे। घर में जब किसी को इस प्रकार की व्याधि हो तो उसको यत्र तत्र अपना श्लेष्म नहीं फेकने देना चाहिये।

"यदि थूकदानी आदि का प्रबन्ध न हो सके तो रद्दी काग़ज़ पास रक्खें और उसमें थूक कर एक ओर डाल दिया करें, फिर उसे जला दिया करें"।

रुमाल का अनुचित प्रयोग ।

बाज़ लोग अपने रुमालों का अनुचित प्रयोग करते हैं। अभी उससे हाथ धोकर मैल पोंछ रहे हैं, फिर बाज़ार जाते नाक साफ़ कर लिया है, घर आते हुए गंडेरियां या और कोई वस्तु लाए हैं, वह भी इसी रुमाल में डाल कर लाए हैं। यह बात केवल अपढ़ अज्ञान मनुष्यों में ही नहीं, वरन् बड़े २ लोगों, बाबुओं, और पदाधिकारियों तक में मैं ने देखी है। फ़ैशनेबल वस्त्र पहिने हुए बहुत से जेन्टलमैनों का जब रुमाल निकलता है, तो प्रायः गन्दा ही निकलता है। और आज कल जन्टलमैनी का यह भी एक अंग होता जाता है, कि जब खकार या नाक आवे, रुमाल से यह काम लिया जाता है। जो ऐसा नहीं करते वह बार २ हाथ पोंछने से और फिर कई दिनों तक उसको न धोने या न बदलने से बहुत गन्दा कर डालते हैं।

पाठकों को ज्ञात हो चुका है, कि नाक व मुख से निकलने वाले कफ में कितने जर्म्ज़ हो सकते हैं। और मल तो वह है ही। यदि रोगी गुप्त रूप से नई ग्रस्त हो, तो और भी अधिक भय होता है। यह सब मल रुमाल के साथ ही समाप्त हो जाता है, और जब हम उसी में खाद्य वस्तुओं को रखते हैं, तो निःसन्देह वह वस्तुएं हानिकारक हो जाती हैं। आश्चर्य्य होता है, कि हाथ धोकर किसी खाद्य वस्तु को लगाने वाले हिन्दू भी ऐसे रुमालों को कैसे उचित समझते हैं। शोक है, कि हम सिद्धान्तों को भूल कर केवल रिवाज के पीछे चलते रहते हैं। हमारा चांदी का गिलास धोने से शुद्ध हो जाता है, चाहे उसमें १ छटांक मिट्टी लगी हो। मनु जी महाराज ने चांदी के साफ़ गिलास के वास्ते शुद्ध लिखा है, चित्रकारी किए हुए मल को भीतर जमा करके लाखों जर्म्ज़ के घर को शुद्ध नहीं लिखा है। हम शौच जाकर हाथ मांजना आवश्यक समझते हैं परन्तु इस बात की परवाह नहीं करते कि मिट्टी कहां से ली है। पांव की मिट्टी, जूठी वस्तुओं युक्त राख, गन्दे स्थान की मिट्टी, सब हमारे लिए एक जैसी है। हम मिट्टी के पानी के घड़े को किसी के हाथ नहीं लगाने देते चाहे घड़े व झझरी पर ६ मास की मैल जमी हुई हो। हम

ऊनादि के आसन को शुद्ध समझते हैं, चाहे पिता के समय की मैल जमी हो। आसनों के पूने हमारे घरों में धोने की आवश्यकता नहीं समझी जाती है। हमारी स्त्रियों का रेशमी लंहगा शुद्ध है, चाहे सैकड़ों बार श्मशान हो आया हो, और मल पूर्ण हो, क्योंकि रेशमी लहंगा धोने से खराब होने के भय से वर्षों तक धोया नहीं जाता। हम किसी के हाथ का भोजन नहीं खाते हैं, परन्तु गन्दे रुमाल से छुई हुई वस्तु खा जाते हैं। श्वेत रुमाल भी जिनकी जेब में है क्या पता वह भी शुद्ध है या नहीं। अभी रुमाल जेब में डाला है, अभी नाक साफ़ किया नाक साफ़ करने के पश्चात् जो कुछ ओष्ठों या मूछों आदि पर इतस्ततः लगा रहता है, वह भी इसी से साफ़ किया जाता है। यदि थूका है, और ओष्ठों पर वह लग गया है, तो इसी रुमाल से साफ़ किया जाता है। हस्त या मुख धोया है, तो इसी रुमाल से सुखाया जाता है। तब वह श्वेत दृष्टिगोचर होता हुआ भी शुद्ध नहीं है। बस दो ही बातें हो सकती हैं। या तो जेब में सदैव दो रुमाल रक्खा करो, एक शुद्ध रहे उसको गन्दा न किया करो, यथावश्यक उसमें वस्तुएं ले आया करो, दूसरा रुमाल नाकादि साफ़ करने, या हाथ मुख धोकर पोंछने आदि के वास्ते रक्खा जाये। यदि दो रुमाल नहीं रख सकते, तो यह नियम बनाओ कि कभी कोई खाने या सूंघने वाली वस्तु रुमाल में न लावेंगे, न सूंघेंगे।

सफ़ाई के वास्ते जो रुमाल है उसके वास्ते भी निम्न लिखित बातों का ध्यान रक्खा करें:—

(१) रुमाल को दैनिक धो लिया करो। यदि सोते समय धोकर फैला छोड़ें, तो एक ही रुमाल साफ़ रहता हुआ चिरकाल तक चल सकता है।

(२) यदि सामर्थ्य है तो प्रति दिन नया रुमाल ले लिया करो। दो दर्जन रुमाल रहें, एक दर्जन रक्खे रहें, एक दर्जन काम में रहें।

(३) यदि नौकर है, या स्त्री घर में वर्तमान है, तो दो रुमाल पर्य्याप्त हैं। उनसे धुला सकते हो।

(४) यदि आपको नाकादि की सफ़ाई की अधिक आवश्यकता नहीं रहती, आपका रुमाल साफ़ रहता है, तो भी तीसरे या चौथे

दिन बदल दिया करो। यदि आप क्षयीग्रस्त हैं या उसका सन्देह है, या जीर्ण कास है, तो साधारण रुमाल रक्खो। सब कफ़ादि उसमें लो, और सायम् को जला दिया करो। काग़ज़ ही जेब में रक्खो। इसके जलाने से व्यय अल्प होगा।

(५) यदि आप जलाना नहीं चाहते तो अपने रुमाल को कारबालिक एसिड के पानी में डाल कर शुद्ध कर लिया करो या खूब खौलते हुए पानी में ८-१० मिनट तक डाल कर शुद्ध कर लो। यदि धोबी से धुलाना हो तो भी उसको देने से प्रथम उपर्युक्त विधि से शुद्ध करो, ताकि दूसरों तक आपके रोग का दुष्प्रभाव न पहुंचे।

(६) जब कफ़ रुमाल में सूख जाता है, तो स्वयम ही उसको बारम्बार सूंघना, या उसमें खाद्य वस्तुएँ डालना हानिकारक है।

केवल रुमाल की सफ़ाई पर मैंने इतना लिख दिया है, इस वास्ते कि आप लोग रुमाल की सफ़ाई की आवश्यकता को समझें। मैं देखता हूं, कि इस आवश्यक नियम की ओर से हमारे प्रतिष्ठित श्रीमान् लापरवा हैं, इस वास्ते इसको लिखना पड़ा।

वायु दूषित् होने के चतुर्थ कारण गर्द धूली, का वर्णन करते हुए हम उस के एक आवश्यक भाग को त्याग नहीं सकते हैं, और वह यह है :—

किञ्चित् व्यवसायों द्वारा वायु दूषित होना ॥

यद्यपि बहुत से व्यवसाय इस प्रकार के हैं, जिन से वायु उन गैसों के कारण जो उन की बनावट के समय निकलती हैं, खराब होती है, परन्तु बहुत से व्यवसायों में वायु उस गर्द से खराब होती है, जो कि उन के कामों से उत्पन्न होती है,। उस गर्द के साथ इस बात का भी प्रभाव होता है, कि कारख़ाना कैसी दशा में है। खुली वायु में है या कमरे हवादार हैं, या बन्द हैं। एक कमरे में, बहुत मनुष्य रहते हैं, या थोड़े रहते है॥

यह बात सिद्ध हो चुकी है, कि धूलि में देर तक सांस लेने से फुफ्फुस सम्बन्धी रोग उत्पन्न हो जाते हैं, चाहे वह धूलि वनस्पति

कणों से बनी हो, या पार्थिव कणों से। इन परमाणुओं की तीव्रता इन को अधिक हानिकारक बनाती है, चाहे उद्भिद हों या पार्थिव, क्योंकि नोकदार तीव्र परमाणु ही भीतर जाकर ख़राश उत्पन्न करते हैं, और अड़ जाते हैं। एक नक़शे से इस बात की पुष्टि होती है, जो कि ओगली (Ogle) साहिब ने इंगलैण्ड व वेल्ज़ के विविध व्यवसाय के मज़दूरों का दिया है। इस से सिद्ध होता है, कि फुफ्फुस रोगों से सब से अधिक मृत्युएं टीन की कानों में काम करने वालों की, उस से कम कुम्हारों की, या मिट्टी का काम करने वालों की होती हैं। इस से कम रेती आदि बनाने वालों की. इस से कम चाकू कैंची आदि बनाने वालों की, फिर क्रमागत पत्थर, सिलेटादि का काम करने वालों, रुई का काम करने वालों, ऊन का काम करने वालों, बावर्चियों, क़लईगरों, राजों, तरखानों की होती हैं, और कोयला की कान में काम करने वालों में सब से न्यून मृत्युएं होती हैं। यह बात वास्तविक विचित्र है कि कोयला की कान में काम करने वालों की सब से कम मृत्यु होती है, यद्यपि वह भूमि के नीचे रहते हैं, जहां खुली वायु नहीं मिल सकती है, गरमी रहती है, बहुत सी कारबानिक एसिडगैस रहती है, और कान के भीतर बाहिर आने जाने के कारण सरदी गरमी में बारम्बार परिवर्तन होता रहता है। डाक्टर ओगली साहिब ने कोयले की कान के परमाणुओं को सूक्ष्म दर्शक यन्त्रों से देख कर अनुमान लगाया है, कि वह तीव्र नहीं होते हैं। हमारा यह भी विचार है, कि कोयले के भीतर दुर्गन्ध नाशक प्रभाव है। इस वास्ते सम्भव है, कि यह परमाणु क्षई आदि के रोग कीटाणुओं को नष्ट करते हों, और बन्द वायु में रहने आदि से जो उन को अधिक भय इन रोगों का हो, उस को कोयले के परमाणु कम कर देते हों। इसी वास्ते यहां उपर्युक्त व्यवसायकारियों में से कोयले की कान में काम करने वाले कम मरते हैं। सहस्र में से सौ के लगभग राजयक्ष्मा से मरते हैं। इसका कारण यह है कि उनको बन्द वायु आदि के विकार दूर होते हुए, कोयले वाले परमाणुओं का लाभ नहीं मिलता. और टीन के परमाणु भी नुकीले और चुभने वाले होते हैं। राजों व संगतराशों की मृत्यु संख्या इस वास्ते कम नहीं होती कि उनके परमाणु तीव्र नहीं होते, प्रत्युत इस लिए कि वह

खुली वायु में काम करते हैं। रेती बनाने वालों की मृत्यु संख्या अन्य लोहे का काम करने वालों से इस वास्ते अधिक है कि रेती को सीसा के ऊपर मारना पड़ता है, और सीसा का विष उनके भीतर जाता है। संक्षिप्त यह कि ऐसे सम्पूर्ण व्यवसाय जिन में धूलि रज रहती है, धूम्र उठता है, या परमाणु उड़ कर वायु में मिलते हैं, उनसे फुप्फुस रोग उत्पन्न होने का भय है। उन में केवल नासिका द्वारा स्वांस लेना चाहिए। नासा रोम कभी नहीं उतारने चाहिएं, और यदि अत्यन्त धूलिरज हो तो घ्राणद्वार पर सूक्ष्म मलमल का वस्त्र रक्खा जा सकता है, या इस अभिप्राय के लिए डाक्टरी दूकानों से Respirators घ्राणद्वार पर लगाने के जालीदार प्याले से मिल जाते हैं। इस के अतिरिक्त बाज़े कामों में तीव्र दुर्गन्ध निकलती है, और वायु को दूषित करती है। वह न केवल वहां काम करने वालों के लिए हानिकारक होती हैं, प्रत्युत दूर २ तक उसका प्रभाव पहुंचता है॥

चर्म रंगने व धोने वाले दारुण दुर्गन्ध फैलाते हैं। ऐसे ही कच्चे चर्म के साफ़ करने में भी घोर दुर्गन्ध फैलाते हैं। अस्थियों को जलाते समय मीलों तक दुर्गन्ध फैलती है। कई अंग्रेज़ सौदागर जो हमारे देश की भूमि को उर्वरा (ज़रखेज़) करने वाली अस्थियों को एकत्र कर उनको जलाकर विलायत भेज देते हैं। वह यहां उनको जलाते हैं, उसके इतस्ततः जितनी दुःखदाई दुर्गन्ध फैलती है, वह सब को ज्ञात ही होगी। रेशम के कारख़ाने में जहां रेशम के डोडों को (रेशम कीट बन्द रहता है) रेशम निकालने के वास्ते उबालते हैं, श्रीनगर के कारख़ाना में हम ने देखा कि इतनी दुर्गन्ध थी कि वहां ठहरना दूभर प्रतीत होता था॥

जो लोग वसा से साबुन बनाते हैं, वह भी बड़ी दुर्गन्ध फैलाते हैं। ऐसे ही मोम बत्तियों आदि का हाल है। बूचड़ख़ानों से भी दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। और खेतों में डालने के वास्ते खाद जो जमा रखते हैं, या पत्रों आदि को सड़ाकर खाद तैयार करते हैं उनसे भी दुर्गन्ध निकलती है। बाज़े व्यवसायों में दुर्गन्ध के अतिरिक्त विष भी निकलता है। सीसा का काम करने वालों में कतिपय

समय विष चढ़ जाता है, और कई रोग हो जाते हैं। ऐसे ही फ़ास्फ़ोरस के कारख़ानों की दशा है, यथा दियासलाई का व्यापारादि। संखिया आदि विषैली वस्तुओं के कारख़ानों में भी असावधानी से विष का प्रभाव हो जाता है। यह तो ऐसे प्रचण्ड विषय हैं कि भिषक लोग साधारण जौहर उड़ाते समय हानि उठा लेते हैं। इस का धूम्र नेत्रों में लगने से अनेक बार लोग अन्धे हो जाते हैं॥

रंग कई धातुओं से तैयार किए जाते हैं। उन से भी काम वालों पर विषैले प्रभाव हुए हैं। तेज़ाब गन्धक आदि के कारख़ानों में बड़ी सावधानी रखने की आवश्यकता है॥

जब तक हम पाठकों को यह बतला चुके हैं कि वायु किन २ कारणों से दूषित होती है। अब हम संक्षिप्त रूप से यह बताना चाहते हैं कि दूषित वायु का पृथक २ हम पर क्या प्रभाव होता है।

दूषित वायु से उत्पन्न होने वाले रोग।

डा० ऐम० डेविस साहिब का कथन है, "कि लगभग सम्पूर्ण ज्वर के लक्षण वाले रोग दूषित वायु से उत्पन्न हुए वर्णन किए गए हैं। मसूरिका, मोतीज्वर, टाईफ़स, प्रतिश्ययिक ज्वर, कूकर खांसी, कनफेड़े, और शूलयुक्त ज्वर प्रायः इस कारण से होते हैं कि सूक्ष्म रोग कीटाणु वायु में सम्मिलित हो जाते हैं और ऐसी दूषित वायु में श्वास लेने से रोग हो जाते हैं। कण्ठशोथ शूकरदंष्ट्रादि भी कई बार इसी कारण से होते हैं। पित्तज्वर, विषूचिका, अतिसार आमातिसारादिक रोग भी कई बार वायु में दूषित मल परमाणुओं के सम्मिलित होने से होते हैं। निमोनिया की भांति की प्लेग में भी कई बार वायु द्वारा विष पहुंचता है। डेंग्यू ज्वर के विषय में भी कई तत्त्ववेताओं का ऐसा ही विचार है। कई कहते हैं कि मैलेरिया ज्वर जोहड़ों आदि की दूषित वायु से उत्पन्न हो जाता है।

इन ज्वरों की भांति के रोगों के अतिरिक्त कई अन्य रोग भी दूषित वायु से उत्पन्न होते हैं। इनमें मूर्च्छा और कारबन मानो आकसाईड का विष रक्तज रोग है। ज्वर वायु में बनस्पति के परमाणुओं और पौधों के बौरादि के सम्मिलित होने से उत्पन्न होता है। खांसी, निमोनिया, क्षई, और ऐसे ही सम्पूर्ण फुफ्फुस रोग वायु में

उद्भिद या पाश्विक सूक्ष्म परमाणुओं के सम्मिलित होने के कारण उत्पन्न होते हैं।

कण्ठ में खराश होना, अपाचन, वमन, अतिसार, उदरशूल इत्यादि भी दूषित वायु से उत्पन्न हो सकते हैं, प्रत्युत यहां तक प्रमाणित हो चुका है, कि फोड़े फुन्सी भी दूषित वायु में श्वास लेने से उत्पन्न हो सकते हैं। और कई शारीरिक विषों यथा संखिया, सीसा, पारा आदि का प्रभाव भी वायु द्वारा हुआ है। जब वायु कारबानिक एसिड गैसादि से अधिक विकृत हो, तो श्वास रुकने लगता है, और अति विकृत हो तो मृत्यु हो जाती है"।

डा० डेविस ने अपनी पुस्तक में प्रत्येक वायु की विकृति का पृथक २ बड़ी उत्तमता से वर्णन किया है। हम अपने पाठकों को उस का सारांश बतलाते हैं:—

कारबानिक एसिड गैस—को कारबनडाई आकसाईड गैस भी कहा जाता है। और भी नाम आजकल प्रचलित हैं। इस का तात्पर्य्य यह होता है, कि कार्बन के साथ दो भाग आकसीजन मिली होती है। यह अत्यन्त विषैली वायु है, और यदि केवल इस वायु में श्वास लिया जावे तो मनुष्य अचानक श्वास रुक कर मर जाता है॥

डा० डीमारकी का विचार है, कि अष्ट भाग वायु में ४ भाग कारबानिक एसिड गैस मिली हो, तो ४-५ मिनट मनुष्य जीवित रह सकता है। परन्तु दूसरों के तजरुबे प्रगट करते हैं कि इतनी मात्रा घातक है।

डा० फास्टर कहता है, कि उसने ४ प्रति सैंकड़ा मिलावट वाली वायु में १० मिन्ट तक श्वास लिया और कोई कष्ट मालूम न हुआ, परन्तु डा० एगनिस स्मिथ कहता है, कि ३ प्रति सैंकड़ा कारबानिक एसिड गैस की मिलावट वाली वायु में श्वास लेने से उसकी हार्दिक गति मन्द हो गई, और श्वास घुटने लगा।

डेढ़ दो प्रति सैंकड़ा की मिलावट से बाज़ों को तीव्र शिरःशूल आरम्भ होता है, और ५ या १० प्रति सैंकड़ा घातक प्रमाणित हुई है। परन्तु डा० सरजे सिम्पसन ने २० प्रति सैंकड़ा मिलावट की वायु में एक मनुष्य को अचेत करने के वास्ते रक्खा, आपरेशन किया

पश्चात् खुली वायु में रखने से कष्ट न हुआ, बन्द मकानों, पुराने कूपों, और कानों के भीतर बाज़ समय यह गैस बहुत सी संग्रह होती है। ४ प्रति सैकड़ा कारबानिक एसिड गैस की वर्तमानता में मोमबत्ती जला कर ले जावें, तो बुझ जाती है, जितना शीघ्र बुझे उतनी ही अधिक वायु दूषित समझनी चाहिए। गहरा कूप खोदने वालों को अरुचि, वमन, शिरःशूलादिक रोग इसी गैस के कारण होते हैं। इस में श्वास लेने से शरीर बेसुध होजाता है, जैसे क्लोराफ़ार्म का प्रभाव होता है, इसी वास्ते तंग कमरे में बहुत मनुष्य सोने से जब वायु दूषित हो जाती है, तो प्रायः मरे हुए निकाले जाते हैं, परन्तु द्वार उठकर कोई नहीं खोलता, इस से साफ़ प्रगट है, कि कारबानिक एसिड गैस मिश्रित वायु का प्रभाव मानुषी शरीर को निर्बल करने वाला होता है। लोग तंग कमरों में और बन्द वायु में सोते हैं। उन के शरीर निर्बल हो जाते हैं, और निर्बल शरीर कई प्रकार के रोगों का घर होता है। इस के अतिरिक्त ऐसी वायु में श्वास लेने से शिरःशूल और मन्दाग्नि सम्बन्धी रोग हो जाते हैं। यदि इसकी मात्रा प्रति सहस्र १ भी हो, तो भी धीरे २ बहुत हानि पहुंचती है। शहरों में तंग स्थानों में रहने वाले, और खुली वायु में रहने वालों में बड़ा अन्तर देखोगे।

कारबनमानो आकसाईड-जैसा कि वर्णन हुआ कि जब कारबान के साथ २ भाग आकसीजन मिल जाती है, तो वह कारबनडाई आकसाईड या कारबानिक एसिड गैस कहलाती है। परन्तु जब कारबानिक के साथ एक भाग भी आकसीजन मिले अर्थात् अग्नि पूर्ण रूप से न जलती हो, केवल सुलगती हो, तो उससे कारबन मानो आकसाईड उत्पन्न होती है। जो कारबानिक ऐसिड गैस की रूपान्तर समझना चाहिए। यह भी हमारे लिए वैसी ही हानिकारक है और विकाशी प्रभाव इस में अधिक है। सुलगते हुए कोयले के विष से (जिस में कारबानिक एसिड गैस के साथ यह गैस भी वर्तमान होती है। जब मनुष्य अचेत होता है कि उस को क्या हो रहा है। ज्यों २ विष प्रभाव करता है साथ ही क्लोरोफ़ार्म का प्रभाव होता जाता है और शरीर बेसुध होता

जाता है। और यह बोध भी नहीं रहता कि क्या हो रहा है। कारबानिक एसिड गैस की दशा में तो कुछ दम घुटने लगता है (जब कि बहुत से मनुष्य किसी बन्द कमरे में बैठे हों तो वायु दूषित होने से ऐसा ज्ञात होता है कि श्वास घुट रहा है) परन्तु इस में यह भी नहीं होता है।

विचित्र बात यह है कि कारबानिक एसिड गैस के विष से तो रक्त काला हो जाता है परन्तु इस से लाल ही रहता है क्योंकि इस का प्रभाव रक्त के साथ मिलने से और आक्सीजन को निकाल देने से होता है। कारबानिक एसिड गैस से निद्रा आती है। इस में ऐसा नहीं होता है प्रत्युत आकुञ्चन भी हो सकता है। कारबानिक एसिड गैस में पेशियां निर्बल होती हैं और इस में पेशियां शून्य होती है। डा० लेथबी (Letheby) ने देखा कि जिस वायु में एक सहस्र में ५ भाग कारबन मानो आकसाइड था उस में श्वास लेने से ३ मिनट में पक्षी मर गए। डा० मैक्स ग्रूलर (Max Gruler) का विचार है कि सहस्र भाग वायु में इस का ¼ या ½ भाग होना भी मनुष्य के लिए विषैला प्रभाव रखता है क्योंकि उस के भीतर श्वास लेने के रक्तज परमाणु जिन में आक्सीजन होती है, निकल जाती है और उस की मिलावट से एक और बन जाती है।

अचेतनता, हृदय का फ़ालिज और आकुञ्चन हो जाता है। थोड़ी मात्रा भर में थोड़ी देर श्वास लेने से शिर शूल, गरुता, और अचेतनता हो जाती है। कोयले सुलगने, चूना की भट्टी, या ईंटों के भट्ठों, के ऊपर सोना इत्यादि, से जो केस होते रहते हैं, वह वायु में कारबानिक एसिड गैस और कारबानिक आक्साइड के मिश्रित होने से होते हैं, और तजरुबे बतलाते हैं कि वायु जिस में केवल कारबानिक एसिड गैस हो इतनी विषैली नहीं होती जितनी उस समय जब कि इस में कारबन आकसाइड भी मिल जावे॥

कोयले की गैस कतिपय समय ऐसी भूमियों से भी निकलती है, जिन के नीचे कोयले की कान हो। भूगर्भ की गरमी से कोयला अधूरा सा जलता है, जिस से यह गैस उत्पन्न हो कर भूमि से

निकलती है। मृतिका द्वारा आने से इस की दुर्गन्ध मिट जाती है, इस लिए कुछ पता भी नहीं लगता और दुर्घटनाएं हो जाती हैं। ऐसे ही कोयले की कानों में भी यह गैस होती है ॥

वाटर गैस—प्रकाश के लिए जैसे कोयले की गैस बर्ती जाती है, वैसे ही वाटर गैस भी बड़े २ शहरों में तैयार होती है। इसका प्रकाश बहुत उत्तम होता है। परन्तु यह अत्यन्त हानिकारक व प्राणनाशक होता है। कोल गैस ३० भाग वायु में १ भाग मिले तो प्राणहर हो जाती है, किन्तु यह २०० में १ भाग मिल जावे तो वायु प्राणहर हो जाती है। कोल गैस की दुर्गन्ध मनुष्य जान कर तुरन्त उस से हट सकता है, परन्तु इस में कोई गन्ध नहीं होती, इस वास्ते जिन शहरों में इसका रिवाज था वहां बहुत मृत्युएं होने लगीं। तब यह क़ानून पास हुए कि इसको कोल गैस के साथ मिलाकर वर्तना चाहिए, और कालगैस में मरकैपटिन और पाईरीडाईन (Pyridine) मिलाना चाहिए जो इसको दुर्गन्धयुक्त कर देती है। वाटरगैस में ३० से ४० प्रति सैंकड़ा कारबानिक आक्साईड होता है, और यही इस को प्राण हारक बनाती है। हमारे शहरों में इसकी प्रथा नहीं है। अतएव इस पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं है।

एसीटीलीन (Acetyline) भी एक प्रकार की गैस है, जो कि प्रकाश के लिए वर्ती जाती है। इसके भीतर कार्बन २ भाग, और हाईडरोजन २ भाग सम्मिलित होता है। यह वही गैस है जो साधारणतयः शहरों में एक मसाला के द्वारा उत्पन्न की जाती है। गैस लैम्प इसी से प्रज्वलित होते हैं। इसके वास्ते एक मसालह आता है जिसका असल नाम कैलसियम कारबाईड है और साधारण जन कारबाईड कहते हैं। बाज़ार से कारबाईड को लाकर एक डब्बे में बन्द करके उस को एक दूसरे डब्बे में डाल देते हैं जो पानी से भरा होता है। उस में ऐसे छिद्र रक्खे होते हैं। उन से बिन्दु २ जल आन्तरिक डब्बे की कारबाइड में जाता है। पानी लगते ही दुर्गन्धित गैस उत्पन्न होती है, और लैम्प के छिद्रों से निकलने लगती है। दियासलाई दिखाने से वह जल उठती है।

कैलसियम कारबाइड पर पानी लगाने से कैलसियम अर्थात् चूना पृथक हो जाता है और एसीटीलीन गैस पृथक हो जाती है। यह गैस भी हानिकारक है। परन्तु कोल गैसादि के तुल्य नहीं है। इस से श्वासावरोध शीघ्र नहीं होता है। स्थान खुला हो, वायु का गमनागमन खूब हो तो इस का इतना भय नहीं होता है परन्तु संकीर्ण स्थान में बहुत हानि करती है।

हाइडरोजन सल्फ़ाइड–यह भी एक प्रकार की गैस है जो दलदलों आदि पानी के स्थानों में पाई जाती है। कानों में टनल खोदने पर भीतर इसका प्रभाव विकाशी होता है और सम्पूर्णाङ्ग शून्य हो जाते हैं। यदि २० प्रति सहस्र तक हो तो मार भी देता है। एक डाक्टर ने एक सहस्र में १ भाग मिलाकर उस में कुत्ते को रखा तो वह मर गया। कहते हैं इस गैस का प्रभाव देर में होता है। कई जीर्ण रोग यथा अपाचन, निर्बलता पाण्डु, अचेतनता आदि इस गैस से हो जाते हैं। दलदलों में इस गैस के अतिरिक्त एक सधारण गैस और भी होती है, जिस को मार्शगैस या मीथेन (Methane) कहते हैं अर्थात् दलदली वायु। यह गैस प्रायः कोयले की कानों में भी पाई जाती है। दलदली वायु में चिरकाल तक बिना किसी विशेष कष्ट के लोग श्वास ले सकते हैं, किन्तु यह भी हानिकारक गैस है, और इस से बचना चाहिए।

फ़ासफ़ोरस आक्साइड–दियासिलाई की बनावट में फ़ास्फ़ोरस बहुत खर्च होता है। बहुत सी वाष्पें, धूम्र फ़ास्फ़ोरस से निकलती रहती हैं। उन के भीतर फ़स्फ़ोरस आकसाइड गैस होती है। यह अत्यन्त हानिकारक वायु है। कई प्रकार के मुख रोग हनुस्तम्भादि क्लैव्यता, कृशता, अपाचन, अलव्यूमीनोरिया, इत्यादि २ हो जाते हैं। यदि कृमि दन्तक रोग हो तो बहुत शीघ्र इसका प्रभाव होता है। ऐसे कारखाने में काम करने वालों को विशेष सावधानी से रहना चाहिये और कमरे इतने हवादार हों कि गैस के संग्रह होने का किञ्चित् मात्र भी भय न रहे।

कारबन डाई सलफ़ाइड–यह गैस रबड़ के कारखानों से उत्पन्न होता है, इसका प्रभाव भी विकाशी होता है। इस से प्रबल

शिरः शूल, तन्द्रा, हार्दिक निर्बलता, उत्पन्न होती है। कभी बहरापन, अन्धता, और अर्धांगवात भी हो जाता है। उन्माद की दशा भी देखी गई है।

(१) हाईडरोक्लोरिक एसिड गैस अर्थात् तेज़ाब लवण युक्त गैस (२) एमूनिया अर्थात् नौशादर, और (३) सलफ़र डाई आकसाईड अर्थात् आक्सीजन मिश्रित गन्धक गैस, यह तीनों शोथकारी हैं, और झिल्लियों पर शोथ करके कासादि उत्पन्न करती हैं। अधिक मात्रा में प्राणहारक होता है। यह गैस पौदों के सम्बन्ध में भी किञ्चित् हानिकारक है।

वायु के भीतर के ठोस पदार्थों का प्रभाव।

(प्रथम) निर्जीव गर्द—विविध पेशों से या वैसे ही जो गर्द इस प्रकार की उड़ती रहती है उसका प्रसिद्ध प्रभाव 'श्वास' अर्थात् दमा है जो कि खांसी के साथ आरम्भ होकर वर्षों तक धीरे २ बढ़ता रहता है। इस प्रकार की खांसी के साथ बहुत कफ़ निकलता है और रक्त भी नहीं जाता है।

(क) यदि कोयले की गर्द है तो उससे पुरानी खांसी श्वासावरोध और वायु के एक जगह फिरने से शोथ होती है। धातों की कानों में छाती के कष्टों के अतिरिक्त और भी होते हैं। सीसा की कानों के काम करने वालों को परिणाम शूल अधिक होते हैं। मसूढ़ों पर नीली लकीरें दिखाई देती हैं। तांबा की कानों में भी अन्त्रियों की खराबियां होती हैं।

मिट्टी के पात्रों का काम करने वालों को तंगी श्वास अधिक होती है।

लोहे की रेती आदि का काम करने वाले मज़दूरों को एक प्रकार का यक्ष्मा होता है जिसको चाकू तेज़ करने वालों का "दिक़" कहते हैं। इसमें कण्ठ में बहुत खराश होती है। रुक्ष कास होती है। कफ़ कठिनता से निकलता है जिसमें कठोर ढेले से होते हैं। कतिपय समय रक्त भी देखा गया है।

पीतल का काम करने वालों को एक प्रकार का ज्वर होता है जिसमें कंमकंपी, शिर दर्द, मतली, वमन होती है। ज्वर के पीछे निद्रा आकर प्रायः आराम हो जाता है।

(द्वितीय) बनस्पति गर्द–रुई के कारखानों में या सन के कारखानों में, काग़ज़ बनाने के कारखानों और आटा पीसने इत्यादि के कारखानों से जो गर्द उड़ती है वह बनस्पति गर्द होती है।

रुई के कारखानों में काम करने वालों के खांसी क्षय अधिक देखी जाती है। इसका कारण केवल गर्द नहीं वरन् कमरे की गरमी और नमी भी इसका कारण हुआ करती है।

सन, अलसी सनुकुकड़े के कारखानों की गर्द अधिक खराशदार होती है। उससे श्वासावरोध और कठिन कास होती है। काग़ज़ के कारखानों में छाती कष्ट के अतिरिक्त शीतल, पित्तज्वर आदि संसर्गिक रोग भी हो जाते हैं। इस की बनावट की वस्तुओं के गन्दा और छूत ग्रहण करके बनने के कारण आटे की मैशीनों वालों के कास श्वास बहुत है।

(तृतीय) पाशविक गर्द–ऊन के कारखानों की, या रेशम के कारखानों की या ऐसे ही ऊंट, घोड़े आदि के बालों से तैयार होने वाली वस्तुओं के कारखानों की गर्द को पाशवक गर्द कहना चाहिए। ऊन के कारखानों में कार्य्यकर्त्ताओं को एक विशेष बीमारी हुआ करती है। जिसका कारण ऊन के भीतर सूक्ष्म कीटाणु वर्णन किए जाते हैं। इसमें ज्वर होता है। जिसके साथ दर्द शिरः शूल वमन, श्वास, और कफ़ज कास होता है।

रेशम के कारखानों में जहां गरम पानी में डोडे उबाले जाते हैं महा दुर्गन्ध आती है। नाक दबाने के बिना कोई पास खड़ा नहीं हो सकता है। इसके अतिरिक्त कई जगह गर्द भी उड़ती है। यह सब हानि कारक होती है और रुई आदि के कारखानों में अधिक इसी से रोगी होते हैं।

(चतुर्थ) सजीव गर्द–कई भाजियों व पुष्पों के भीतर से बौर बसन्त या ग्रीष्म ऋतु में उड़ते हैं और वह मनुष्यों की श्वास

के साथ चले आते हैं जिससे उनको एक प्रकार का ज्वर होता है जिसे घास का ज्वर (हे फ़ीवर) कहते हैं। तत्ववेता वर्णन करते हैं कि बहुत से चर्मज रोग ऐसे ही वृक्षों के जीवित परमाणु वायु में उड़ कर मनुष्यों के शरीर पर लगने से हो जाते हैं। कई ऐसे परमाणु भी उड़ा करते हैं जिनसे मतली, अंध, और मूर्छा तक होते हैं। कई परमणुओं से जुकाम, नज़लादि होते हैं। मैलेरियाबत ज्वर तो बहुत हैं जो ऐसे ही बनस्पतीय परमाणुओं में श्वास लेने से होते हैं।

सजीव गर्द के अतिरिक्त सजीव कीटाणु भी कई प्रकार के वायु में उड़ते रहते हैं। यह कोई हानि रहित होते हैं, कोई बड़े रोग उत्पन्न करते हैं यथा किसी पशु को प्लीहा हो, तो उसके ऊन या चर्म से प्रायः वैसे ही रोग कीटाणु पृथक् होते हैं जो कि वायु में घूमते रहते हैं और जहां वह स्वस्थ मनुष्य के शरीर में जाते हैं तो प्लीहा व ज्वर उत्पन्न कर देते हैं। यद्यपि मैलेरिया और प्लीहा अपने विशेष हेतुओं से होते हैं परन्तु इस प्रकार भी हो सकते हैं। राजयक्ष्मा तो वायु में रोगियों के शुष्क कफ़ के मिलने से होना सब जानते हैं।

शीतला, लाल ज्वर, मोती ज्वर इत्यादि के कीटाणु भी वायु में रोगियों के भीतर और उसके इर्द गिर्द होते हैं और इसमें भी श्वास लेने से वह रोग हो जाते हैं। ऐसे ही बीसियों रोगों के कीटाणु हैं और जैसा कि हम वर्णन कर चुके हैं इससे बचना बड़ा कठिन है। जब हम इनसे यथा सम्भव बचे रहें, वहां हम में इतनी शक्ति और बल होना चाहिए, कि यदि यह चले भी जावें तो हमारा शरीर उनको नष्ट कर सके।

यहां तक हमने यह बर्णन किया, कि अंग्रेज़ी साइन्स अनुसार वायु क्या वस्तु है, और वह कैसे खराब होती है, और इसके भीतर क्या २ खराबियां वर्तमान हैं। अब हम भारतीय चिकित्सा (वैधक व यूनानी) के अनुसार बतलाना चाहते हैं कि वायु क्या वस्तु है उसके प्रभाव क्या हैं और विविध प्रकार की पवनें शरीर पर क्या प्रभाव करती हैं।

वायु-पञ्च तत्वों में से एक तत्व है, जिस पर मनुष्य और पशुओं का जीवन निर्भर है और सम्पूर्ण सृष्टि की बनावट में सम्मिलित है। जीवन की आवश्यकताओं में से सब से प्रथम इसकी आवश्यकता है। इसका कुछ मिन्टों तक प्राप्त न होना, जीवन को नष्ट कर सकता है।

वायु का स्वभाव।

वायु को यूनानी में गरम तर माना है, परन्तु इस में एक भूल भी हो जाती है। लोग 'तरावत' के अर्थ सदैव वैसे ही समझते हैं जैसे कि घी 'तर' है, या इस्पगोल तर है। तर शब्द यूनानी में कई हेतुओं से वर्ता जाता है। अतः उस वस्तु को भी तर कहते हैं जो सुगमता से विविध आकार ग्रहण करे, यथा पानी और उससे भी बढ़ कर वायु कि जहां डाला तुरन्त उसका आकार ग्रहण कर लेगा। इस विचार से वायु को "तर" कहा है और गरम इस विचार से कहते हैं कि वायु हलकी और सब के ऊपर है। भूमि के इतस्ततः सब से ऊपर आकाश में सब से प्रथम अग्नि का दर्जा माना है, दूसरा वायु का, तीसरा पानी और मिट्टी का मिला हुआ, अग्नि के दर्जे के साथ जो दर्जा वायु का अग्नि के साथ मिला हुआ है; वह ऊष्ण है। संक्षिप्त यह कि वायु को ऊष्ण माना है, परन्तु वही वायु जब मानुषी शरीर में जाकर कोई रोगोत्पन्न करता है, तो यूनानी में उसका "गरमतर" इलाज करते हैं और 'सर्द खुश्क' उसको अनुभव करते हैं। हमारे यहां भी जितने वातज रोग हैं वह शीत रुक्ष हैं। इस वास्ते वायु को रुक्ष ही कहा है, जो ठीक है। वायु के उष्ण होने के युनानी पुस्तकों में बहुत से प्रमाण हैं जो पाठकों के मनोरंजनार्थ अंकित करते हैं:—

वायु के गरम होने का प्रथम प्रमाण।

वायु का हलका, सूक्ष्म, और रुक्ष होना सब पर प्रगट है, (यदि इन को अलग २ वर्णन किया जाये तो लेख बहुत लम्बा

ही जाये) और यह गुण ऊष्ण वस्तु के भीतर ही पाए जाते हैं। इस के विरुद्ध यदि वायु शीतल होती, तो भारी और गाढ़ी होती, परन्तु यह बात नहीं है, अलबत्ता वायु की गरमी उसकी आर्द्रता के कारण से अधिक उत्कृष्ट नहीं है॥

वायु के गरम होने का दूसरा प्रमाण।

वायु के गरम होने का दूसरा प्रमाण यह है, कि जिस समय पानी अधिक गरम होता है तो वाष्प होजाता है, (या यों कहिए कि वाष्प बन कर वायु में सम्मिलित हो जाता है) यद्यपि जल और वायु दोनों आर्द्रता में सम्मिलित है, अर्थात् पानी भी तर है, और वायु भी जिस से साफ़ प्रगट है। कि दोनों के मध्य केवल ऊष्णता की दुर्भिसन्धि था, अर्थात् पानी शीतल था और वायु गरम। अतः जब अग्नि द्वारा पानी को गरम किया गया, तो अग्नि की ऊष्णता के कारण से पानी की शीतलता दूर हो गई और उस का रूप वायु के रूप में परिवर्तित हो गया॥

वायु के गरम होने में प्रतिवाद।

यदि कोई मनुष्य यह प्रतिवाद करे, कि यदि वायु गरम है तो हमारे शरीर को शीतलता क्यों अनुभव होती है?

इसका उत्तर—वायु में पानी और मिट्टी के परमाणु सम्मिलित होते हैं। इन के कारण से वह शीतल मालूम होती है। स्वयम वह गरम है।

दूसरा उत्तर यह है कि वायु यद्यपि गरम है, तथापि हमारे शरीर की गरमी की अपेक्षा शीतल है, जैसा कि शीतोष्ण पानी प्रचण्ड गरमी की अपेक्षा शीतल होता है। अतएव जब वायु चलती है, तो वह अधिक शीतल होती है क्योंकि इसके परमाणु शीघ्र २ परिवर्तित होते रहते हैं, अतः जो वायु के साथ लगने से ऊष्ण हो जाता है। जब इस वायु के साथ और वायु मिली और तप्त परमाणु अलग हो गए, तो उनकी जगह दूसरे परमाणुओं ने ली; जो उन विगल हुए परमाणुओं की अपेक्षा शीतल है। संक्षिप्त यह कि इस क्रम से हम वायु से शीतलता प्राप्त करते रहते हैं।

वायु के तर होने का प्रमाण ।

वायु के तर होने का प्रमाण यह है। विविध आकारों को सहज में ग्रहण कर लेती है। यदि चाहें तो इसको पखाल में भर लें, और चाहें तो घड़े में, सार यह कि जिस प्रकार के पात्र में चाहें डाल सकते हैं और यह उसी आकार की बन जावेगी। और यह बनना तरावत के कारण से है।

वायु के दर्जे—वायु के स्थान भेद से ४ दर्जे हैं। प्रथम दर्जा वह है; जहां कि वायु अग्नि की तह को छूती है। (क्योंकि आकाश में प्रथम स्थान अग्नि का है उसके पश्चात् वायु का) इस दर्जे में वायु का स्वभाव ऊष्ण स्निग्ध होता है। और वास्तव में इसी स्थान पर वायु स्थूल है। यह दर्जा उस जगह है जहां तक कि धूआं चढ़ सकता है।

वायु का दूसरा दर्जा—धूम्रयुक्त है। इस दर्जे की वायु का गुण ऊष्ण रूक्ष हैं क्योंकि इसमें धूम्र सम्मिलित होता है।

वायु का तीसरा दर्जा—वाष्पीय है। वाष्प इसी दर्जे तक चढ़ सकती है। इस दर्जे में सरदी बहुत प्रचण्ड होती है। इस दर्जे में पहुंच कर वाष्प बादल बन जाती है। वरन् शीत की अधिकता से ओले बन जाते हैं क्योंकि इस जगह वाष्प जम जाती है यद्यपि वाष्प चढ़ने के कारण गरमी होती है। परन्तु जब तक वाष्प इस दर्जे तक पहुंचती है उसकी ऊष्णता घट जाती है। वाष्प अपने असली स्थान पर लौट कर वायु को शीतल करती है। इसके अतिरिक्त सूर्य्य की किरणें * इस स्थान तक नहीं पहुंचतीं; और वाष्प क्रमशः पहुंचती रहती है। इस लिए शीतलता इस दर्जे में आवश्यक होती है।

---

* यह बात सब को भला भांति समझ लेनी चाहिए कि सूर्य्य रश्मियां क्या हैं। वायुयानों में चढ़ने वालों से पूछो कि जब वह आकाश में बहुत ऊंचे चढ़ जाते हैं, तो इतनी सरदी लगती है कि मानों बरफ़ानी देश में आ गए हैं। साधारण जन कहते हैं, कि वह सूर्य्य के निकट हो गए, उनको अधिक गरमी लगनी चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं है। सूर्य्य की किरणें आती हुई कोई

इसी दर्जा से शीतल वाष्प उतर कर और नीचे की वायु में मिल कर उसको शीतल करती है। इसी लिए जब आकाश मेघाऽछन्न हो गरमी होती है क्योंकि उस समय ओस कण (शीतल वाष्प) बादलों के मध्यस्थ होने के कारण नीचे नहीं उतर सकती, और भूमि की वाष्प ऊपर नहीं जा सकती।

वायु का चौथा दर्जा–तबका ज़महरीर (शीत मण्डल) से आरम्भ होकर पानी और पृथिवी तल तक है। इस दर्जे में वायु की अवस्था, सूर्य्यताप, वाष्प, शीतोष्ण के कारण विविध प्रकार की होती रहती है जैसा कि दिन रात गरमी जाड़े में साधारणतयः देखा जाता है। इस दर्जा में वायु के अधिक गरम होने का हेतु सूर्य्य की किरणें हैं। और जितना हम पृथिवी से ऊपर जावें, गरमी कम अनुभव होती है, जैसा कि पहाड़ों के ऊपर शीत अनुभव होता है। इस का कारण ही यह है, कि पहाड़ों की ऊंचाई तक सूर्य्य रश्मिताप कम पहुंचती है॥

नोट–यह बात स्मरण रखने योग्य है, कि सूर्य्यरश्मिताप के लिए स्थूल वस्तु मध्यवर्ती न हो, जो रश्मिताप के प्रभाव को

गरमी नहीं पहुंचाती हैं। जिस समय वह आकर भूमि व पानी पर पड़ती हैं, तो इनकी ऊष्णता प्रगट होती है। और इस प्रकार हर समय इसमें व पानी में गरमी पहुंचती रहती है। परन्तु प्रकृति का एक प्रबन्ध यह भी है। कि उनसे गरमी निशदिन निकलती ही रहती है। यही निकलती हुई ऊष्णता हमको गरमी पहुंचाती है। रात्रि के समय गरमी निकलती रहती है। परन्तु प्रविष्ट नहीं होती इस वास्ते क्रमशः शीतल होती जाती है। गरमियों में ऊष्णता आने का समय अधिक होता है। और रात्रि छोटी होने से निकलने का सयय कम होता है। इस वास्ते गरमी बढ़ जाती है। शीत ऋतु में इसके विपरीत बड़ी रातों में गरमी निकलती रहती है। इस लिए शीत बढ़ जाता है। पहाड़ी पर शीत इसी वास्ते होता है कि सूर्य्य की तप्त किरणों का प्रभाव वहां तक कम हो जाता है। जो वाष्प भूमि से उठती है उस स्थान पर जाकर जहां सूर्य्य ऊष्मा कम हो जाती है। जहां शीत अधिक हुआ बादल हुए, इससे अधिक हुए वर्षा होती है। इससे अधिक हुई तो ओले या बरफ़ हो जाता है।

रोक सके। इस कार्य्य के लिए पंच तत्त्व में से सिवाय जल और पृथिवी के और कोई नहीं है। कारण कि यह दोनों अग्नि और वायु की तुलना में स्थूल हैं, और पानी से भी अधिकस्थूल भूमि है। इसी वास्ते जितनी भूमि तप्त हो जाती है, उतना पानी नहीं होता, और यद्यपि पानी व भूमि दोनों ही शीतल हैं, परन्तु रश्मि-ताप के कारण से इन की सरदी प्रगट नहीं होती, जिस का प्रभाव यह है, कि यदि पानी को भूमि से उठा कर वायु में लटकावें तो वह भूमि पर रहने की अपेक्षा अधिक शीतल हो जाता है क्योंकि उस जगह रश्मिताप कम होती है॥

वायु की आवश्यकता।

जीवन सामग्री में से सब से आवश्यक वस्तु वायु है, क्योंकि अन्न जलादि के बिना ममुष्य थोड़े दिन जीवित रह सकता है, किन्तु वायु के बिना एक मिनट भी जीवित नहीं रह सकता, क्योंकि मनुष्य शरीर तीन शक्तियों से युक्त है, और वह तीन शक्तियां यह हैं आत्मिक शक्ति, मानसिक शक्ति, शारीरिक शक्ति। इन्हीं शक्तियों से शरीर की वृद्धि और उन्नति है। इन्हीं के द्वारा मनुष्य चल फिर सकता, और भली बुरी बातों को सोच सकता है। सार यह कि मानव शरीर इन्हीं तीन शक्तियो पर निर्भर है। परन्तु यह शक्तियां अपना २ कार्य पूर्ण नहीं कर सकतीं, जब तक कि इन के साथ संजीवनी शक्ति न हो। और संजीवनी शक्ति का सम्बन्ध वायु से है, जिस को मनुष्य श्वास द्वारा प्राप्त करता है। और रोम कूपों द्वारा भी शरीर में वायु का प्रवेश होता है। अतः मनुष्य वायु के समुद्र में उसी प्रकार चलता फिरता है, जिस प्रकार मछलियां पानी के समुद्र में चलती फिरती हैं॥

वायु के गुण।

वायु जो कि हमारे शरीर को घेरे हुए है, वह हमारे शरीर और जठराग्नि की अपेक्षा अधिक शीतल है। जिस समय उस को श्वास के साथ भीतर खींचते हैं, तो वह इन दोनों के स्पर्श से

उष्ण हो जाती है, अतः यदि वह इन से पृथक न होवे और देर तक वहां रहे, तो संजीवनी शक्ति पतदाल से बाहिर होकर नष्ट हो जावे। परन्तु जब श्वास बाहिर की ओर निकाला जाता है, तो साथ ही ऊष्णता बाहिर निकल जाती है, और उस के बदले शीतल वायु भीतर प्रविष्ट होती है, और संजीवनी शक्ति सहायता पाती है, मन में आनन्द आता है। अतः संजीवनी शक्ति को वायु से अनन्त लाभ हैं क्योंकि जिस समय वायु संजीवनी शक्ति व जठराग्नि को स्पर्श करती है तो उष्ण हो जाती है, और उस का ताप भी जाता रहता है। यदि थोड़ी देर और ताज़ा वायु न पहुंचे तो मनुष्य मर जायें।

परन्तु यहां पर एक शंका उत्पन्न होती है कि बाज़े मनुष्य प्राणायाम के द्वारा घण्टों बिना श्वास के रह सकते हैं। इस दशा में ऊपर का बचन मिथ्या प्रमाणित होता है।

इस का उत्तर यह है, कि क्रमशः अभ्यास से यह शक्ति हो जाती है कि जो वायु भीतर प्रविष्ट को गई है वह देर तक खराब नहीं होती। योगियों के शरीर सर्वथा शुद्ध होते हैं। उन के हृदय को हर समय गति करने की आवश्यकता नहीं है। न हर समय उन के भीतर मवाद उबलते हैं। इस के अतिरिक्त जब श्वास भीतर प्रविष्ट किया जाता है तो उस के साथ एक ऐसी तरल वस्तु जाती है जिस को हम देख नहीं सकते हैं और शरीर की सहन शक्ति बहुत उन्नति कर सकती है और अभ्यास के बिना यह असम्भव है॥

उत्तम वायु की पहिचान॥

उत्तम वायु वह होती है, कि उस में कोई वाह्यिक वस्तु तथा दलदलों, खन्दक़ों, आदि की वाष्प और लहसनादि की सी दुर्गन्ध मिली न हो, सब प्रकार की भी गर्द धूलि और धूम्रादि से शुद्ध हो, किसी प्रकार की भी दुर्गन्ध न हो, घने बनों, छतों, ऊंची दीवारों, में वह बन्द न हों, किसी खराब विषैले वृक्ष (यथा अंजीर, एरण्ड, ओहरादि) पर से न आती हो, अर्थात् उत्तम की ओर से उस का मार्ग बन्द न हो। अर्थात् उत्तम और ऐसी कोई वस्तु न हो जो वायु

आने को रोके, ऊंचाई से होकर आती हो। ऐसी वायु सब प्रकार से उत्तम और शुद्ध होगी, जो कि स्वास्थ्य और आनन्द की हेतु होगी।

परन्तु जो वायु उपर्युक्त गुणों से ख़ाली होगी, वह रोगों की हेतु बनेगी। जो भूमि निचान में हो, और वहां सूर्य्य का प्रकाश उस समय पहुंचे जब सूर्य्य बहुत तप्त हो जाय, जिस से वह शीघ्र तप्त हो जाय, और जब नीचा हो तो शीघ्र शीतल हो जाय, ऐसे स्थान की वायु अच्छी न होगी, वरन् वह स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाली होगी। परन्तु एक बात स्मरण रखने की है कि जिस समय वायु में खराबी उत्पन्न हो जाय, मरी फैली हुई हो, जिस से विकृत वायु स्थान प्रति स्थान पहुंचती हो, ऐसी दशा में किसी घिरे हुए स्थान की वायु खुले हुए स्थान से उत्तम होती है॥

मोतदिल वायु की पहचान-मोतदिल वायु उन स्थानों की है, जो ग्रीष्म ऋतु में बहुत अधिक गरमी से स्वेद न लावें और शीत ऋतु में अधिक शीतल होकर शरीर को हानि न पहुंचायें। किन्तु जो सूर्य्य ताप से शीघ्र गरम हो जाय, और सूर्य्यास्त के समय शीतल हो जाय वह बहुत उत्तम होती है। और जो वायु इस के विरुद्ध हो वह स्थूल व निकृष्ट होती है॥

वायु सम्बन्धी परिवर्तन॥

वायु में परिवर्तन ३ प्रकार से होता है। (१) प्राकृतिक परिवर्तन, (२) अप्राकृतिक परिवर्तन साधारण, (३) अप्राकृतिक परिवर्तन विरुद्ध।

प्राकृतिक परिवर्तन—प्राकृतिक परिवर्तन वह कहलाता है जो ऋतु अनुसार नियत समय पर हो।

अप्राकृतिक परिवर्तन साधारण—वायु का यह परिवर्तन यद्यपि प्राकृतिक परिवेतन के विरुद्ध नहीं है, परन्तु ऋतु अनुसार नियत समय पर नहीं होता, अतएव इसे अप्राकृतिक कहा गया (अन्यथा वास्तविक अप्राकृतिक परिवर्तन नहीं है)। इस परिवर्तन के दो रूप हैं, और बाज़ों ने ३ माने हैं॥

प्रथम रूप वह है, जिसमें वायु के भीतर अंतरिक्षीय परिवर्तन होता है, यथा सूर्य्य के संग अन्य ग्रहों के मिल जाने से शीत ऋतु में गरमी हो जाय, और ग्रीष्म ऋतु में सरदी होजाय।

द्वितीय रूप अप्राकृतिक का यह है, कि वायु के भीतर पार्थिव परिवर्तन होजाय जैसा कि स्थान भेद से पहाड़ों, नदियों, समुद्रों के समीप हुआ करता है।

नोट—अप्राकृतिक परिवर्तन साधारण का तीसरा रूप अंतरिक्ष और भूमि के सम्मिलित कारण से होता है, यथा एक देश से दूसरे देश का क्रमशः परिवर्तन।

अप्राकृतिक परिवर्तन—आप्राकृतिक परिवर्तन वह है, जिसमें वायु अपने प्राकृतिक स्वभाव को त्याग देती है, और दूषित होजाती है जैसा कि संक्रामक (वबाई) रोगों के दिनों में या जैसा कि गरमी के दिनों शीत और शीत के दिनों में गरम होकर वह हानि की हेतु होती है।

आर्त्तिव परिवर्तन।

इस विषय पर हम अपनी पुस्तक 'ऋतु चर्य्या" नामी में सविस्तर लिख चुके हैं, इस पुस्तक में हम ने बताया है, कि भारतवर्ष में ५ ऋतु हैं :—

१—ग्रीष्मऋतु—वैशाख, जेष्ट, आषाढ़।

२—वर्षाऋतु—श्रावण, भाद्रपद।

३—शरदऋतु—आसौज, कार्तिक।

४—हेमन्तऋतु—अग्रहण, पौष माघ।

५—वसन्तऋतु—फाल्गुण, चैत्र।

इन ऋतुओं का सविस्तर वर्णन, वायु के प्रभाव, मानुषी शरीर पर इनका प्रभाव, प्रत्येक ऋतु का पथ्यापथ्य, इन बातों का सविस्तर वर्णन इस पुस्तक में है। यहां हम केवल वायु के परिवर्तन का वृत्तान्त थोड़े शब्दों में लिखते हैं।

अब यह समझ लेना चाहिए कि किस ऋतु में किस वस्तु की प्रधानता होती है। यहां हम सुश्रुत का अनुवाद करते हैं।

"यह शीत, ऋतु, ग्राम, वर्षादि से विभक्त होता है। चन्द्र और सूर्य्य समय के विभक्त करने वाले होने से एक वर्ष में दो आयन होते हैं। एक को दक्षिणायन और दूसरे को उत्तरायण कहते हैं। इन में से वर्षा, शरद, शिशिर हेमंत, दक्षिणायन होते हैं, और दक्षिणायन के तीनों ऋतुओं में चन्द्र की प्रधानता होती है। अर्थात् इन रसों की वस्तुयें अधिक होती हैं, खट्टे, शरद में लावणिक, और हेमंत में माधुर्य्य रस की प्रबलता होती है और एक दूसरे के सहारे से सब जीवधारियों की शक्तियां दक्षिणायन में बढ़ती हैं।

' शिशिर बसंत और ग्रीष्म उत्तरायण की तीन ऋतु हैं। इनमें सूर्य्य की प्रधानता होती है। कड़वा कषैला, और चरपरा, यह रस उत्पन्न होते हैं। (शिशिर में कड़वा, बसन्त में कषैला, और ग्रीष्म में चरपरा प्रबल होते हैं) उत्तरायण में जीवधारियों की शक्ति कम होती है।

"चन्द्र पृथिवी को तर करता है" सूर्य्य शुष्क करता है। अस्तु यह द्वयायनें मिल कर एक वर्ष होता है। पांच वर्ष का एक युग होता है।

"इन ऋतुओं में से वर्षा ऋतु में औषधियां नवीन और थोड़े प्रभाव वाली होती हैं। पानी विकृत और भूमि मलीन हो जाती है। आकाश बादलों से घिरा होता है। इसी विकृत जल और मल युक्त भूमि के पदार्थ सेवन करने से कफग्रस्त रोगियों को शीत वायु से कष्ट होता है। अजीर्ण रोग वालों की दाह बढ़ जाती है और दाह के कारण गरमी बढ़ जाती है। शरद् ऋतु में जब कि बादल नहीं रहते और वायु शुष्क हो जाती है धूप पड़ती है। और वर्षा की सरस भूमियों पर सूर्य्य की किरणें पड़ कर उस को सुखाती हैं, तब वह सञ्चित हुई गरमी ऊष्ण रोगों को उत्पन्न करती है।

"सम्पूर्ण औषधियां जो वर्षा ऋतु से उत्पन्न हुई थीं वह शरद् ऋतु में रस पूर्ण होती हैं। और बहुत हेमंत ऋतु में जाकर परिपक्क होती हैं। शिशिर हेमंत ऋतु में जल स्वच्छ चिकना, और भारी होता है। सूर्य्य की किरणें निस्तेज होती हैं। वायु बहुत शीतल होती है। बात से शिथिल हुए मनुष्यों को चिकनाई, शर्दी और भारी पन होता है। इस त्रिदोष के कारण इस ऋतु में कफ क'

वेग होता है। औषधियों में भी वही कफ़ जनक प्रभाव हो जाता है।

"वही सञ्चित कफ़ बसंत ऋतु में सूर्य्य की किरणों के वेग से फैलता हुआ दुर्बल मनुष्यों में कफ़ज रोग उत्पन्न करता है। वही औषधियां फिर ग्रीष्म ऋतु में निस्तेज और शुष्क हो जाती हैं। पानी बहुत हल्का होता है। सूर्य्य की किरणें निस्तेज होती हैं। रुक्ष शरीर वाले मनुष्यों के रूखापन अधिक होता है। इस लिए बात सञ्चित होती है।

"फिर वर्षा ऋतु में जब पृथिवी पानी से गीली होती है तो वायु शीतल हो जाती है। और इसी कारण से बातज रोगों को उत्पन्न करती है। जो बिकार वर्षा, हेमंत और ग्रीष्म में सञ्चित होते हैं, और शरद, बसन्त और वर्षा में शान्ति का उपाय करना चाहिये"।

पाठक! उपर्युक्त अनुवाद से आपने समझ लिया होगा, कि वात ग्रीष्म ऋतु में सञ्चित होती है और वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में वातज रोग उत्पन्न होते हैं।

पित्त—वर्षा ऋतु में सञ्चित होता है और शरद् ऋतु के आरम्भ में पैत्तिक रोग उत्पन्न होते हैं।

कफ—शिशिर हेमंत ऋतु में सञ्चित होता है और बसन्त ऋतु में कफ़ज रोग उत्पन्न होते हैं।

यह रोग निर्बल मनुष्यों को अधिक सताते हैं। इनको सामबिक रोग कहते हैं। अतः आप देखते हैं, कि बसन्त ऋतु में कफ़ रोग से अधिक पीड़ित लोग देखे जाते हैं। गरमियों के पश्चात् और वर्षा के आरम्भ में वातज रोग और शरद् ऋतु में अधिकतर गरमी के रोग देखने में आते हैं। यह भी स्मरण रहे कि:—

पित्त के विकार से उत्पन्न हुए २ रोग हेमन्त में अपने आप शान्त हो जाते हैं।

कफ़ दोष से उत्पन्न हुए रोग ग्रीष्म ऋतु में अपने आप शान्त हो जाते हैं।

बात दोष से उत्पन्न हुए रोग शरद् ऋतु में अपने आप शान्त हो जाते हैं। आगे धन्वन्तरी जी ऋतुओं के विषय में इस प्रकार वर्णन करते हैं।

"दिन के पहिले चरण में बसन्त ऋतु का सा समय होता है। दोपहर को ग्रीष्म के तुल्य होता है। तीसरे पहर को प्रावृट् ऋतु और सायंकाल को वर्षा का सा समय होता है। और अर्द्धरात्रि को शरद् का सा, और पिछली रात हेमंत का सा समय होता हैं।"

उपर्युक्त लेख से हम निम्न लिखित प्रति फल निकाल सकते हैं:—

वात—दोपहर को संग्रह होता है और तृतीय पहर को दूषित होता है।

पित्त—सायंकाल को संग्रह होता है और अर्द्ध रात्रि को दूषित होता है।

कफ़—प्रातःकाल संग्रह होता है और दिन के प्रथम भाग में दूषित होता है।

इसके आगे सुश्रुत ने जो लिखा है वह समझने के योग्य है।

"इनमें यथार्थ ऋतुओं में जो औषधियां और जल भी ठीक रहते हैं, और सेवन कारी जीवधारियों के लिए प्राण, आयु, बल, और ओज, वाले होते हैं, यदि दुर्भाग्य से इन ऋतुओं में अदल बदल हो जाय (जैसा कि हेमंत में शरदी न पड़ना, वा बहुत अधिक पड़ना, वर्षा में वृष्टि का न होना या अधिक होना) गरमियों में गरमी का न होना वा बहुत अधिक होना, आदि इसमें अन्न जल और औषधियां आदि बिगड़ जाती हैं। और यह बिगड़े अन्न जलादि व्यहार में आने से कई प्रकार के रोग उत्पन्न करते हैं, अथवा महामारी हो जाती है"।

इस परिवर्तन के विषय में एक यूनानी की पुस्तक में यूं भी लिखा है।

जैसी ऋतु होती है उसी के अनुसार वायु का प्रभाव होता है। इस वास्ते हम ऋतुओं का वर्णन पृथक २ करेंगे। जैसे प्रभाव ऋतुओं के लिखे जांयगे वही उस ऋतु की वायु के जानने चाहिएं। ऋतु चार हैं (१) रबीअ़ (बसन्त), (२) सैफ़ (ग्रीष्म), (३) खरीफ़ (वर्षा) (४) शिता (शरद)।

रबीअ—फ़स्ल रबीअ़ वह कहलाती है जिसमें सधारण मनुष्य को वस्त्र ओढ़ने की आवश्यकता हो, और न इतनी गरमी कि पंखा झलने की आवश्यकता हो। इसके अतिरिक्त इसी ऋतु में वृक्षों का पतझाड़ होकर नई कोंपलें निकलने लगती हैं। इसी ऋतु में पुष्पों की कलियां फूटती हैं, और अफल वृक्षों में गुच्छे निकलते हैं, फलदार वृक्षों में बौर आता है। इसको फ़स्ले बहार भी कहते हैं। यह फ़स्ल मोतदिल होती है। इसकी अवधि ५० दिन अर्थात् २ मास से भी कम है। शेखबूअली सीना साहिब ने तो इसकी अवधि केवल २६ दिन लिखी है। इसके पश्चात् सैफ़ (ग्रीष्म) आती है।

नोट—फ़स्ल रबीअ़ में मोतदिल देशों की क़ैद लगाई गई है कि उन शहरों में जो ऊंचाई पर बसे हों, और शीत की ओर मायल हों, फ़स्ल रबीअ़ में वस्त्र ओढ़ने की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार उन शहरों में जो बहुत निचान में और मध्य रेखा के पास हों चाहे वह मोतदिल देश में ही हों पंखे की आवश्यकता होती है।

इसी प्रकार साधारण मनुष्य की क़ैद लगाने का हेतु भी प्रगट है।

फ़स्ल रबीअ क्या प्रभाव करती है।

फ़स्ल रबीअ़ मोतदिल है। यह फ़स्ल सब फ़सलों से उत्तम है। रंग को लाल करती है। क्योंकि रक्त को त्वचा की ओर प्रेरित करती है। और इसकी गरमी इतनी नहीं पहुंचती कि उसको पिघला दे, जैसा कि ग्रीष्म में होता है। इस ऋतु में जीर्ण रोग ताज़े होते हैं, क्योंकि शीत ऋतु में जो दोष निर्बल और जमे होते हैं इस ऋतु में पिघलते हैं, इस ऋतु में प्रायः उन्माद होता है। और जिस मनुष्य ने शीत ऋतु में खान पान की अधिकता रक्खी हो, और व्यायाम न किया हो, तो इस ऋतु में उसके भीतर वही रोग प्रगट होंगे, जो उन दोषों से हुआ करते हैं।

जिस समय फ़स्ल रबीअ़ की अवधि लम्बी हो, और सम्पूर्ण फ़सल भली भांति बीत जाय तो पैत्तिक रोग कम होंगे, परन्तु

रक्तातिसार, नकसीर, उन्माद, फोड़े, फुन्सियां, कण्ठशोथादि उत्पन्न होते हैं और रक्त अधिक उत्पन्न होने के कारण नसें फटी होती हैं, और खांसी व वमन में रक्त निकलता है।

यदि किसी मनुष्य को किसी ऋतु में उपर्युक्त रोगों में से कोई रोग होता हो तो वह रोग इस ऋतु में अधिक होगा, विशेष कर उरःक्षत, और कफ प्रकृति वालों को सन्यास, अर्द्धांगवात, और सन्धिक वात का भय है। यह ऋतु बालकों को बहुत अनुकूल है।

उत्तेजनाएं, क्रोध, हर्षादि बहुत अधिक अच्छे नहीं। इस ऋतु के रोगों का इलाज प्रायः रक्त स्राव है।

फ़स्ल सैफ़ (ग्रीष्म)।

फ़स्ल सैफ़ की वायु का प्रभाव ऊष्ण, रूक्ष, है क्यों कि इसमें सूर्य्य बहुत प्रचण्ड होता है जिससे किरणों का विकिरण अधिक होकर गरमी बढ़ती है। और गरमी की अधिकता के कारण वायु से जलांश नष्ट हो जाता है। इस लिए वायु शुष्क रह जाती है। इसके अतिरिक्त इस ऋतु में न ओस पड़ती है न वर्षा होती है। अतः इसमें रूक्षता अधिक होती है।

ग्रीष्म ऋतु का प्रभाव—यह ऋतु दोषों को पिघलाता है। इस लिए शक्तियां क्षीण होती हैं. मुख रंग पीत होता है। पित्त बहुत होता है। इस वास्ते सूक्ष्म धातुयें पिघल जाती हैं. और जो ठोस हैं वह रह जाती हैं। इस ऋतु में रोग शीघ्र दूर होते हैं, क्योंकि यदि रोगी की शक्ति अधिक हो तो रोग के मवाद को शीघ्र पकावेगी, और यदि शक्तिहीन हो तो वायु की गरमी और पिघलने के कारण बहुत निर्बल हो जायगा, और मर जायगा। जितनी अधिक यह ऋतु ऊष्ण रूक्ष होगी उतनी ही रोग शीघ्र दूर होंगे, और यदि ऋतु गरम व आर्द्र हो जाय तो रोग देर तक रहेंगे। यही कारण है कि जो रोग इस ऋतु में उत्पन्न हों, और इसमें वर्षा खूब हो जाय तो उन रोगों में से बाज़े शोथ से बदल जायेंगे, और बाज़े संग्रहणी रक्तातिसार से बदल जायेंगे। इस ऋतु में पित्तज्वर, रक्तज्वर, सन्निपात ज्वर, कर्णशूल, नेत्रशूल, बहुत होंगे, अतिशक और इसी प्रकार की अन्य फुन्सियां और घाव बहुत होंगे। यदि ग्रीष्म ऋतु वसन्तवत हो

जाय तो ज्वर व गरमी बहुत अधिक नहीं होंगे और इन ज्वरों की निवृति प्रायः स्वेद द्वारा होगी. या नकसीर फूट कर ज्वर जाता रहेगा।

यदि ग्रीष्म ऋतु का प्रभाव शीत से बदल जाय तो जुकाम व प्रातिश्यायिक रोग प्रायः होंगे, यथा उरःक्षत, पंक्तिशूल, फुफफुस शोथ, नासास्राव आदि होंगे।

यदि ग्रीष्म ऋतु शीत रुक्ष हो जाय तो कफ प्रकृति और स्त्रियों को गुणकारी होगा। यदि पित्त प्रकृति वाले को रुक्षता के कारण नेत्रशूल हो, और पित्त ज्वर और वातज रोग होंगे, इसका कारण यह है कि पित्त दोष कम घुलेगा और शरीर के भीतर रहेगा।

फ़स्ल खरीफ़

फ़सल खरीफ़ का वह समय है जिसमें वृक्ष पत्रों का रंग बदलने लगता है। वह पक जाते हैं, और पतझाड़ आरम्भ होता है। इस ऋतु में गरमी क्रमशः घट जाती है और शीत पड़ना आरम्भ नहीं होता। इस वास्ते यह ऋतु मोतदिल होती है। परन्तु रुक्षता और आर्द्रता में मोतदिल नहीं होती, वरन् रुक्षता प्रबल होती है। बाज़ों ने खरीफ़ का प्रभाव शीत रुक्ष लिखा है। किन्तु सरदी गरमी में मोतदिल होता है। और रुक्षता अधिक होती है।

फ़स्ल खरीफ़ के प्रभाव—फ़स्ल खरीफ़ में रोगों की अधिकता होती है क्योंकि इसमें वायु परिवर्तित होता है। दोपहर के समय अच्छी गरमी होती है और रात्रि के समय शीत पड़ता है। इसके अतिरिक्त इस ऋतु में मेवे अधिक होते हैं, जिनके खाने से दोष दूषित होते हैं। इस लिए भी रोग अधिक होते हैं, कि ग्रीष्म ऋतु में शक्तियां क्षीण होती हैं। उसके पश्चात् खरीफ़ आ जाती है तो ग्रीष्म ऋतु के सूक्ष्म दोषों के पचने के कारण जो ठोस दोष रह गये हैं। इस ऋतु में जब प्रकृति उसके पकाने का प्रयत्न करती है तो खरीफ़ की सरदी उसके काम में विघ्न डालती है जिससे प्रकृति का कार्य्य पूर्ण नहीं होता।

वर्षा ऋतु में रक्त कम उत्पन्न होता है और पित्त व वात का कोप होता है। उन्माद की अधिकता होती है। इस ऋतु में दद्रु,

घोर फोड़े, संधिक शूल, पृष्ठ शूल, दन्तशूल सन्निपात ज्वर मूत्र रुक २ कर आना, (इसका कारण यह है कि इस ऋतु में कभी गरमी और कभी सरदी होती है), संग्रहणी, पिण्डुली शोथ, परिणाम शूल, सन्यास, कण्ठ शोथ, इत्यादि २ रोग उत्पन्न होते हैं। यह ऋतु उरःक्षत व क्षयग्रस्तों के वास्ते हानिकारक है।

शीत ऋतु

शरद् ऋतु वह है जिसमें आहार शीघ्र पचता है और बाह्यक शीत के कारण शारीरिक ऊष्मा अन्तर्मुखी होती है। इस ऋतु में दोष सञ्चय अधिक होता है। इस ऋतु का प्रभाव शीत स्निग्ध होता है।

शरद् ऋतु क्या प्रभाव करती है।

इस ऋतु में प्रायः कफ़ज रोग होते हैं, और जुकाम नज़ला भी प्रायः उत्पन्न होता है। और इस नज़ला से कण्ठ शोथ, उरःक्षत, निमोनिया, पंक्तिशूल, उत्पन्न होता है। पार्श्वशूल, और कटिशूल भी प्रायः होता है। शिरःशूल, अपस्मार, और सन्यास भी होता है। यह ऋतु बूढ़ों के वास्ते बहुत हानिकारक है। और युवाओं के अनुकूल है।

नोट—यह भी स्मरण रखना चाहिये कि यूनानी चिकित्साचार्यों ने सम्पूर्ण वर्ष की ४ ऋतु कही हैं, और प्रत्येक ऋतु का नाम फ़स्ल है। वर्ष की फ़स्लों की विभक्ति वास्तविक वायु के प्रभेद के कारण से है। इस वास्ते ऋतुओं का प्रभेद और उनका विशेष २ रोगों को उत्पन्न करना। यह सब वायु के प्रभेद और उसके प्रभाव के कारण से हैं।

नोट—फ़स्ल रबीअ ख़राब की अवधि कम से कम २८ और अधिक से अधिक ५० दिन की है। और लगभल यही अवधि फ़स्ल ख़रीफ़ (वर्षा) की है जिस से प्रगट है कि फ़स्ल सैफ़ (ग्रीष्म) और फ़स्ल शिता (शरद्) की अवधि लम्बी होती है।

वायु परिवर्तन के प्रभाव।

यदि शीत ऋतु में दक्षिणी वायु चलती हो, और उस के पश्चात् ग्रीष्म ऋतु में उत्तरीय वायु चले तो प्रायः गर्भपात होंगे। यदि

बालक उत्पन्न भी हो गया तो शीघ्र मर जायगा। यदि जीवित रहा, तो आयु पर्यन्त रोगग्रस्त रहेगा। बहुधा मनुष्यों को नज़ला, नेत्रशूल, और रक्तातिसार के रोग होंगे। विशेष कर बूढ़ों में प्रतिश्याय की अधिकता होगी। और पट्ठों पर अधिक प्रभाव होगा। गर्भपात इस लिए होंगे, कि स्त्रियों के शरीर में कफ की अधिकता होती है और शीत ऋतु भी उनके भीतर कफ को बढ़ाता है। अतः जिस समय ग्रीष्म ऋतु में उत्तरीय वायु चले तो उसकी सरदी गर्भिणी स्त्रियों के शरीर में इकबारगी प्रविष्ट होगी, क्योंकि रोम कूप खुले हुए हैं। अतः जो बालक गर्भ में होगा हठात् शीत पाएगा, जिससे वह या तो उदर में ही मर जायगा, या कफाधिक्य से गर्भपात होगा। यदि बालक जीवित उत्पन्न हुआ तो गरम उदर से शीतल वायु में आवेगा, अतः उसके मर जाने का बड़ा भय है। यदि न मरा तो रोग ग्रस्त अवश्य रहेगा, क्योंकि पहिले से मस्तक में तरलता भरी हुई है और शीत ऋतु के कारण वह कच्ची रहेगी। यदि यह नेत्र में उतर आई तो नेत्रशूल होगा, अन्त्रियों पर उतरी तो उनमें खराबी उत्पन्न होकर रक्तातिसार आरम्भ होंगे। छाती पर उतरी तो नज़ला उत्पन्न होगा। यदि मस्तिष्क में जमा रही तो सन्यास का भय होगा। यदि अर्द्ध कपाल में रही तो अर्द्धांगवात उत्पन्न होगा। और यदि इसके पश्चात् वर्षा ऋतु में दक्षिणी वायु चले, तो इसमें बालक बहुत हत होंगे।

यदि शीत ऋतु में वर्षा न हुई हो, और चैत्र वैशाख में बहुत वर्षा हो, तो ग्रीष्म में गरम तपें, नेत्रशूल, रक्तातिसार बहुत होंगे, विशेषतया स्त्रियों, बच्चों, और उन मनुष्यों को जिनकी प्रकृति कफज हो॥

यदि हेमन्त और वसन्त दोनों गरम और शुष्क हों तो यह बहुत बुरा है। तृण और वृक्ष सूख जायंगे, और उन पशुओं का मांस जोकि इस तृण को खायेंगे (आमिषाहारी) मनुष्यों को हानि पहुंचा ने वाला होगा। जब ग्रीष्म ऋतु गरम रूक्ष हो: और वर्षा कम हो तो शरद ऋतु में मनुष्यों को शिरःशूल, प्रतिश्याय, जुकाम, और रक्तवमन के रोग होंगे, जिसका कारण यह है, कि आसौज कार्तिक में मस्तिष्क

तरलताओं से भरा होगा। इसके पश्चात् जब शीत का कोप होगा, तो मस्तिष्कीय तरलतायें शिरःशूल उत्पन्न करेंगी। यदि नाक की ओर बहे तो जुकाम, और यदि कुछ भाग छाती और फुफ्फुस की ओर गिरा तो प्रतिश्याय और कास उत्पन्न होगा, संकीर्ण छाती वाले मनुष्यों के भीतर रक्तवमन रोग की हेतु होगी। और जब वर्षा ऋतु शीत रुक्ष हो, तो यह स्त्रियों, बच्चों, और सम्पूर्ण कफज प्रकृति वालों को गुणकारी होगी, परन्तु वातज प्रकृति वालों में नेत्रशूल और वातज्वर उत्पन्न होंगे। और इस कारण से जो कुछ पैत्तिक मवाद से अधिक सूक्ष्म होगा, वह ग्रीष्म की गरमी से पच जायेगा और गाढ़ा पदार्थ रह जायगा। यदि वह गाढ़ा दोष मस्तिष्क की ओर चढ़ेगा, तो वातज उन्माद उत्पन्न करेगा, और जो यह मवाद दुर्गन्धित होगा तो ज्वर उत्पन्न होंगे। और यदि ग्रीष्म ऋतु शीत रुक्ष हो तो इन दिनों में कफज प्रकृति वालों की दशा उत्तम होगी, परन्तु बाज़ मनुष्यों को शुष्क नेत्रशूल, और उन्माद रोग प्रायः होगा।

सब प्रकार की वायु के प्रभाव।

हवाय मोतादिल-(अर्थात् वायु जो सरदी, गरमी, रुक्षता, आर्द्रता के विचार से मोतदिल हो) मानुषी शरीर को गुणकारी है, परन्तु रोगी के वास्ते वह वायु गुणकारी होती है, जो उस के रोग के विरुद्ध हो, क्योंकि वह वायु के लिए औषधि के समान है॥

यदि वायु ग्रीष्म ऋतु की भांति सदा गरम रहे तो विशेषकर गरम देशों में शरीर को दुबला करती है और मुख के वर्ण को पीत करती है, दोषों को शरीर के भीतर जलाती है, व्रणों में खाज उत्पन्न करती है, शिरःशूल उत्पन्न करती है इन्द्रियों को गुट्ठल करती है और रोमकूपों को खोलती है। इस कारण घुलाव बहुत होता है स्वेद बहुत आता है, सब शक्तियां निर्बल हो जाती हैं, नकसीर बहुत फूटती है ऋतुस्राव बहुत होता है, रक्तातिसार बहुत होते हैं प्यास बहुत लगती है अरुचि होती है। गरम हवा हृदय को गरम रखती है और जब हृदय उष्ण होता है तो उस की उष्णता सारे शरीर में फैलती है और सारा शरीर गरम हो जाता है, जिस से दोष और आर्द्रतायें नष्ट हो जाती हैं जिस से ज्वर उत्पन्न

हो जाता है। सार यह है कि ऊष्ण वायु किसी प्रकार स्वस्थ मनुष्य के लिए अच्छी नहीं है। हां उन लोगों के लिये ऊष्ण वायु लाभदायक है जिन के शरीर में शीत रोग हों जो आर्द्र माद्दों से हुये हों यथा अर्धांगवात इत्यादि। इसी प्रकार उन लोगों के लिये उष्ण वायु गुणकारी है जिस के शरीर को गरम करने और रोम कूपों को खोलने की आवश्यकता हो। स्मरण रखना चाहिये कि प्रथम जो उष्ण वायु शरीर को लगती है वह रक्त को बाह्य शरीर की ओर आकर्षित होती है जिस के कारण चर्म का वर्ण लाल हो जाता है परन्तु यदि सदा ऊष्ण वायु पहुंचती रहे तो उस से रक्त घुलने लगता है। इस लिये चर्म का वर्ण पीला हो जाता है।

हवाये सर्द—अर्थात शीतल वायु उष्ण वायु की अपेक्षा स्वस्थ मनुष्यों के लिये प्रायः अधिक अनुकूल होती है क्यों कि शीतल वायु शरीर को दृढ़ करती और रोम कूपों को बन्द करती है। इस लिये ऊष्मा शरीर के भीतर रहती है और भोजन अच्छी भांति पचता है और भूक अधिक लगती है। शीतल वायु से इन्द्रियां स्वच्छ होती हैं रोगियों का रोग से छुटकारा होता है और दोष गाढ़े और प्रशांत होते हैं और एक अंग से दूसरे अंग की ओर नहीं जाते। इसी कारण व्रण और शोथ नहीं होते और आर्द्रताओं के बाहर स्वेद द्वारा न निकलने से वह भीतर रहती हैं और मूत्र अधिक होता है। मूत्र अधिक होने के कारण कोष्ठ बद्धता रहती है। इस के अतिरिक्त शीतता के कारण गुदा भी सुकड़ी रहती है क्योंकि तरी जिस के द्वारा मल सुगमता से निकलता है वह मूत्र के साथ जाती है।

शीतल वायु में अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखने के लिये आवश्यक है कि नज़ला और जुकाम (प्रतश्याय) से बचने का ध्यान रक्खें क्योंकि यह शीतल वायु से उत्पन्न होते हैं और इन से खांसी, कंठ तथा छाती में शोथ, दर्द और निमोनिया उत्पन्न होते हैं। अगर नज़ला अन्त्रियों पर गिरे तो अतिसार होगा और रोम कूप के बन्द हो जाने के कारण जठराग्नि शरीर के भीतर घुट जायेगी। और यदि आर्द्रतायें शरीर के भीतर अधिक हो तो

उनका प्रभाव भीतर तक पहुंचता है जिस से जठाग्नि मन्द हो जाती है और अन्त्रियों और पट्ठों को हानि पहुंचती है। और मूत्राशय पट्ठों से बना है इस लिये मूत्र में कठिनाई, बूंद बूंद निकलना और गर्भाशय की पीड़ा आरम्भ हो जाती है।

हवाये तर—शरीर के भीतर तरी को स्थिर रखती है इसलिये दुबले और पित्त प्रकृति के लोगों को लाभदायक है। यह चर्म को नरम, चमकीला और स्वच्छ करती है।

हवाये ग़लीज़—रूह को गाढ़ा, इन्द्रियों को गुठ्ठल करती और मनुष्य को थका देती है।

हवाये तीरा—मनुष्य को तंगदिल करती है जिस से सांस का आगमन इस में और हवाये गलीज़ में कठिन हो जाता है।

हवाये गर्म तर—सब प्रकार की हवाओं से अधिक हानि पहुंचाती है क्योंकि इस के भीतर शीघ्र सड़ांध उत्पन्न हो जाती है परन्तु जो ज्वर इस में पैदा होता है वह उस ज्वर से हलका होता है जो ऊष्ण शुष्क वायु में उत्पन्न होता है क्योंकि ऊष्ण आर्द्र वायु में ज्वर नरम होता है और स्वेद बहुत होता है और ऊष्ण शुष्क वायु में ज्वर तीव्र और जलन पैदा करने वाला होता है। परन्तु ऊष्ण आर्द्र वायु में ज्वर बहुत देर रहता है और ऊष्ण शुष्क में थोड़ी देर। ऊष्ण आर्द्र वायु में आंख में पीड़ा और शरीर पर फोड़े फुन्सियां बहुत होती हैं और जो मनुष्य इस वायु में श्रम और गति कम करता है उस के शरीर में दोष इकट्ठे हो जाते हैं।

आकाश और पृथिवी द्वारा वायु में परिवर्तन।

यह परिवर्तन ८ प्रकार का होता है, जिस में से दो प्रकार का आकाशीय, ५ प्रकार का भूमीय, और एक भूमि व आकाश दोनों से युक्त होता है।

वायु परिवर्तन के आकाशीय हेतु।

(१) सूर्य्य देव के केन्द्ररेखा से दूर व समीप होने के कारण वायु ऊष्ण या शीतल चलने लगे।

(२) शीत ऋतु में बाज़ तारों की किरणें रवि किरणों से मिल जाती हैं, इस से अग्नि बल अधिक होकर वायु और भूमि दोनों

का तप्त कर देता है, और शीत ऋतु में शीतल वायु के स्थान में गरम वायु चलने लगती है, या ग्रीष्म ऋतु में सूर्यदेव की मन्दता के कारण गरम वायु चलने के बदले शीतल वायु चलने लगती है।

भूमीय कारणों से वायु परिवर्तन।

(१) भूमि की ऊंचाई निचाई के अनुसार वायु में परिवर्तन होता है, अतः जो शहर निचान में हो वह बहुत गरम होता है, और जो ऊंचाई पर हो उसकी वायु शीतल होगी। इसका कारण यह है, कि जो शहर निचान में हो, वहां पर वायु स्थूल होने के कारण सूर्य्य की किरणें बहुत अधिक जमा होती हैं, जिस से वह भूमि गरम होकर वहां की वायु भी गरम हो जाती है, और जो शहर ऊंचाई पर हो, वहां की वायु सूक्ष्म होने से सूर्य्य की किरणें ठहरने नहीं पातीं, इस लिए सरदी होती है।

(२) पहाड़ों के कारण वायु में परिवर्तन।

पहाड़ के कारण से जो वायु में परिवर्तन होता है, वह दो प्रकार का होता है, प्रथम यह कि शहर पहाड़ से मिला हुआ उसके किनारे पर बसा है, या पहाड़ के ऊपर है, तो वहां की वायु की दशा ऊंचाई निचाई के अनुसार होती है। दूसरे यह कि शहर पहाड़ के समीप है, तो उसकी कई अवस्थायें हैं, यथाः—

(१) यदि किसी शहर की उत्तर ओर पहाड़ हो, तो सूर्य्य पर्वत को तपाता है, और पर्वत की छाया नगर पर पड़ती है, अतः अवश्यमेव वहां की वायु गरम होगी।

(२) यदि नगर के पश्चिम ओर पहाड़ हो, तो सूर्य्य पूर्व से निकल कर पहाड़ पर चमकेगा इससे वहां की वायु खूब गरम हो जायगी।

(३) यदि पहाड़ शहर के पूर्व ओर हो, तो उस शहर में गरमी कम होगी, क्योंकि सूर्य्य तेज उस पहाड़ से सरकने के बाद होगा, और प्रति क्षण दूर होता जायेगा।

(४) शहर के दक्षिण ओर पहाड़ हो तो वहां की वायु बहुत शीतल होगी, क्योंकि उस नगर पर उत्तरीय वायु जो कि शीतल

होती है चलती है, और दक्षिणी वायु का गुज़र कम होता है, क्योंकि उसके आगे पहाड़ होता है, और सूर्य्य की तेज़ी भी उस पर कम होती है।

(५) यदि कोई शहर ऐसा हो, कि पहाड़ों के मध्य बसा हो, और वायु का मार्ग खुला हो तो उस जगह वायु बहुत और ज़ोर के साथ जावेगी, क्योंकि वायु जब अपना मार्ग संकीर्ण पाएगी, तो उस जगह बहुत जमा होकर जायगी। उस शहर की वायु शीतल होगी।

जो शहर पहाड़ के पास हों उन में मोतदिल वह स्थान होता है, जिसके पूर्व और पश्चिम की ओर कोई रुकावट न हो, और पश्चिम दक्षिण की ओर बन्द हो॥

(३) नदियों के कारण वायु में परिवर्तन।

नदियों के कारण वायु में जो परिवर्तन होता है, उस के भी कई भेद हैं :—

(१) शहर के उत्तर ओर नदी बहती हो, तो वहां की वायु बहुत शीतल होगी क्योंकि प्रथम तो उत्तरी वायु स्वयम् शीतल है, जब नदी पर से गुज़रेगी तो और भी शीतल हो जायगी॥

(२) यदि नदी शहर के दक्षिण ओर हो तो यद्यपि वायु गरम कम होगी, परन्तु नदी के बुखारात मिलने के कारण स्थूल होगी॥

(३) यदि शहर के पूर्व ओर हो, तो वायु में आर्द्रता अधिक होगी, क्योंकि नदी पर सूर्य की गरमी पड़ने से वाष्प उठ कर वायु में मिल जायगी, जो उसको आर्द्र बना देगी॥

(४) यदि नदी शहर के पश्चिम ओर हो, तो वायु में आर्द्रता कम होगी, क्योंकि बुखारात शहर में कम पहुंचेंगे, तथापि नदी के समीप होने से शहर की वायु कुछ न कुछ आर्द्र ही होती है।

(४) दिशाओं के अनुसार वायु का परिर्वतन

दिशाओं के अनुसार वायु ४ प्रकार की है।

(१) सबा (पूर्वा) अर्थात् वह वायु जो पूर्व की ओर से चलती है।

(२) दबूर (पश्चिमी) अर्थात् वह वायु जो पश्चिम की ओर से चलती है।

(३) जनूबी (दक्षिणीय) जो दक्षिण की ओर से चलती है।

(४) शुमाली (उत्तरीय) जो उत्तर की ओर से चलती है।

अब प्रत्येक का पृथक् २ बर्णन किया जाता है।

प्राच्यवायु ।

इसको पुरवा हवा भी कहते हैं। यह सरदी के विचार से मोतदिल होती है, और पाश्चात्य वायु से अधिक शुष्क होती है, और प्राच्य वायु पाश्चात्य वायु की अपेक्षा दिनान्त में अधिक चलती है। इस कारण से पश्चिमी वायु सूर्य से कम गरम होती है, और प्राच्य वायु से आर्द्र अधिक होती है, यद्यपि यह दोनों उत्तरी और दक्षणी पवनों की अपेक्षा अधिक मोतदिल है। यदि प्राच्य वायु निशान्त और दिनारम्भ में चले तो बहुत मोतदिल होगी क्योंकि सूर्य्य ताप का प्रभाव उस पर नहीं होता है, और इतनी शुष्क नहीं होती है, जितनी शुष्क वह वायु होती है, जो दिनान्त और निशारम्भ में चले। यदि यह वायु दिनारम्भ और निशान्त में चले तो स्थूल और दूषित होती है, और यदि दिनान्त और निशारम्भ में चले तो उसके विपरीत गुण होते हैं॥

आयुर्वेदिक-ग्रन्थों में पुरवा हवा को शीतल लिखा है; और उसके गुण दोष के विषय में लिखा है :—

"इसके भीतर मिठास अधिक होती है, वातवर्द्धक है, बल को अधिक करती है। यह वायु उन लोगों के विरुद्ध है, जिनकी प्रकृति बातज है, और ब्रणों व घावों के विरुद्ध है।

प्राच्य वायु कफ प्रकृति वालों को भी हानिकारक है, सन्धिक वात वालों को विशेष दुखदाई है। इस का प्रभाव मेवों, फलों, भाजियों पर बुरा पड़ता है। अतः जब यह चलती है, तो खरबूज़ा, तरबूज़ आदि फल फीके पड़ जाते हैं, और बहुधा भाजियों में कीड़े पड़ जाते हैं, पानी का स्वाद बदल जाता है, शारीरिक स्फूर्ति जाती रहती है।

पाश्चात्य वायु।

पाश्चात्य वायु जब निशान्त और दिनारम्भ में आवे, तो थोड़ी घन होगी, परन्तु जब दिनान्तर और निशारम्भ में आवे सूक्ष्म होगी। क्योंकि इस में सूर्य्य का प्रभाव होगा, इस के गुण वही हैं जो कि मोतदिल वायु के वर्णन हुए।

आयुर्वैदिक-मतानुसार पाश्चात्य वायु बहुत सूक्ष्म होती है, रक्तपित्त को बढ़ाती है, फोड़े फुन्सियों को गुणकारी है, इस वायु में यह शीघ्र अच्छे होते हैं।

इस का प्रभाव प्राच्य वायु के विरुद्ध मेवों और फलों पर बहुत उत्तम पड़ता है। इस से फल मीठे होते हैं, शरीर स्फूर्त होता है, कफ वातज रोगों को गुणकारी है।

दक्षिणी वायु।

दक्षिणी वायु प्रायः शहरों में ऊष्ण व आर्द्र होती है। ऊष्ण सूर्य्य की समीपता के कारण से है, और आर्द्र बड़े २ समुद्रों और नदियों की वाष्प के कारण से है।

वैद्यक ग्रन्थों में लिखा है कि दक्षिणी वायु जिस को मलयानल कहते हैं कड़वी, कषैली होती है, धीरे २ चलती है, इस में सुगन्धी होती है, प्रभाव मोतदिल होता है। स्त्री पुरुष में काम की वृद्धि करती है। कफ़ज रोग इस से बढ़ते हैं।

मलयानल आलस्य उत्पन्न करती है, रोमकूप खोलती है, प्रकुपित दोष को बाहिर निकालती है, शिर में गुरुता उत्पन्न करती घावों को खराब करती है, रोगों को पुनर्जीवित करती है शरीर को निर्बल करती है, घावों में खाज उत्पन्न करती है, शिरःशूल बढ़ता है, निद्रा अधिक आती है।

उत्तरीय वायु।

उत्तरी वायु शीत रुक्ष है, क्योंकि बरफ़ के पानी और पहाड़ों को छूकर आती है। और उत्तर दिशा सूर्य्य से दूर होने के कारण स्वयम् शीतल है। उत्तरी वायु के रुक्ष होने का कारण यह है कि इसका गुज़र समुद्रों पर से होता है। बुखारात भी जितने दक्षिण

की ओर हैं. उत्तर की ओर नहीं हैं। अतः उत्तरी वायु दक्षिणी वायु की अपेक्षा रूक्ष है। यह बल देती और शरीर को दृढ़ करती है, स्वेदाधिक्य को रोकती है रोमकूपों को बन्द करती हैं, पाचन शक्ति बढ़ाती अतिसार बन्द करती है, मूत्रस्रावक है, वबाई वायु को शुद्ध करती है। यदि पहिले दक्षिणी वायु चले, फिर उत्तरी वायु चले; तो पहिले शरीर में आर्द्रता होती है, फिर वह शुष्क होकर शरीर के भीतर की ओर जाती है और कभी वह आर्द्रता को बाहिर निकालती है। इसी वास्ते ऐसे समय में शिर से मवाद अधिक निकालती है और छाती के रोग अधिक होते हैं। जो रोग उत्तरी वायु से उत्पन्न होते हैं यह हैं:—पट्ठों में पीड़ा होनी, बस्ती शोथ, गर्भाशय शोथ, मूत्राऽवरोध, खांसी, पार्श्वशूल, पंक्तिशूल, छातीशूल।

आयुर्वेदानुसार उत्तरी वायु शीतल, तृप्तिकारक होती है, (क्योंकि इसके संग जलपूर्ण बादल होते हैं) कषैली, मीठी, शीतल है, हृदय को भाती है, कफ को बढ़ाती है।

आयुर्वैदिक ग्रन्थों में इन चार दिशाओं के अतिरिक्त मध्य दशाओं के विषय में भी लिखा है। अतः अग्नेय कोण—(पूर्व दक्षिण) की वायु तिक्त मधुरता युक्त होती है। कफ वातज रोग उत्पन्न करती है। फोड़े फुन्सी और घाव वालों के लिए निकृष्ट है।

नैरित्य कोण—दक्षिण पश्चिम की वायु ऊष्ण रूक्ष होती है, वात कोप को शान्त करती है, तिक्त, अम्ल, पित्त, रक्त, इन दोषों को उत्पन्न करती है, शारीरिक बल को घटाती है।

वायव्य दिशा—(पश्चिम उत्तर) की वायु उत्तम होती है। मनुष्यों को बहुत प्रिय है, शोथ युक्त घावों को हितकर है। इसमें खराबी नहीं है।

एशान दिशा—(पूर्व उत्तर) की वायु शीतल और तेज़ है। कफ और वात को प्रकुपित्त करती है। घाव श्वासावरोध, कास, इन रोगों के वास्ते अच्छी नहीं है।

विविध कारणों से वायु में परिवर्तन ।

यदि किसी नगर के समीप दक्षिण की ओर कोई पहाड़ हो, और उस पर बरफ़ बहुत गिरे, तो दक्षिण की वायु शीतल होगी इसके अतिरिक्त प्रायः उत्तर की वायु ऊष्ण और रुक्ष होती है जिसका कारण गरम वृक्षों पर से गुज़रना है।

बादे समूम (विषैली वायु)—उपर्युक्त पवनों के अतिरिक्त बादेसमूम (विषैली वायु) का भी यूनानी पुस्तकों में वर्णन है और यह वह वायु है जो दग्ध हुए वृक्षों आदि पर से गुज़रती है और धूम्र व वाष्प जो धूलि से उठती है इसमें सम्मिलित हो जाती है। अग्नि ज्वाला और भयानक वस्तुयें जो रात्रि को बाज़ समय वायु में दिखाई दिया करती हैं, वह इन्हीं वाष्पों से होती हैं, क्योंकि यदि यह वाष्पें गाढ़ी हों, तो प्रज्वलित हो सकती हैं। इस गरमी से जो कुछ वाष्प में है, भस्म होगा, और पृथक् होगा, और कार्बनादि नीचे की ओर झुकेगा, वही बादे समूम (विषैली वायु) है। और जिस वस्तु पर से गुज़रती है उसको दग्ध कर देती है और मार डालती है।

(५) मृतिका प्रभेद से वायु परिवर्तन ।

शुद्ध मिट्टी की भूमि की वायु मोतदिल और उत्तम होती है।

पथरीली भूमि की वायु शीत रुक्ष होती है। रेगिस्तान की वायु गरम रुक्ष होती है। दलदली भूमि की वायु आर्द्र और निकृष्ट होती है। इनके अतिरिक्त जिस भूमि में गन्धक हरितालादि के परमाणु मिले होंगे, उस भूमि की वायु में उसी प्रकार के प्रभाव होंगे।

सम्मिलित हेतुओं से वायु में परिवर्तन ।

आकाश और भूमि दोनों के सम्मिलित कारणों से वायु में जो परिवर्तन होता है। वह अक्षः पर शहरों के बसने के विचार से है। यथा जो नगर केन्द्र रेखा पर बसा होगा, वहां की वायु बहुत गरम होगी, जैसा कि प्रगट है। या केन्द्र रेखा से बहुत दूरी पर ध्रुवों के समीप जो नगर बसे होंगे, उनकी वायु बहुत शीतल होगी, जो मध्यम दशा में होंगे उनकी वायु मोतदिल होगी। इसी प्रकार

प्रत्येक नगर के अक्षांश से वहां की वायु की शीतोष्णता जान सकते हैं।

अप्राकृतिक वायु परिवर्तन।

वायु का अप्राकृतिक परिवर्तन दो प्रकार से होता है। प्रथम यह कि वायु का प्रभाव बदले, दूसरे यह कि वायु की दशा बदल जाय। जब वायु का प्रभाव बदल जाता है तो यह वबा कहलाती है जैसे प्लेगादि में होती है और दशा परिवर्तन यह है कि अत्यन्त ऊष्ण या अत्यन्त शीतल हो जाय, और जब मनुष्यों व पशुओं पर गुज़रे उनको रोगी करे, या मार डाले।

स्थान प्रभेद से मानुषी शरीर पर वायु का प्रभाव।

जानना चाहिए कि स्थान दो प्रकार के होते हैं, एक तो जिस शहर या देश में बसें वह स्थान है। और उसमें फिर हमारा व आपका घर दूसरा स्थान है। प्रत्येक स्थान पर प्रत्येक वायु का जो प्रभाव मानुषी शरीर पर होता है वह पृथक् २ लिखते हैं:—

जिस नगर और देश की वायु अत्यन्त गरम हो वहां के लोग काले, और उनके बाल घूंघर वाले होते हैं। प्रकृति उनकी ख़राब और ख़राब आहार को पचावेंगे, और उनकी त्वचा नरम होगी, और अधिक पचने के कारण जठराग्नि शीघ्र कम हो जायगी, और वहां के लोग शीघ्र बूढ़े हो जांयगे, जैसा कि हब्श देश में ३० वर्ष की आयु में बुढ़ापा होता है। और जिस देश की वायु शीतल हो वहां के मनुष्य भारी और वीर होते है, उनके आमाशय भी बलवान् होते हैं, आहार भली भांति पचा सकते हैं। शीतल देशों के मनुष्य मोटे, गोरे, और हृष्ट पुष्ट होते हैं, (जैसा कि यूरोपियन), और आर्द्र देश के मनुष्य खुशरंग, सुकुमार, और नरम त्वचा वाले होते हैं। साधारण कामों में शीघ्र थक जाते हैं, गरमी और जाड़े की ऋतुओं में मोतदिल रहते हैं। उनको अतिसार, अर्श, अपस्मार, ज्वर, फोड़े, फुन्सियां होती हैं, मुखपाक अधिक होती है। दांतों की जड़ें सूज जाती हैं। रक्तातिसार बहुत होते हैं।

रूक्ष देशों और शहरों के निवासी शुष्क शरीर और रूक्ष त्वचा वाले होते हैं। यह शहर और देश ग्रीष्म ऋतु में गरम और शीत ऋतु में शीतल हो जाते हैं, ओष्ठ, हस्त, और मुख फट जाते हैं।

निचान शहरों और देशों के वासी नेत्रशूल, यकृत शोथ, में ग्रस्त रहते हैं, वहां पर जल शीतल नहीं होता, वायु खराब होती है। और जो शहर पत्थरों पर बसे हैं, उन शहरों की वायु गर्मी में गर्म और सर्दी में सर्द होती है। वहां के मनुष्य कठोरांग और कठोर मांस वाले होते हैं। वह दुःस्वभाव, घमण्डी, लड़ाके, और आतुर होते हैं।

जो शहर बरफ़ानी पहाड़ों पर बसे हैं, वहां की वायु शीतल होती है। परन्तु जब तक बरफ़ पहाड़ पर रहती है शीतल और उत्तम वायु आती है। और जब बरफ़ हट जाती है, यदि वह पहाड़ ऐसे हैं कि उत्तरीय वायु को रोके रक्खें तो वहां की वायु अप्रिय होगी। जो शहर नदियों के किनारे बसे हैं, या नदियों के समीप हैं उनके विषय में पहिले वर्णन किया जा चुका है।

उत्तरीय दिशा के निवासियों की दशा शीतल वायु और शीत ऋतु के तुल्य है। वहां के निवासी डील डौल वाले होते हैं, उनकी आयु दीर्घ होती है, शीत रोगों (यथा नज़ला जुकाम) में ग्रस्त होते हैं, नकसीर बहुत आती है, जिसका कारण यह है कि उनके भीतर शोषण कम होता है, क्योंकि रोम कूप बन्द होते हैं, और नसें रक्त से भर जाती हैं, फिर नसों के मुख खुल कर नकसीर जारी हो जाती है। उत्तरीय शहरों के निवासियों को अपस्मार नहीं होता, क्योंकि वहां के मनुष्यों के आन्तरिक अवयव दृढ़ होते हैं और जठराग्नि बहुत प्रचण्ड होती है। यदि उत्तरीय शहरों के रहने वालों में से किसी को अपस्मार होजाय तो वह बहुत प्रबल होता है, क्योंकि वह किसी प्रबल कारण से होता है, जो कि बलवान् शरीर पर भी प्रबल आ जाता है। घाव, फोड़े, फुन्सियां जो वहां के मनुष्यों के शरीरों पर होते हैं, वह शीघ्र अच्छे हो जाते हैं, और वहां की स्त्रियां ऋतु धर्म्म से अधिक देर में शुद्ध होती हैं, क्योंकि शिराओं के तंग होने से रक्त थोड़ा २ निकलता है। चिकित्सकों के एक दल की सम्मति है, कि उन स्त्रियों के सन्तान कम उत्पन्न होती है, और उन स्त्रियों के प्रसूत काल के पश्चात् प्रायः धनुर्वात और रक्तवमन रोग हो जाते हैं क्योंकि शिराओं और नलिकाओं की तंगी के

कारण दुःख और कष्ट बहुत उठाती हैं, और बाज़ समय बहुत ज़ोर करने के कारण छाती की कोई नस टूट जाती है, जिस से रक्त वमन रोग हो जाता है, या पट्ठे की कोई शाखा टूट जाती है, और इस से धनुर्वात हो जाता है। बच्चों को अन्त्रवृद्धि रोग बहुत होता है। परन्तु जब आयु बढ़ती है तो यह रोग दूर हो जाता है और कन्याओं के गर्भाशय तथा उदर में पानी भर जाता है। परन्तु जब वह बड़ी होती हैं, तो दूर हो जाता है। नेत्रशूल कम होता है, और यदि होता है तो बहुत प्रचण्ड होता है।

दक्षिणीय शहरों के निवासियों का हाल ग्रीष्म ऋतु के तुल्य होता है। और उन लोगों को रोग भी ग्रीष्म ऋतु के से होते हैं। वहां के लोगों को मदिरा का खुमार बहुत अधिक होता है क्योंकि आहार अच्छी तरह नहीं पचता मस्तिष्क निर्बल रहता है। नेत्रशूल, बवासीर उनको बहुत होती है। प्राच्य और पाश्चात्य शहरों के निवासियों का हाल प्राच्य और पाश्चात्य वायु के अनुसार होता है। जिन शहरों के एक ओर पर्वत हो, एक ओर नदी हो, तो वहां की वायु आर्द्र होगी, क्योंकि वायु वाष्प को नदी से पहाड़ पर ले जायगी, और निकलने का कोई मार्ग न पावेगी, वर्षा भी बहुत होगी। अतः यदि वहां की भूमि शुष्क या पथरीली है तो कोई हानि नहीं। परन्तु यदि वहां की भूमि आर्द्र है तो वहां की वायु दूषित होगी। और जो भूमि निचान में हो, और उसके दक्षिण ओर नदी हो, और उत्तर ओर पहाड़ तो वहां रोग बहुत होंगे। संक्षिप्त यह कि जिस देश और शहर की भूमि पथरीली हो वहां के जल वायु का प्रभाव मानुषी शरीर पर आर्द्र भूमि के जल वायु से उत्तम होगा। उजाड़ स्थान की वायु शुष्क होती है दरियाई वायु तर होती है। पहाड़ी वायु शुष्क होती है। और जिस जगह पानी की अधिकता से दुष्ट जन्तु बहुत उत्पन्न होते हैं, वहां की वायु दुर्गन्धित और हानिकारक होती है।

मस्कने जुज़वी की वायु का प्रभाव—मस्कने जुज़वी से अभिप्राय घर है। अतः जो घर शहर के पूर्व या उत्तर की ओर हों, उनकी छतें ऊंची हों, द्वार पूर्व और उत्तर की ओर हों,

रोशनदान और खिड़कियां पूर्व और उत्तर की ओर हों, कि सूर्य्य निकलते ही सम्पूर्ण घर प्रकाशित हो, ऐसे घर की वायु मनुष्य के लिए स्वास्थ्यदायक और उत्तम होती है और इसके विरुद्ध हानिकारक।

विविध पंखों से वायु करने का वर्णन।

वायु के सविस्तर वर्णन के पश्चात् अब हम उन पवनों का वर्णन करते हैं, जो मनुष्य गरमी दूर करने के वास्ते स्वयम् चलाता है।

वस्त्र वायु—वस्त्र की वायु शोथ युक्त घावों के वास्ते उत्तम नहीं है। विशेषतयः लाल वस्त्र की वायु तो सर्वथा ही निकृष्ट है क्योंकि लाल वस्त्र की वायु कफ और रक्त को बढ़ाती है और बहुत से रोगों को उत्पन्न करती है। इस से तृषा, ऊंघ, और निद्रा अधिक उत्पन्न होती है।

बांस के पंखे की वायु—बांस के पंखे की वायु से ऊंघ और निद्रा उत्पन्न होती है। यह वायु शुष्क और कषाय रस युक्त होता है। इससे वात प्रकुपित्त नहीं होता है।

कांसी पात्र की वायु—कांसी पात्र की वायु शुष्क है। गरम है। वात को शान्त करती है। दाह और श्रम को दूर करती है। निद्रा लाती है। और सुख देती है।

ताड़ और कदली पत्र की वायु—ताड़ और कदली पत्र की वायु शीतल और मृदु होती है. श्रम नाशक है, परन्तु कफ को दूषित करती है। निद्रा वर्द्धक है, प्रेमोत्पादक है, रोग शोक दुःख को नष्ट करती है, दाह, पित्त, श्रम, और आलस्य को दूर करती है, भ्रम को निवारण करती है।

उशीर और मोर पंख की वायु—उशीर और मोर के पंखों से बनाए हुए पंखे की वायु सुगन्धित और शीतल होती है, आलस्य, मूर्छा, भ्रम, विष इनको दूर करती है।

बिजली के पंखे की वायु—शुष्क व वातज होती है और यदि शिर पर पंखा चलता रहे, तो शिरःशूल हो जाने का भय है।

किन मासों में कौन वायु उत्तम होती है ।

माघ फाल्गुण में प्राच्य वायु उत्तम होती है। अगहन और पौष में प्राच्य और दक्षिणी कोने की वायु उत्तम होती है। चैत्र व वैशाख में दक्षिणी वायु अच्छी है। ज्येष्ठ, आषाढ़ में दक्षिण पश्चिमी कोने की वायु उत्तम होती है। श्रावन व भाद्रपद में पश्चिमी वायु उत्तम है। आसौज और कार्तिक में पश्चिमोत्तर कोने की वायु उत्तम है।

नोट—आयुर्वैदिक में जो ६ ऋतु वर्णन किए हैं, उनके प्रत्येक के मिलाप के समय और कार्तिक, अगहन, माघ, और आषाढ़ में वायु खराब होती है।

अभी तक हमने वर्तमान साइन्स के अनुसन्धानों और यूनानी तथा वैद्यक के अनुसार बतलाया है कि वायु क्या वस्तु है, और वह कैसे खराब होती है। वायु के सम्बन्ध में यूनानी व आयुर्वैदिक में बहुत बारीकियां भी हैं, क्योंकि यूनानी में यह अरकान में और वैद्यक में तत्वों में मानी गई है परन्तु इस पुस्तक में इन की आवश्यकता न जान कर हमने इन्हें छोड़ दिया है।

अब हम यह बतलाना चाहते हैं, कि वायु कैसे शुद्ध होती है!

प्राकृतिक नियमों से शुद्धि ।

जो कुछ हमने ऊपर वर्णन किया है, उस से पता लगता है, कि यदि वायु के शुद्ध होने के उपाय वर्तमान न हों, तो बहुत शीघ्र मनुष्यों और पशुओं के वास्ते संसार में जीना कठिन हो जावे, परन्तु प्रकृति ने वायु को शुद्ध करने के बहुत कुछ प्रबन्ध कर रक्खे हैं। और हम उनका वर्णन वायु के अशुद्ध होने के निबन्ध के साथ २ ही करते आए हैं।

यथा वायु की शुद्धि का सब से बड़ा हेतु यह वृक्ष हैं, जिन के विषय में हम पीछे लिख चुके हैं। प्रकृति ने कैसा अच्छा प्रबन्ध रक्खा है, कि वायु हमारे भीतर जाकर कार्बन के साथ मिलकर बाहिर आती है। यह वायु हमारे जीवन को हानिकारक है, परन्तु

आक्सीजन व कार्बन मिश्रित वस्तु वृक्षों के वास्ते आहार है। जैसे हंस पानी से दूध पृथक कर लेता है, वैसे ही वृक्ष, पौदे, झाड़ियां इस मिश्रित वस्तु से कार्बन को अपने भीतर शोषण कर लेते हैं, और आक्सीजन वायु को पृथक करके हमारे वास्ते छोड़ देते हैं। यह वृक्ष, पौदे, सबज़ियां, तरकारियां अपनी वारी में फिर मनुष्यों के काम आती हैं।

साइन्सदान बतलाते हैं, कि रात्रि के समय वृक्ष भी आक्सीजन को अपने भीतर लेते हैं, और कार्बोनिक एसिड गैस को निकालते हैं, परन्तु आक्सीजन शोषण करने की मात्रा उनके आक्सीजन निकालने की मात्रा से बहुत ही कम होती है, इस वास्ते वृक्षों का असल काम यही माना जाता है, कि हमारे श्वास से निकली हुई वायु को शुद्ध करें, रात्रि को थोड़ा सा कार्बोनिक एसिड गैस निकालने का काम जो होता है उसके विषय में यह ध्यान रखना चाहिये, कि जहां २ बहुत बेल बूटे रक्खे हों न सोना चाहिये, और बहुत घने वृक्षों के नीचे भी न सोना चाहिये।

आंधियां

भी वायु की प्राकृतिक शुद्धि करती हैं। वायु के भीतर प्रथम तो आगे ही विभक्त करने की बहुत शक्ति है। अभी अग्नि से धूम्र निकल कर आकाश पर उड़ रहा है, और देखते २ अभी लोप हो जाता है, यह क्यों? वायु के भीतर वह इतना शीघ्र फैल जाता है, और अणु अणु होजाता है, कि दिखाई नहीं दे सकता है। हमारे श्वास से जो वायु निकलती है वह तुरन्त दूसरी वायु के साथ मिल जाती है, और यदि वह समीप ही रहे तो समूहों में थोड़े ही मिन्टों के भीतर वायु श्वास लेने के अयोग्य हो जावे। वायु के इस विभक्तकारी गुण के अतिरिक्त वायु सदैव एक या दूसरी ओर चलती ही रहती है। यह बहुत कम अवसर होता है, कि वायु सर्वथा वन्द हो। वायु का इस प्रकार चलते रहना भी ख़राब वायु को विभक्त करने में सहायता देता है, जिस से उसकी हानि कम होती रहती है। इसके अतिरिक्त कभी कभी आंधियां चलती हैं। बड़ी २ आंधियों से हानियां भी होती हैं, परन्तु वायु के साफ़ करने में यह बहुत सहायता होती है।

सड़ांध उत्पन्न हुई वायु जो भारी होने से शीघ्र डायल्यूट नहीं होती मोरियों आदि की वायु· जिनको बदलने का बहुत कम अवसर मिलता है, सब को आंधियां वहा कर ले जाती है, और उनकी जगह शुद्ध वायु लेती है।

आंधी जब आयें, तब ही गरमी का प्रकोप किसी न किसी जगह होता है। गरमी से वायु सूक्ष्म व हलकी होकर ऊपर चढ़ जाती है। तब उस स्थान को लेने के वास्ते दूसरे स्थान की वायु आती है। इस प्रकार समस्त वायु गति में आजाती है और इसी का नाम आंधी है।

जहां गरमी होती है, वहां दो लाभ हो जाते हैं, एक तो गरमी बहुत सफ़ाई करती है, दूसरे वहां आंधी आकर उस खराबी को उड़ा ले जाती है। सूर्य्य जो प्रति दिन वायु को साफ़ करता है; उसका अनुमान कौन कर सकता है। आंधी पश्चात् कभी वर्षा भी होती है, जो सोने पर सोहागा है, धूलि आदि सब बैठ जाता है। वायु के भीतर जो सड़ांध युक्त परमाणु या जड़ चेतन वस्तुओं के परमाणु आदि जिन का पीछे वर्णन हुआ कि वायु को खराब करते रहते हैं, वह पानी के साथ भूमि पर आकर बह जाते हैं, और वायु शुद्ध हो जाती है। आंधी के पश्चात् मेंह का आना तो बहुत ही अच्छा है, ताकि कोई भी गर्द न रहे। ऐसे ही यह वर्षा भी काम आती है कि वायु को साफ़ करे। इस प्रकार से प्रकृति सदैव वायु को शुद्ध करती रहती है।

वायु शुद्धि के जातीय विधान।

प्राकृत रूप से वायु शुद्ध होती रहती है। उसके अतिरिक्त सामाजिक ऐसे विधान हैं, जो वायु की शुद्धि के वास्ते तत्ववेताओं ने नियत किए हुए हैं। इस प्रकार के विधान प्रत्येक देश व जाति में पृथक २ हैं। हिन्दुओं में पहिले एक विधि हवन की प्रचलित थी, जो हमारी समझ में वायु की शुद्धि के वास्ते सब से उत्तम है।

प्राचीन काल में घर २ में हवन प्रतिदिन हुआ करता था। अब लोगों ने इसको छोड़ दिया है। अब कहीं २ फिर इसकी प्रथा हो रही है। प्राचीन काल में जो यात्री भारतवर्ष में आए उनके

बचनों से पता लगता है, कि समस्त भारतवर्ष सदैव महकता था। एक यात्री ने वर्णन किया, कि एक ग्राम में जब पहिले ही प्रविष्ट होने लगा तो मैं हैरान था, कि उसके मील भर इतस्ततः से ही सुगन्ध कैसी आ रही है, वायु सुगन्धित थी, और हृदय व मस्तिष्क को आनन्द दे रही थी। जब उस ग्राम में गया तो मालूम हुआ कि सारे ग्राम में घर २ दैनिक हवन यज्ञ होता है। उन दिनों भारतवर्ष में वबाऐं इस प्रकार नहीं आती थीं। जैसे कि आजकल भारतवर्ष को ही उन्हों ने अपना घर समझ रक्खा है।

हिन्दू शास्त्रों में यह अंकित है, कि मनुष्य दिन भर में कितनी दुर्गन्ध फैलाता रहता है मलमूत्र और नाकादि मलों की ही कुछ गणना नहीं है। इस वास्ते प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है, कि उसके बदले सुगन्धी भी फैलावे। जिस से वायु सदैव शुद्ध रहे।

श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज कहते हैं

कि देवता तुमको देते हैं, फिर देवताओं को देने के बिना जो तुम खाते हो तो चोरी करते हो, सूर्य्य, अग्नि, जल, वायु, आदि देवता हैं। इन्हीं की बदौलत हम जीवित हैं और इन्हीं की बदौलत संसार में हमारे लिए सब कुछ उत्पन्न होता है। इन देवताओं को दिए बिना जो खाता है वह चोरी करता है। इनको देना क्या है?

हवन—करना। हवन करते समय प्रथम हम अग्नि में सुगन्धित वस्तुएं डालते हैं। उनको वायु लेकर अपने साथ ऊपर जाती है। फिर वही सुगन्धित परमाणु मेघ द्वारा भूमि पर आते हैं, जलों में उनका प्रभाव होता है। जल वायु के द्वारा सम्पूर्ण जगत् के भीतर उनका उत्तम प्रभाव जाता है। इस प्रकार से एक दूसरे को प्रसन्न रखने से देवता प्रसन्न रहते हैं, और रोग नहीं फैलाते हैं, वर्षा भी समय पर होती है।

हवन के भीतर जो घृत डाला जाता है, वह जब ऊपर जाता है तो बादलों में सहायक होता है। घृत का धूम्र इन बादलों में मानो जामन का काम देता है। बाज़ लोग

प्रतिवाद

कर दिया करते हैं; कि अग्नि जलने से कारबानिक एसिडगैस उत्पन्न होती है 'जैसा कि पहिले लिखा भी जा चुका है' फिर हवन से शुद्धि कैसे होती है।

इसके उत्तर में प्रथम तो यों समझ लेना चाहिए, कि यद्यपि अग्नि जलने से कारबानिक एसिड गैस उत्पन्न होती है परन्तु अग्नि से बढ़कर संसार में कोई सफ़ाई करने वाला नहीं है। जब किसी प्रकार के रोग कीटाणु वायु में फैले होते हैं, तो केवल अग्नि व गरमी ही उनको दूर करती है। घर में जब कोई संसर्गिक रोग हो जावे, तो उस घर की सब वस्तुओं को गरमी पहुंचाकर या धूप लगाकर शुद्ध किया जाता है। प्लेग के कीटाणुओं को दूर करने के वास्ते डा० झक्कराम साहिब ने जो अंगीठी बनाई है वह क्या है? यही कि चारों ओर उसके मुख हैं, जिनसे गरमी निकल कर सब कमरे में भर जाती है। और सब वस्तुओं की शुद्धि हो जाती है।

प्लेग रोग जब यूनान में आरम्भ हुआ, तो वहां के निवासी घबराकर बुक़रात हकीम के पास उसका प्रतिबन्धकोपाय मालूम करने के वास्ते आए। बुक़रात ने कहा कि शहर के इतस्ततः सुगन्धित वस्तुऐं जमा करके अग्नि लगा दो। ऐसा ही किया गया, और रोग दूर हो गया। लन्दन में चिरकाल तक एक बार प्लेग रही थी। एक समय वहां अग्नि लग गई, जो बहुत प्रचण्ड थी और बहुत सा लन्दन का भाग नष्ट हो गया। उसी दिन से प्लेग वहां से दूर हो गई। वर्षा ऋतु में जब वायु मकानों के भीतर भारी हो जाती है और आर्द्रता की दुर्गन्ध आनी आरम्भ होती है उस समय अग्नि जला कर उसको शुद्ध किया जाता है।

भारतवर्ष के उत्तरीय भागों में जहां शीत अधिक पड़ती है एक त्योहार

लोहड़ी

का रिवाज इसी वास्ते हमारे पूर्वजों ने आरम्भ किया हुआ हैं, सब से अधिक शीत के दिन पौष व माघ के महीने हैं। ठीक

उनके मध्य लोहड़ी की रात्रि होती है, जब कि गली २ और घर २ में बहुत सी अग्नि जलाई जाती है। इसका प्रयोजन यही होता है, कि उन दिनों वायु भारी होकर प्रायः जमा रहती है। सूर्य्य की गरमी भी बदल नहीं कर सकती है। इसी वास्ते प्रायः उन दिनों वर्षा भी होती है, जिस से और भी कीचड़ हो जाता है, और वायु अशुद्ध तथा कई दोषों से पूर्ण होती है। इन दिनों पर सब जगह अधिक अग्नि जलने से अशुद्ध वायु गरम होकर उड़ जाती है और उसकी जगह शुद्ध वायु शहरों और ग्रामों में प्रविष्ट हो जाती है। उत्तम यह है कि उसके भीतर सुगन्धित वस्तुयें ली जावें ताकि और भी अधिक लाभ हो। जिस प्रकार से आप जिस ओर दृष्टि डालते जावें, आपको ज्ञात होगा, कि अग्नि व गरमी ही सब से बढ़ कर शुद्धि करती है। डाक्टर लोग औज़ार गरम करके ही शुद्ध करते हैं। क्षयग्रस्तों का कफ़ व मलादि अग्नि में ही जलाया जाता है। वस्त्र जलाए जाते हैं या खौलते हुए पानी में डालकर साफ़ किए जाते हैं। अन्न जब खराब होने लगे, उसको भी धूप लगाते हैं। जहां दुर्गन्ध आवे प्रायः लोग यही कहते हैं कि अग्नि जलाओ। अतः अग्नि शुद्धि के वास्ते ऐसी आवश्यक वस्तु है, के जिसके बिना संसार का काम काज ही नहीं चल सकता है।

अग्नि जलने से जो कारबानिक एसिड गैस निकलती है, वह उस समय इतनी गरम होती है, कि तुरन्त ऊपर को जाती है, और फिर वायु को फैलाने वाली शक्ति उसको इतना छिन्न भिन्न कर देती है कि वह कोई हानि नहीं पहुंचाती है, वरन् बनस्पति जगत का आहार बन जाती है।

दूसरी बात यह है, कि हवन के वास्ते जो अग्नि जलाई जाती है उस में सुगन्धित वस्तुयें घृत मिलाकर डाली जाती हैं, जिस से वह धीरे २ जलती हैं। इन औषधियों के सूक्ष्म परमाणु वायु में फैल जाते हैं। यदि सब औषधि जल कर उसका कारबानिक ऐसिड गैस बन जावे तो हवन से कभी सुगन्धि न आवे, क्योंकि किसी वस्तु में रसायनिक परिवर्तन हो जावे तो उसका पहिला रंग रूप, स्वाद, गुण, कुछ भी शेष नहीं रहते। सुगन्धी प्रगट करती है, कि औषधियों

के बहुत से परमाणु सूक्ष्म रूप में वायु के भीतर फैल रहे हैं। वह परमाणु जहां २ भी वायु के भीतर विकार हो उसको दूर कर देते हैं। वह दुर्गन्धित पदार्थों का मुक़ाबला करते हैं। वह दुर्गन्ध से उपजे हानि कारक कीटाणुओं को नष्ट करते हैं, क्योंकि जो वस्तु हमारे लिए हितकर है, वह हमारे शत्रुओं के लिए अहितकर है। रोग कीटाणु दुर्गन्ध में पलते हैं, और सुगन्ध से नष्ट होते हैं। यही सूक्ष्म परमाणु शुद्ध वायु के साथ आकाश में जाते हैं, वहां जलवाष्प पर अपना अच्छा प्रभाव करते हैं, जिस से वर्षा जल अधिक उत्तम और गुणकारी होता है। यही वर्षा जल है, जो किसी न किसी प्रकार हमारे काम आता है। इस वास्ते यह स्वास्थ्यदायक जल भी हमारा स्वास्थ्य बढ़ाने का हेतु होता है। इस जल से हमारी खेतियां पकती हैं, इस वास्ते अन्न भी उत्तम होते हैं। हवन जिस देश में होते हैं वहां वर्षा भी समय पर होती है, क्योंकि घृत के परमाणु वाष्प परमाणुओं के मिलाने में जामन का काम देते हैं। जैसे बहुत सा दूध थोड़े से दही से जम जाता है. वैसे ही बिखरी हुई वाष्प जो परस्पर मिलना चाहती है, परन्तु कई कारणों से भली भांति मिल नहीं सकती, वह घृत व हवन के परमाणुओं के प्रभाव से तुरन्त मिल जाती है।

संक्षिप्त यह कि जिस प्रकार से देखें, हवन करने का नियम अत्युच्च सिद्धान्तानुसार है और भारतवर्ष भाग्यवान होगा, जिस दिन फिर इसके भीतर घर घर हवन होना आरम्भ होगा। बाज़ लोग कहते हैं, कि वायु शुद्धि गन्धकादि वस्तुएं जलाने से भी तो हो सकती है। निःसन्देह सत्य है कि गन्धकादि वस्तुएं जलाने से रोग कीटाणु दूर हो जाते हैं, परन्तु यह वस्तुएं मनुष्य के वास्ते भी हानिकारक और दुर्गन्धित हैं। इनका धूम्र कासादिक रोग उत्पन्न करता है, जिस कमरे में गन्धक धुकाई जाती है, उस में तीन दिन तक तो डाक्टर भी जाने से मना करते हैं। फिर ऐसी वस्तु का प्रयोग क्यों न किया जावे, जिस से दिमाग़ महक जाता है, और दूसरा काम भी पूरा होजाता है। पारसियों में भी हिन्दुओं की न्याई घर २ में हवन होते रहते थे, जैसा हिन्दू शास्त्रों में लिखा है कि

जिस हवन की अग्नि से बिवाह हो वह अग्नि लाकर प्रति दिन दोनों समय उस में हवन करना चाहिए, और उस अग्नि को कभी बुझने नहीं देना चाहिए, ऐसे ही पारसियों की अग्नि कभी बुझने न पाती थी। परन्तु अब पारसी लोगों की विधि बहुत बदल गई है। अब उनके घरों में यह पवित्र अग्नि दिखाई नहीं देती है। अब केवल उनके मन्दिरों में यह अग्नि प्रकाशित रहती है, और पारसी लोग जब उस मन्दिर में जावें अपनी ओर से उसमें चन्दन डालते हैं। बम्बई में ऐसे मन्दिर हैं, परन्तु अग्नि के समीप सिवाय पारसियों के किसी अन्य को जाने की आज्ञा नहीं है।

धूप जलाने या अगर की बत्तियां जलाने की भी कई जगह प्रथा है। परन्तु इनके साथ गरमी उत्पन्न नहीं होती, इस वास्ते यह वस्तुएं ऐसी गुणकारी नहीं हैं। हां कुछ सुगन्धी इन से अवश्य होती है। दीपक में डाल कर केवल घृत का जलना यद्यपि ऐसी सुगन्धी उत्पन्न नहीं करता है, परन्तु रोगकीटघ्न है. और बहुत गुणकारी हैं। मेरा विचार है कि दीप माला का जातीय त्योहार हिन्दू पूर्वजों ने इसी वास्ते स्थापित किया था, कि खुशी भी हो जावे, साथ ही वायु की शुद्धि भी हो जावे। उस समय घी के दीपक जलाए जाते थे। क़तारों की क़तारें घृत के दीपकों की जब एक ही रात को सम्पूर्ण भारतवर्ष में जलती होंगी तो क्या ही आनन्द आता होगा।

परन्तु शोक ! कि हमारी भूल से यह त्योहार भी ख़राब हो रहा है। लोग छोटी मोम बत्तियां जिन में बाज़ समय चरबी भी होती है जलाते हैं। दिन प्रति दिन इसी बात को बढ़ता हुआ देख कर अत्यन्त शोक हो रहा है। विजली के लैम्पों में से कोई दुर्गन्ध नहीं निकलती। सुन्दरता के निमित्त इनका व्यवहार बुरा नहीं है, परन्तु घृत के दीपक से जो लाभ होता था, वह इससे कभी नहीं हो सकता। घी न हो तो सरसों का तैल रखना चाहिए। थोड़े दीपक जलाने उत्तम हैं, परन्तु मोम बत्तियों का जलाना ठीक नहीं है। इस जातीय त्योहार को ख़राब करना महा भूल है।

हिन्दुओं में दीपमाला के दिन जो घरों की सफ़ाई करने की प्रथा है। वह भी इस बात को प्रगट करती है कि यह त्योहार वायु शुद्धि के लिए नियत किया गया था। दीपमाला से प्रथम ही लोग मकानों में सफ़ेदी करवाने लग जाते हैं। सफ़ाई होती है। कोने २ से कूड़ा करकट निकाला जाता है। दीपमाला से २ दिन प्रथम धनत्र्योदशी के दिन नवीन पात्र घरों में लाते हैं, और दीपमाला के दिन तक सम्पूर्ण घर साफ़ कर दिया जाता है। और अगले दिन फिर एक बार भली प्रकार झाड़ू देकर कूड़ा करकट घर से बाहिर करके उस पर भी दीपक रखते हैं, जो इस बात का सूचक है कि हमने सब घर को साफ़ कर दिया है। घर से बाहिर कूड़ा करकट को यत्न से एक ओर रख देना इस बात का सूचक है, कि अपने घर के कूड़ा करकट को बुरी प्रकार से नहीं फैंकना चाहिए, जिससे दूसरों को कष्ट हो। सम्पूर्ण देश की सफ़ाई नहीं हो सकती है यदि लोग अपने घर का कूड़ा दूसरे के घर फेंक दें। गली, बाज़ार, कूचे, कभी साफ़ नहीं रह सकते हैं, यदि लोग इनकी सफ़ाई का ध्यान न रक्खें। आज कल इसका बहुत कम ध्यान रक्खा जाता है, जिसके कारण से म्यूनिसिपिल कमेटी चाहे कितनी सफ़ाई करे, पूरी सफ़ाई नहीं होती है। श्रीनगर (कश्मीर) में अभी तक लोग अपने घरों से निकल कर गली में पाखाना फिरने बैठ जाते हैं, जिसका परिणाम यह है कि पुराने ढंग की गलियों में कतिपय समय गुज़रना भी कठिन होता है। यह सब बातें मूर्खता से होती हैं, अन्यथा त्योहारों को ही यदि भली भांति देखो तो मालूम होता है कि हमारे पूर्वजों ने प्रत्येक बात की शिक्षा दी है। कूड़ा करकट निकाल कर एक जगह रख दो जहां से भंगी उठा ले जावे। इस प्रकार से न बखेरो कि आने जाने वालों को खराब करे, और फिर उड़ कर स्वयम तुम्हारे ही घर आवे।

वायु शुद्धि के जातीय विधानों की ओर किञ्चित् संकेत करके अब मैं यह बतलाना चाहता हूं; कि शुद्ध वायु प्राप्त करने के वास्ते हमको इनके अतिरिक्त क्या करना चाहिए।

(१) गृह और उनमें रहने की विधि ।

किसानों और श्रम जीवियों को छोड़ कर शेष बहुत से लोगों को २४ घन्टों में लग भग २० घन्टे मकानों, दुकानों, या दफ़तरों में रहना पड़ता है। कृषिकादि भी प्रायः रातें घरों में ही गुज़ारते हैं, कहने का यह अभिप्राय है कि आज कल के लोग प्रायः समस्त आयु गृहों के भीतर गुज़ारते हैं, इस लिए कितना आवश्यक है कि उनकी बनावट ठीक हो, और हम उनके भीतर बुद्धिमानी से रहें, अन्यथा हमारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं रह सकता है। सदैव तंग, बुरे अंधेरे मकानों में रहने से मनुष्यों की आयु भी कम हो जाती है। वेदों में ऐसे मन्त्र आते हैं, जिनसे पता लगता है कि प्राचीन समय में गृह कैसे हवादार, और स्वास्थ्यदायक बनाए जाते थे। पहिली शर्त जो मकान के वास्ते हिन्दुओं की प्राचीन पुस्तकों में मिलती है वह यह है; कि मकान चारों ओर से खुला हो। जब गृह प्रवेश की रसम की जाती है तो चारों दिशाओं के द्वारों पर हवन करना लिखा है। आज कल शहरों के भीतर जो गृह बनते हैं, उनके भीतर स्वास्थ्यसम्बन्धी किसी सिद्धान्त का ध्यान नहीं रक्खा जाता। प्रायः ३ ओर मकान बन्द होते हैं, और दो ओर तो अवश्य बन्द होते हैं। स्थान इतना थोड़ा है कि मल मूत्र त्याग का स्थान बहुत अनुचित जगह में बनता है। मोरियों की गन्दी वायु ऊंचे मकानों के कारण धूप न पहुंचने से और ताज़ा वायु न मिल सकने के कारण प्रायः गलियों में ही रहती है और वही घरों में प्रविष्ट होती है। बाहिर रहने वाला यदि कोई मनुष्य लाहौर की असली गली में दाखिल हो तो ऐसा मालूम होता है कि मानों स्वर्ग से नर्क में आ गया है। इन्हीं गलियों में लाखों मनुष्य बसते हैं। फिर यदि कभी भी उनके चेहरों पर लाली दिखाई न दे तो आश्चर्य्य की कौन सी बात है।

माना कि यह तंगी बहुत कुछ निर्धनता के कारण है, परन्तु इसके साथ हमारे लोगों की मूर्खता भी सम्मिलित है। लाहौर में हमने अपनी आंखों से देखा है। थोड़े वर्ष प्रथम ग्वालमण्डी लाहौर में दो चार सौ रुपया कनाल पर भूमि मिलजाती थी, लोगों ने बड़े २ भूमि खण्ड खरीद कर भी खुले मकान नहीं बनाए। किसी

को ध्यान भी नहीं आता कि अर्द्ध भूमि छोड़ दें तो समस्त आयु सुख पावेंगे। अब ग्वालमण्डी में १५-२० सहस्र रुपया प्रति कनाल तक नौबत पहुंच गई है।

मूल्य उस समय बढ़ता है जब थोड़ी २ भूमि पर लोग मकान बनाने उचित समझते हैं। जिन स्थानों पर कमेटी की आज्ञानुसार केवल कोठियां ही बन सकती हैं, जिनके चारों ओर द्वार खुले हों वहां इतना मूल्य नहीं बढ़ता है। ग्वालमण्डी की भांति ही रामगली की दशा है।

केवल लाहौर ही नहीं, वरन् भारतवर्ष के सम्पूर्ण बड़े नगरों की ऐसी ही दशा है। गलियों की दशा अकथनीय होती है। कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, देहली; हैदराबाद दक्षिण, रंगून, प्रयाग, बनारस, ग्वालियर, जयपुर, कश्मीरादि बड़े २ नगरों के भीतर भी हम घूमे हैं, और गलियों को अत्यन्त मलीन और दुर्गन्ध युक्त पाया है। और नवीन बसे हुए शिमला जैसे स्वास्थ्य दायक स्थान में भी लोअर बाज़ार जो देशियों की बस्ती है वहां गलियों का इनसे भी बुरा हाल है। यदि शिमला का जल वायु उनकी सहायता न करे, वह ऐसे तंग व गन्दे स्थानों में रहते हैं कि कोई भी वहां रहने वाला स्वस्थ न रहे।

बाज़े नगरों में इतनी तंगी है कि सामान्य लोगों को सोने के वास्ते भी स्थान नहीं मिलता है। एक ही स्थान पर एक दूसरी से बड़ी नीचे ऊपर ३-४ चारपाइयां डाल कर सोते हैं। दिन प्रति दिन साहूकार व्यापार करके भूमि का मूल्य बढ़ा रहे हैं। किराए बढ़ रहे हैं, इसी लिए लोगों को तंग अंधेरे मकानों में रहना पड़ता है।

गृह बनाते समय निम्न लिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :—

(१) भूमि तल नीचा न हो बरन् ऊंचा हो, नीची भूमि में आर्द्रता (नमी) रहती है, और यह बहुत से रोगों की घर है, इसी वास्ते घरों के ऊपर की छत्तों में रहने वाले निचली छत्तों में रहने वालों की अपेक्षा स्वस्थ होते हैं। निचली जगहों में जहां पानी आजाता है मकान बनाना बहुत बुरा है।

(२) ऊंची जगह पर जब मकान बनाया जावे, तो उसकी ढलवान एक ओर को रखनी चाहिए, जिससे बरसात में पानी बहुत शीघ्र बह कर मोरियों में चला जावे, न ठहरा रहे और न चारों ओर मकान को खराब करे।

(३) कभी भूमि समतल न होकर बहुत निचान होती है। उसमें इधर उधर की मिट्टी कूड़ा, करकट आदि डाल कर सड़क के बराबर कर देते हैं। ऐसी भूमि पर मकान स्वास्थ्यदायक नहीं होते। प्रथम तो उनके बनाने में कष्ट होता है क्योंकि बुनियाद को असल भूमि से नीचे जाना चाहिए, और पीछे डाला हुआ मलबा गिरता जाता है, फिर जब बुनियाद खोदी जाती है, उस से दुर्गन्ध निकलती है, और उस में पानी के पश्चात् गरमी पड़ने पर उस से सड़ांध निकलती रहती है।

(४) मकान के वास्ते भूमि लेते समय यह ध्यान रक्खें कि उसके समीप छप्पड़, आर्द्रखेत, और बड़े २ अस्तबल गोशालाएं या टट्टियां आदि न हों, उनके समीप की वायु खराब रहती है। स्पष्ट मतलब यह है कि दुर्गन्ध वाली वस्तुओं या स्थानों से मकान दूर ही बनाना चाहिए।

(५) मकान कई प्रकार के बनते हैं। ग्राम में लोग कच्चे मकान बनाते हैं। शहरों में अमीर लोग कोठियां बनाते हैं, और शहरों के भीतर पक्के मकान बनवाते हैं, उसमें उत्तम मकान कोठियां होती हैं, मकान के इर्द गिर्द फुलवाड़ी उस को बहुत ही उत्तम बना देती है। परन्तु हमारे अमीर इस में भी भूल कर देते हैं। वह कोठी के इर्द गिर्द बड़े २ वृक्ष लगा देते हैं, और चारों ओर से उसको ढांप देते हैं, जिससे आर्द्रता रहती है, और धूप भली भांति कोठी के भीतर नहीं जाती है। ऐसे लोग कोठियों में रह कर भी जब स्वस्थ नहीं रहते तो हैरान रहा करते हैं। उनको मालूम होना चाहिये कि वह नाम मात्र कोठी में रहते हैं। वास्तव में वह बस्ती से घिरे हुये हैं। कोठी के इर्द गिर्द वृक्ष उचित्त संख्या में होने चाहिएं। फुलवाड़ी, सब्ज़ी और घास से उसको सुन्दर बनाना चाहिए, और चारों ओर उस में द्वार रखने चाहिएं, ताकि वायु का गमनागमन खूब रहे। अस्तबल, गोशाला

पाखाना, नौकरगृह उचित स्थान में कोठी से दूर एक कोने में बनने चाहियें। प्रत्येक कमरा ऐसा होना चाहिए, कि उस में बैठ कर किसी न किसी जगह आकाश को देख सकें।

जो मकान ग्राम में लोग कच्चे बनवाते हैं वह प्रायः अच्छे नहीं होते हैं, क्योंकि बहुधा उनके भीतर वायु के गमनागमन का मार्ग नहीं होता है, दो तीन ओर से दूसरे मकानों से घिरे होते हैं, और एक ओर खुले होते हैं। यदि दूसरी ओर खुली भूमि भी हो तो वह रोशनदान आदि नहीं रखते हैं। छत्त पर एक मुग या मोघा रोशनदान तब होता है, जो वह कोठे पर गेहूं आदि गिराने के वास्ते छोटा सा रखते हैं। यह प्रायः बन्द रहता है, परन्तु उनका स्वास्थ्य इस वास्ते अच्छा रहता है कि वायु वहां खुली होती है। मकानों के आगे आंगन होते हैं, इर्द गिर्द ऊंचे २ मकान प्रकाश व वायु को नहीं रोकते हैं, और उनके काम बाहिर के होते हैं। अन्यथा गांव के मकान स्वास्थ्यदायक नहीं होते। शहरों के मकान यद्यपि पक्के बनते हैं परन्तु प्रायः वह भी एक ही ओर या अधिक से अधिक दो ओर से खुले होते हैं परन्तु उनके इर्द गिर्द बहुत ऊंचे २ मकान होते हैं। बाज़ मकान वालों को तो धूप लगती ही नहीं है, इस वास्ते शहरों के यह मकान जब कि उनके सामने गन्दी मोरियां भी रात दिन बहती हैं बड़े निकृष्ट होते हैं।

(६) गृह निर्माण के नियमों पर बहुत सी पुस्तकें लिखी गई हैं। विलायत में तो बहुत बड़ी २ पुस्तकें मिलती हैं। वे लोग रौशनदानों और खिड़कियों के विषय पर ही ग्रन्थ निर्माण कर डालते हैं। हम ने जो संकेत बतलाये हैं यदि उस पर पूर्ण रूपेण ध्यान दिया जाय तो गृह स्वास्थदायक बन सकते हैं। एक ही शब्द में उसका यह तात्पर्य है कि मकान हवादार होना चाहिये। हर तरफ़ से वायु सुगमता पूर्वक प्रवेश कर सके और इच्छानुकूल जब चाहें उसे बंद भी कर सकें। दुर्गन्ध से भली भांति सुरक्षित हो।

प्रत्येक गृह में भोजनालय तथा स्नानालय का होना आवश्यक है, और शहरों में पाखाना भी आवश्यक है।

भोजनालय ऐसे स्थान पर होना चाहिये कि जहां से धूम्र बाहर निकल जाये और दूसरे कमरों को खराब न करे, और उसके भीतर का पानी, कूड़ा, कर्कट भी दूसरे कमरों में से न ले जाना पड़े बल्कि उसी से बाहर चला जावे। भोजनालयों (रसोई खाना) में धुवां बाहर निकालने वाली चिमनियां होनी चाहियें। स्नानालय (गुस्लखाना) ऐसे स्थान पर होना चाहिये कि उसकी सील दूसरे कमरों में न पहुंचे और पानी इत्यादि तत्काल ही बाहर चला जाये, हर समय आर्द्रता (नमी) न रहे।

पाखाना बिल्कुल पृथक एक स्थान पर बनवाना चाहिये कि उसकी दुर्गन्ध मकान के किसी अन्य कमरे में न आवे और न इस प्रकार गंदा रहे कि उसके समीप से जाना कठिन हो जाय।

असबाब रखने के लिये एक पृथक कमरा रखना चाहिये। सोने के कमरे में अधिक असबाब भरा रहने का मतलब यह है कि उस कमरे को हम उतना छोटा कर देते हैं। जितना भाग हवा से भरा रहना चाहिये था वह असबाब से भर जाता है।

शयनालय (सोने का कमरा) को बहुत हवदार रखना चाहिये। रोशनदान इस में अवश्य होने चाहियें, ताकि यदि किसी कारण वश दरवाज़े बंद भी करने पड़ें तो रोशनदान बराबर खुले रहें। खिड़कियों पर लोहे की सीखें (छड़) लगवानी चाहियें। चाहे कितना भी जाड़ा हो सोने के कमरे का कोई न कोई दरवाज़ा या खिड़की अवश्य खुली रखनी चाहिये। जो लोग खुली हवा में रहते हैं वह बहुत से रोगों से सुरक्षित रहते हैं। सर्दियों में जो लोग हवा से डरते हैं, बंद कमरे में अग्नि प्रज्वलित कर अपने को गरम रखते हैं, प्रायः वही लोग निमोनिया, प्रतिश्याय, खांसी इत्यादि रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं। संकीर्ण स्थान की दुर्गन्धयुक्त वायु में सांस लेते रहने से उनकी शक्तियां क्षीण हो जाती हैं और थोड़ी भी अनियमता उपस्थित हो जाने पर वह रोग ग्रस्त हो जाते हैं। यदि एक बार अचानक कहीं सर्दी लग जावे तो झट वे इसके शिकार बन जाते हैं। स्मरण रहे कि सर्दी लग जाना भिन्न बात है। कितने बेचारे दीनहीन वस्त्राभाव से सर्दी में ठिठुरते रहते हैं परन्तु उनको सर्दी लगती

नहीं है, अर्थात् शीत के प्रकोप से उन पर निमोनिया, नज़ला, प्रतिश्याय आदि रोगों का आक्रमण नहीं होता है। परन्तु एक अमीर मनुष्य जिसको शीत सहन का अभ्यास नहीं है, यदि वह एक बार गर्म कमरे से बाहर जाता है तो निमोनिया आदि किसी रोग का शिकार अवश्य ही बन जाता है। कोई मनुष्य जो खुली हवा में रहने का अभ्यासी है जो व्यायाम और सैर नियमानुकुल करता रहता है वह बाहर सर्दी में रहते हुये भी शीतजनित रोगों में सुगमता से ग्रस्त नहीं होता, परन्तु खुली वायु से भय खाने वाले केवल थोड़ी अनियमता से इन रोगों के चुंगल में फंस जाते हैं। जो लोग सदैव अपने सोने के कमरे को हवादार रखते हैं, उसकी खिड़कियों, रोशन दानों को खुला रखते हैं, मुंह ओढ़ने बिछौने में लपेट कर नहीं सोते, उनका स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

मकान बनाने वालों को सोने के कमरे का विशेष ध्यान रखना चाहिये। परमेश्वर ने जिसे धन धान्य पूरित तथा एश्वर्य सम्पन्न बनाया है, वह सोने के कमरे, खाने के कमरे, बैठने के कमरे शृंगार के कमरे, स्त्री तथा पुरुष के कमरे, सब पृथक २ रखते हैं, परन्तु प्रत्येक की अवस्था ऐसी नहीं होती है। उनको चाहिये कि एक कमरा इस प्रकार का अवश्य रक्खें जिस में आवश्यकता पड़ने पर बैठ भी सकें और सोया भी करें। इस में अधिक सामान (असबाव) नहीं रखना चाहिये।

घरों की सफ़ाई

कुछ लोग सुंदर घरों को बनवा कर भी उत्तम वायु प्राप्त नहीं कर सकते हैं। उनका धन उनको उत्तम मकान बनाने के योग्य तो बनाता है, परन्तु उनकी बुद्धि उसकी सफ़ाई नहीं करा सकती है। बाज़ गरीब छोटे घर वालों के घर ऐसे स्वच्छ होते हैं कि चित्त प्रसन्न हो जाता है तो बड़े घरों से क्या लाभ है? कई कमरे वर्षों साफ़ नहीं होते हैं। अमीर घरों में मकानों की सफ़ाई अधिक कठिन हो जाती है। अलंकृत कमरों में पर्दे, चित्र, चटाई, दरियां, ग़लीचे, चादरें, शीशे, मेज़, कुर्सियां इत्यादि इतना अधिक सामान होता है कि सब सामान को निकाल कर साफ़ करने के वास्ते अधिक समय

की आवश्यकता होती है। फल यह होता है कि साल में एक बार भी शायद ही किसी घर में पूरी सफ़ाई का अवसर मिलता है। ऐसे फ़र्शों के नीचे बीसियों जानदार उत्पन्न हो जाते हैं। यद्यपि वाह्य रूप अत्यन्त चित्ताकर्षक होता है तथापि आन्तरिक अवस्था उस की स्वास्थ्यदायक नहीं होती। यदि सफ़ाई का समुचित प्रबन्ध न हो तो ऐसी दशा में सामान का अधिक न होना ही उत्तम है। प्रबन्धाभाव में फ़र्श के ऊपर कुछ न डालना ही उत्तम है जिससे वह सुगमता से स्वच्छ किया जा सके और धोया जा सके। अलमारियों, संदूक व अन्य सामानों के नीचे और पीछे जो उठाये नहीं जाते हैं बहुत कूड़ा करकट जमा रहता है। उनको महीना में एक बार उठवा कर सब कमरा साफ़ कर देना चाहिये। जिस कमरे में बैठते हैं या रात को सोते हैं उन कमरों की पूरी सफ़ाई बहुत आवश्यक है।

घर की गर्द

क्या वस्तु है ? वास्तव में यह कई वस्तुओं का समवाय होता है। आग का धुआं, खाद्य वस्तुओं के परमाणु, उन पर ईंधन की राख, बाहर से उड़ती हुई गर्द, कपड़ों और पावों के साथ आई हुई बाहर की गर्द, आदि २ वस्तुऐं उसके अन्दर मिली हुई होती हैं। घरों में जो इस प्रकार के परमाणु उड़ते रहते हैं वह धीरे २ दीवारों पर, व अन्य वस्तुओं पर जमा होते रहते हैं। यह सूक्ष्म गर्द जब तक कि प्रतिदिन साफ़ न की जावे दूर नहीं हो सकती है और दैनिक सफ़ाई उस दशा में सम्भव है कि दीवारों और फ़र्श की दशा ऐसी कि झाड़ू और बुर्श इत्यादि से सुगमता से साफ़ कर सकें और जहां आवश्यकता हो कर सकें। संक्षेप में घर को उत्तर दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक और ऊपर से नीचे तक तक स्वच्छ रखना प्रत्येक मनुष्य के लिये परम आवश्यक है और इसके लिये कुछ व्यय करने में आनाकानी नहीं चाहिये। अब एक बात और आवश्यक है कि मकान स्वच्छ भी हो परन्तु एक कमरे में उचित संख्या से अधिक मनुष्य न बैठें और न सोयें क्योंकि यह भी स्वास्थ्य को भंग करता है।

आप पहले पढ़ चुके हैं कि साधरण वायु के भीतर सहस्त्र वर्ग फ़ीट में ०·४ कारबानिक एसिडगैस रहती है। विद्वानों का कथन है कि जब इसकी मात्रा ०. ४ तक हो जावे तो उसके पश्चात् उसकी दुर्गन्ध भी मालूम होने लगती है और स्वास्थ्य के लिये भी हानिकारक है। यह अनुमान किया गया है कि यदि १० फुट लम्बे १० फुट चौड़े, और १० फुट ऊंचे अर्थात् १ हज़ार वर्ग फुट के आकार वाले कमरे में एक युवा मनुष्य को बन्द कर दिया जाय और उस में वायु के आने का कोई मार्ग न हो तो १ घंटे के भीतर उस कमरे के अन्दर ०. १० कारबानिक ऐसिड गैस हो जावेगी, अर्थात् एक घंटे के अन्दर वह ०. ६ फुट प्रति सहस्त्र फुट में कारबानिक एसिड बढ़ गई; अर्थात् २० मिनट के भीतर वह ०. २ बढ़ जाती जिसके पश्चात् बहुत ख़राब समझा जाता है। इसका मतलब यह है कि प्रति २० मिनट के पश्चात् १ हज़ार वर्ग फुट नई हवा एक जवान के लिये आवश्यक है अर्थात् ३ हज़ार वर्ग फुट प्रति घंटा।

यह भी अन्दाज़ा किया गया है कि अगर वह आदमी काम करता हो तो उस ड्योढ़ी में ४५०० वर्ग फ़ीट और यदि अधिक ज़ोर से काम करे, तो दुगनी बल्कि तिगुनी अर्थात् ९ हज़ार वर्ग फ़ीट वायु की प्रति घंटा आवश्यकता होती है। इसके साथ ही यदि उस कमरे में गैस न हो या चिराग़ या मोमबत्ती, या तेल का लैम्प जलता हो या सर्दियों का मौसम हो और अग्नि अंगीठी में जलती हो तो और भी अधिक वायु आवश्यक है। इन सब बातों को ध्यान में रखने से यह भली भांति समझ में आता है कि कितना आवश्यक है कि मकान चारों ओर से खुले हों। इनके अन्दर रोशनदान व खिड़कियां काफ़ी हों, उनको प्रायः खुला रक्खा जावे जिससे वायु आती रहे और नई हवा उसके अन्दर शामिल होकर घंटे भर में सब नई हो जाया करे। अन्दाज़ा लगाया गया है कि कम से कम ३०० वर्ग फ़ीट जगह एक कमरे में एक आदमी के लिये होनी चाहिये। यदि काम करने वाले कमरे हैं तो और भी अधिक हों। इस प्रकार यदि १ कमरा जो २५ फ़ीट लम्बा, १२ फ़ीट चौड़ा, और १२ फ़ीट ऊंचा हो, अर्थात् ३६०० वर्ग फ़ीट हो, उसके अन्दर असबाब न पड़ा हो, दरवाज़े व खिड़कियां खुले हों तो १२ आदमी सोने चाहियें। कोई ख़राबी नहीं होती है।

एक बात और स्मरण रहे कि १२ फ़ीट से कमरा ऊंचा हो तो वह ऊंचाई हिसाब में नहीं आती है। जैसे यदि कमरा २५ फ़ीट लम्बा, १२ फ़ीट चौड़ा और २४ फ़ीट ऊंचा हो, उसके अन्दर २४ आदमी नहीं आ सकते। प्रत्येक मनुष्य को करीब २५ वर्ग फ़ीट ज़मीन आनी चाहिये।

स्कूलों में जहां एक २ कमरे में बहुत लड़के पढ़ते हैं दरवाज़े बड़े २ हों, और उनको खुला भी रक्खा जाये, तब ८ वर्ग फीट जगह प्रति बालक के वास्ते होनी चाहिये। परन्तु बाज़ स्कूलों में इसकी पाबंदी नहीं होती है। पांधों के पास लड़के शहरों में पढ़ते हैं। वहां अजीब हालत देखी है। या तो वे लड़के मोरियों पर बैठे रहते है या यदि उनको कमरे में बैठना पड़े तो सब लड़के एक छोटे से कमरे में जिसमें हवा के आने जाने का भी रस्ता नहीं होता, घेर कर बैठते हैं। देश के हितैशियों को अवश्य इधर ध्यान देना चाहिये। देश के बच्चे इस प्रकार बहुत कमज़ोर हो जाते हैं। लेक्चर हाल जो बनाये जायें तो उनमें ऐसा प्रबन्ध रखना चाहिये कि अन्दर की हवा गर्म होकर ऊपर रोशनदानों और खिड़कियों के द्वारा बखूबी निकल जाये। ब्रैडला हाल लाहौर में जब कभी इतने मनुष्य एकत्रित हो जावें कि तमाम हाल खचाखच भर जायें और चारों तरफ़ को रोशनदान खोलने का पूरा प्रबन्ध न हो तो कई आदमी बेहोश हुये हम ने देखे हैं। बम्बई के एक बहुत बड़े सिनेमा थियेटर में अखिल भारतवर्षीय आयुर्वेदिक एण्ड युनानी तिब्बी कान्फ्रेन्स हुई। उसमें हम ने देखा कि रोशनदानों के पास बिजली के पंखे उलटे लगाये हुये थे जो कि अन्दर की वायु को बाहर फेंकते रहते थे। इस प्रकार लोगों के सांसों की गर्म हवा ऊपर जाकर फौरन बाहर निकल जाती और चारों ओर से ताज़ी हवा दरवाज़े से दाख़िल होती रहती। यह प्रबन्ध बहुत ही उत्तम है।

लेकचर हाल इत्यादि में यद्यपि कभी २ थोड़े समय के लिये जाना पड़ता है फिर भी जितना ही उत्तम प्रबन्ध हो सके उतना ही अच्छा है। परन्तु उन लोगों की क्या दशा होगी जो कि एक छोटी सी तीन तरफ़ से बंद एक तरफ़ दरवाज़ा वाली

कोठरी में, उस एक दरवाज़े को भी बंद करके तादाद से ज़्यादा मनुष्य सोते हैं। शोक है कि उनके ख्याल में भी यह नहीं आता कि उनकी उदासी का कारण क्या है ? यदि वे लोग जो खुले हवादार पृथक २ मकानों को छोड़कर शहरों के अन्दर तंग व अंधेरे मकान बनाने शुरू कर देते हैं, खुली वायु की क़दर व मूल्य को समझें। उस मनुष्य ने संसार में कितना दुःख फैलाया है जिसने ज़मीन की कीमत लेनी शुरू की। हिन्दुस्तान में प्राचीन काल से यह प्रथा थी कि किसी मनुष्य को जितनी ज़मीन की आवश्यकता होती थी, राजा उसको देता था। अब भी रियासतों में ५) ७) रुपये भेंट देने पर ज़मीन मिलती है। ज़मीन का मालिक राजा होता था। सब लोग उससे लेते थे। उनकी ही वह हो जाती थी, यद्यपि उसको बेच न सकते थे। अब एक २ ज़मीन एक साल के अन्दर ही कई २ हाथों में बिककर इतनी क़ीमती हो जाती है कि उमदा खुले हवादार मकान बनाना खाला जी का घर नहीं है। कई जगह तो अशर्फ़ियां बिछाकर भी ज़मीन हाथ नहीं लगती है। विलायत वालों के पास तो इतना रुपया है कि वह ज़मीन पर ही हज़ारों लाखों खर्च कर सकते हैं। वह दो चार छतें ज़मीन के नीचे ले जाते हैं और बीसों छत्तें आसमान में ले जाते हैं और फिर मशीन इत्यादि लगाकर उनको हवादार रखने का भी प्रबन्ध कर सकते हैं; परन्तु ग़रीब हिन्दुस्तान के पास इतना रुपया कहां है। हिन्दुस्तानियों को शीघ्र इस रास्ता से क़दम पीछे हटाना चाहिये, जिस पर वह चल रहे हैं अन्यथा बहुत कष्ट उठायेंगे।

इतना पढ़ने के पश्चात पाठक भली भांति समझ गये होंगे कि मकान किस प्रकार के बनाने चाहियें और मकानों के दरवाज़े खिड़कियां खुली रख कर उनको सदैव स्वास्थ्य दायक रखना चाहिये। बीमारों के कमरे छोटे और बंद रखने की प्रथा दिखाई देती है। वस्तुतः बीमारों को अधिक वायु की आवश्यकता है। उसके भीतर से बहुत मवाद निकलते हैं और हवा को शीघ्र ही खराब करते हैं। इस लिये इनके वास्ते कम से कम दुगुनी जगह होनी चाहिये। केवल इतना ध्यान चाहिये कि उनको वायु का झोंका लगे, हवा

उनके शरीर को ज़ोर से स्पर्श न करें। इस बात को दृष्टि में रख कर मुनासिब दरवाज़े खिड़कियां अवश्य रखनी चाहियें। खुली वायु रोगी की रोग को रोकने की शक्ति को बढ़ा देती है और खराब हवा उसको बहुत कम कर देती है। रोगी के कमरे में अधिक आदमी बैठे नहीं रहने चाहियें। उसको जितनी अधिक शुद्ध और ताज़ी हवा सांस लेने को मिले उतनी ही जल्दी वह स्वास्थ्य लाभ करेगा।

अपने घर की सफ़ाई भली भांती उसी समय हो सकती है जब कि मकान के इर्द गिर्द भी गंदगी, कूड़ा करकट गलने सड़ने न दिया जावे। पड़ोसियों को भी सफ़ाई की शिक्षा दो, क्योंकि उसमें तुम्हारा ही लाभ है। रहने के मकान के भीतर या उसके साथ ही पशु आदि बांधने से हवा खराब रहती है। यदि किसी को लाचारी हो तो हवा की ताज़गी का उसको बहुत अधिक ध्यान रखना चाहिये, जिससे हवा ताज़ी हमेशा आती रहे। सोने के कमरे में अग्नि या लैम्प जला रखने से हवा खराब होती रहती है। इस लिये यदि कमरा बहुत बड़ा न हो या उनके धुआं आदि को निकलने का विशेष प्रबन्ध न हो तो उनको ख्याल नहीं रखना चाहिये। मतलब यह है कि सदैव खुली व ताज़ी हवा की इच्छा रक्खो और उसको प्राप्त करने के वास्ते जो कुछ तुम्हें अपनी दशा के अनुसार समझ आती जावे उन कर अमल करो।

उत्तम वायु प्राप्त करने का अभ्यास।

कुछ लोग ऐसी आदत डाल लेते हैं कि बड़े २ कमरों में रहते हुये भी उनको खुली ताज़ी हवा का मिलना कठिन हो जाता है। इस प्रकार की आदतों का वर्णन पहले किसी न किसी रूप में आ ही चुका है तो भी खुली वायु प्राप्त करने के सिलसिले में भी उनका संक्षेप वर्णन समुचित ही है।

सोते समय मुंह ढांपना।

कुछ लोग सोते समय मुंह ओढ़ने के भीतर ढांप कर सोते हैं। यह आदत बहुत खराब है। उससे सांस से निकली हुई हवा बहुत देर तक अन्दर रहती है और पूरी साफ़ हवा ऐसे मनुष्यों को

कभी नहीं मिल सकती है। चाहे वह जंगल में ही क्यों न सोया हो। चाहे जितनी अधिक सर्दी हो, तुम्हें अपना शिर भी ढांपना पड़ जावे परन्तु मुंह हमेशा खुला रक्खो। उत्तम तो यह है कि गले के ऊपर तमाम चेहरा व सिर नंगा रखने की आदत डाली जावे इससे बहुत लाभ है। शिर को ठण्डा और पांव को गर्म रखना स्वास्थ्य का सर्वोत्तम नियम है। यदि किसी अधिक ठण्डे स्थान पर यह नियम न पालन हो सके तब भी चेहरा व नाक को खुला रखना अत्यन्त आवश्यक है।

छाती को भींचना।

तमाम ऐसी आदतें जिनसे छाती भीतर को दबी रहे, खुली हवा की प्राप्ति के विरुद्ध हैं। इस प्रकार से शरीर के भीतर कम मात्रा में वायु प्रवेश करती है और खुली जगह होने पर भी उसका मतलब यह हो जाता है कि गोया हम एक तंग कमरे में हैं। कुछ लोग इस प्रकार सिकुड़ कर सोते हैं कि उनकी छाती न पूरे तौर पर खुल सकती है न उसमें पूरी हवा जा सकती है। कुछ लोग लिखते पढ़ते समय या वैसे ही ऐसे झुक कर बैठते हैं कि उनकी छाती भिची रहती है। हवा पूरी अन्दर जाती नहीं और उनको बार २ ज़रा ऊंचे होकर गहरे सांस लेने पड़ते हैं। मनुष्य को चलने और बैठने में ऐसी आदत डालनी चाहिये जिससे उसका धड़ सीधा रहे कंधे पीछे को फेंके हुये हों, छाती उभरी हुई, प्राकृतिक सीधापन मालूम हो. गर्व से भरा हुआ बेहूदापन न हो। इस प्रकार की आदत स्वास्थ्य के लिये अत्यन्य आवश्यक है। निर्बल स्वास्थ्य वाले बराबर इस पर अमल करना आरंभ करें। एक मास के भीतर ही उनके स्वास्थ्य में विलक्षण परिवर्त्तन व उन्नति दृष्टिगोचर होने लगेगी।

"स्वास्थ्य सम्बन्धी चित्रों" में हमने ऐसे चित्र दिये हैं जिनसे बैठने, लिखने, पढ़ने, काम करने आदि के ग़लतव ठीक तरीक़े प्रगट होते हैं। यह पुस्तकाकार छपी है। जिसका मूल्य =)॥ आना है। जो महाशय चाहें मंगका कर देखें।

गहरी सांस-की आदत बहुत ही स्वास्थ्य दायक आदत है। विलायत में अब किताबों पर किताबें सांस के विषय में लिखी

जा रही हैं। हिन्दुओं के प्राणायाम की विधि की प्रशंसा करते नहीं थकते हैं और कहते हैं कि इस से बढ़ कर कोइ दूसरा व्यायाम स्वास्थ्य को बढ़ाने वाला नहीं है। इस कारण से गहरी सांस की ही आदत डालना स्वास्थ्य के उत्तम मार्ग को प्राप्त कर लेना है। विलायत में कई लोगों ने ऐसे यंत्र तैयार किये हैं जिनको नाक में लगाने से खाह मखाह गहरी सांस लेने की ही आदत होती है। असल में बात यह है कि खुली वायु काफ़ी परिमाण में हमारे अन्दर जावे। यही हमारे स्वास्थ्य का रहस्य है और गहरी सांस की आदत उसको पूरा करती है। सांस इस क़दर लेनी चाहिये कि हवा से कुल फेफड़े भली भांति भर जायें और फिर निकालना भी उसको अच्छी तरह चाहिये। जब अच्छी तरह से निकाली जावेगी तो सांस और भी अच्छी तरह से अन्दर जायेगी। इस से खून साफ़ रहेगा और कई प्रकार के जर्मज़ (कीटाणु) इसी उत्तम वायु से मर जावेंगे। गहरी सांस लेने वाले को क्षयी ऐसा रोग ही न होगा। इस प्रकार की आदत डालने के लिये प्रथम यत्न तो करना पड़ेगा किन्तु जो ऐसी आदत बना लेंगे उनके स्वास्थ्य में संतोषजनक उन्नति होगी।

तंग वस्त्र

उपरोक्त बातों से यह प्रकट होता है कि ऐसे वस्त्र को धारण करना जो छाती को दबाये रहे बहुत हानिकारक है। विलायती ढंग की पेटियां कारसेट इत्यादि फैशन के लिये तो अवश्य अच्छे हैं परन्तु स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक हैं और विलायत का कोई समझदार डाक्टर नहीं जो इनकी बुराई न करता हो। विस्तार पूर्वक इस पर वस्त्र के बयान में विचार करेंगे।

नासिका द्वारा सांस लेना

उत्तम वायु प्राप्त करने के लिये नासिका द्वारा सांस लेना अत्यन्त आवश्यक है। ईश्वर ने नाक को इसी मतलब के लिये बनाया है। हमको मुख हमेशा बंद रखना चाहिये और केवल उसी वक्त खोलना चाहिये जब कि हम बातचीत करते हों या खाना खाते हों। रात को सोते समय भी नाक के द्वारा सांस लेने की आदत डालनी चाहिये। जो लोग रात को सांस लेते समय मुंह खोल लेते

हैं (और यह बात प्रत्येक मनुष्य प्रति समय अपने साथी या घर वालों से मालूम कर सकता है) उनको समझ लेना चाहिये कि या तो उनके फेफड़े कमज़ोर हैं या उनकी नाक नज़ला व कफ़ से बंद है अथवा चर्बी (मेद) उनके अन्दर बढ़ी हुई है जो नासिका मार्ग पर ही दबाव डालकर उस को बंद कर देती है। ऐसे मनुष्यों को व्यायाम आदि द्वारा अपने शरीर को ठीक करना चाहिये और इस आदत को दूर करने के वास्ते मुंह को ज़बर्दस्ती भी बंद करना चाहिये, यथा सोते समय होठों पर चिपकने वाला कपड़ा अर्थात् पलास्टर लगा सकते हैं।

नासिका द्वारा सांस लेने से बहुत लाभ होते हैं। ईश्वर ने नासिका के अन्दर ऐसा प्रबन्ध कर रक्खा है कि उस से भीतर जाने वाली वायु शीतोष्ण (मातदिल) हो जाती है यथा सर्दियों में जब कि वायु ठण्डी होती है या जब हम भ्रमण आदि के लिये बाहर निकलते हैं उस समय मुह द्वारा सांस लेने वालों को ही प्रायः सर्दी लगती है। नासिका द्वारा जाने वाली वायु एक लम्बा रास्ता तय करके शरीर की उष्णता से गर्म होकर उतनी ठण्डी नहीं रहती है। नासिका के आरंभ में ईश्वर ने बाल उगाये हैं। ग़लती से लोग उनको निकालते रहते हैं। वास्तव में यह छलनी का काम देते हैं। हवा के अन्दर गर्द गुबार का भाग इन बालों के कारण बाहर रह जाता है और हवा छन कर अन्दर आती है। नाक में शुरू से हवा की नालियां आरंभ होने तक एक भीतरी तह लुआबदार झिल्ली की है। इस से थोड़ा २ रस निकलता है जिस को नाक की बलग़म कहते हैं। बहुत परमाणु इस में फंस जाते हैं और हवा भी रुक जाती है। यदि अधिक तीव्र कोई वस्तु हो तो भी रुक जाती है। लेकिन इस झिल्ली को अधिक साफ़ रखने की आवश्यकता होती है। बहुत सा माद्दा नाक का इस के गिर्द जमा हो जाता है और नाक साफ़ करने से उस के सहित निकल जाता है। कभी यह ज्यादा खराशदार होने से नज़ला या जुकाम भी शुरु हो जाता है। इस रतूबत की वजह से हवा कुछ तर होकर भी फेफड़ों में जाती है अर्थात् वह अपनी खुश्की की वजह से अधिक खुरदरी नहीं रहती है।

नासिका द्वारा सांस लेने से प्रायः कई प्रकार के जीवाणु उस में ही पकड़े जाते हैं और मुंह द्वारा सांस लेने से वे सभी फेफड़ों या आमाशय में पहुंच सकते हैं।

मुंह द्वारा सांस लेने से हवा बहुत जल्दी फेफड़ों में भरती है जिस से गहरी सांस लेने की आदत नहीं होती है और फेफड़े कमज़ोर रहते हैं।

सुस्त जीवन व्यतीत करना।

मनुष्य के अवयव को देखने से ही पता लगता है कि वह सुस्त जीवन व्यतीत करने के लिये नहीं बनाया गया है। हाथ, पांव, नाक, कान सब प्रगट करते हैं कि उसको काम पर लगा रहना चाहिये। रात ईश्वर ने आराम के लिये बनाई है ताकि उस काम करने वाली मशीन से जो पुर्ज़ा घिसे वह फिर वैसे का वैसा हो जावे। आन्तरिक अवयव जैसे हृदय, आमाशय इत्यादि मनुष्य के सो जाने पर भी काम करते रहते हैं। बाज़ लोगों का मस्तिष्क काम करता रहता है। पूर्ण आराम के लिये मस्तिष्क का आराम आवश्यकीय है इसलिये जिनके दिमाग़ सोने में आराम में न हों, नींद गाढ़ी न आवे, उनको "मीठी निद्रा" नामी हमारी बनाई हुई पुस्तक मंगवा कर अवश्य पढ़ना चाहिये। तात्पर्य यह है कि मनुष्य की शारीरिक रचना द्वारा प्रगट होता है कि मनुष्य काम करने के लिये बनाया गया है और उसको सुस्त जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिये। अमीर लोग जो सब सामान रहने पर भी बीमार रहते हैं उसका कारण यही है कि वे सुस्त जीवन व्यतीत करते हैं। उनके अवयव दृढ़ नहीं रहते। उनमें सहन शक्ति नहीं रहती है और अंग निर्बल हो जाते हैं। फेफड़ों के अन्दर न तो हवा पूर्ण तरह से भर सकती है न उनके अन्दर इतनी शक्ति रहती है कि रक्त को धकेल कर शरीर के कोने २ में पहुंचावे, जिससे शरीर निर्बल होता है।

सावधानी से जीवन व्यतीत करने वालों को दिन में कई मौक़े खुली वायु प्राप्त करने और फेफड़ों को पूर्ण रीति से भरने के लिये मिल जाते हैं परन्तु सुस्त जीवन व्यतीत करने वाले बाहर बहुत कम निकलते हैं। गाड़ी और मोटरों पर आवें भी तो शरीर सुस्त

होने के कारण वायु से पूर्ण लाभ नहीं उठाते हैं। ये लोग बाहर जाकर भी कोई व्यायाम इत्यादि नहीं करते हैं। सुखमय जीवन व्यतीत करने वालों को देख कर गरीब आहें लिया करते हैं कि ये लोग स्वर्ग भोग रहे हैं। उनको खुश होना चाहिये कि उनके पास धन नहीं लेकिन स्वास्थ्य तो है। किसी मनुष्य का कथन है कि धन गया तो कुछ न गया, यदि स्वास्थ्य गया कुछ गया, और यदि चाल चलन गया तो सब कुछ गया। किसी बादशाह की कहानी प्रसिद्ध है कि एक दिन बादशाह की सवारी एक गांव के पास से गुज़र रही थी। खेत में देखा कि एक जाट बड़े २ ढेलों पर भी ऐसा बेखबर सोया हुआ है कि बादशाह आगे कई सवार व घोड़े गाड़ियां गुज़र जाने पर भी अभी तक सोया पड़ा है। बादशाह बहुत हैरान हुआ और वज़ीर से उसका कारण पूछा। वज़ीर ने उत्तर दिया कि आदत की बात है। बादशाह को इससे संतोष न हुआ। वज़ीर ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की कि एक वर्ष के भीतर २ संतोष जनक उत्तर दूंगा लेकिन शर्त यह है कि हुज़ूर इस मनुष्य को अपने यहां नौकर रख लें और मेरे सुपुर्द कर दें। उसी समय जाट को जगाया गया और बादशाह ने हुक्म दिया कि तुम को ५ सौ रुपये मासिक पर नौकर रक्खा गया है और तुम्हें हर प्रकार से आराम पहुंचाने का प्रबंध वज़ीर साहब करेंगे। तुम कल दर्बार में हाज़िर हो। जाट बहुत हैरान हुआ परन्तु भीतर से बहुत प्रसन्न था कि पांच सौ रुपये मासिक की नौकरी मिल गई। वज़ीर ने उसके हर प्रकार के आराम का बन्दोबस्त किया और कह दिया कि तुम से किसी प्रकार का काम नहीं लिया जावेगा, साल के बाद देखा जावेगा। अभी तुम बादशाहों में रहने योग्य तो हो जाओ। अब सारा दिन उसका सुख चैन से कटने लगा। उस के सोने के लिये वज़ीर साहब ऐसे उत्तम २ व नर्म गदेल बनवाया करते कि जो बादशाहों को भी न मिलते होंगे। बैठने की चौकियां, लेटने के फ़र्श सब नर्म थे।

दरबार में हाज़िरी देने के लिये जाया करते तो उस को बैठने के लिये बहुत ही कोमल गदेले दिये जाते। एक साल के अन्दर उसका ऐसा सुखमय जीवन होगया कि न वह तन्दुरुस्ती रही न वह ताक़त बल्कि शरीर बिल्कुल सुकुमार हो गया। एक दिन बादशाह

के दरबार में जब नर्म बिस्तर पर आकर बैठे तो कुछ ऊंघ सी आ गई। बादशाह ने पूछा कि तुम क्यों सो रहे हो? उत्तर दिया कि वज़ीर साहिब ने जो सोने का गदेला कल नया बनाकर भेजा है न मालूम उसमें रुई की जगह कपास है अथवा ईंट पत्थर पड़े हैं कि नींद नहीं आई। बादशाह ने वज़ीर की ओर ज़रा गौर से देखा। वज़ीर ने आज्ञा दी उनके पास वह गदेला उठा लाओ। जब गदेला आया बादशाह को खोल कर दिखलाया। उस में अत्यन्त उत्तम रूई पड़ी हुई थी केवल दो बिनौले उस में वज़ीर साहब ने रख दिये थे। वज़ीर ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की "यह वही जाट है जो खेत के ढेलों में सोया हुआ था, आज उसको दो बिनौलों पर नींद नहीं आती है। मैंने श्रीमान् से प्रार्थना की थी कि यह आदत की बात है, उसी का मैंने प्रमाण दिया है। अब श्रीमान् इस जाट को अपने असली काम पर वापिस कर दें, कुछ काल के पश्चात् फिर उसकी वही दशा हो सकती है"। बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ और वज़ीर को इनाम अकराम दिया और जाट को भी पुरस्कार देकर हमेशा के लिये विदा किया।

धन्य हैं वे अमीर जो धन दौलत रखते हुये भी अपना जीवन सुस्त और नाजुक नहीं बनाते बल्कि उस को सावधानी से मज़बूत बनाते हैं और हर समय परिश्रम पूर्वक जीवन व्यतीत करके हमेशा पूरी वायु प्राप्त करते हैं और खुली हवा से पूरा आनन्द उठाते हैं।

अधिक खाना और बार २ खाना।

उदर को भोजन से बहुत भर लेने से शरीर के अन्दर वायु भली भांति प्रवेश नहीं कर सकती। कहते हैं एक बार अफ़लातून से किसी ने पूछा था कि भोजन कितना करना चाहिये तो उसने बतलाया था कि वे लोग जो गले तक अपने पेट को भर लेते हैं वे सुख का जीवन व्यतीत नहीं कर सक्ते हैं। मनुष्य को चाहिये कि अपने मेदा को आधे आहार से भरे, एक चौथाई पानी डाले, और एक चौथाई वायु के लिये खाली रक्खे।

पाठकों को यह मालूम है कि हमारे सांस का पेट के ऊपर के पर्दे (Diaphragm) से बहुत संबंध है। वही सांस को चलाता है। सांस लेते समय छाती के साथ पेट भी बराबर हिलता रहता है। आप सांस को अच्छी तरह बाहर निकालें तो अवश्य ही पेट को आपको भीतर की ओर खींचना पड़ेगा। जो कोई पेट को ज्यादा अंदर कर सक्ता है वही सांस को भली प्रकार फेफड़ों से बाहर निकाल सक्ता है फिर सांस को यदि भली प्रकार भरा जाये तो पेट भी बराबर फूलता है।

यदि पेट भरा हो, न उसे सुगमता से अंदर कर सकें, न उसे और अधिक फुला सकें, तो फल यह होता है कि सांस न पूरे तौर पर हम बाहर निकाल सक्ते हैं, न उसे पूरे तौर पर भर सक्ते हैं। फल यह होता है कि ऊपर २ से सांस लेते रहते हैं। काफ़ी हवा अन्दर नहीं जाती है। इस वास्ते खुली वायु में रहने पर भी जब पूरी मात्रा में उसको हम नहीं ले सक्ते तो हमारे शरीर गन्दे रहते हैं। साधारणतया यही कहते हैं कि इतना खा गया हूं कि अब सांस भी खुल कर नहीं आता है। सुनते हैं कि जब मथुरा में जाकर लोग मथुरा के चौबों को भोजन खिलाते हैं तो वह बहुत अधिक खा जाते हैं। जब वे खूब पेट भर खा चुकते हैं तो खिलाने वाले महाशय कहते हैं कि अब एक २ पेड़ा या लड्डू जो खाये उसको एक २ पैसा साथ दूंगा। फिर आना २ देने लगते हैं। अन्त में अपनी हैसियत के अनुसार वे दो चार रुपये तक भी नौबत पहुंचाते हैं, तो कहते हैं कि उनका पेट इतना भर जाता है कि गर्दन झुका कर अपने पांवकी ओर नहीं देख सक्ते हैं। घर तक पहुंचना कठिन हो जाता है। उस समय देखने वाले कहते हैं कि उनका सांस ऐसा मालूम होता है जैसे किसी मरणासन्न मनुष्य का होता है। शोक है कि ये लोग पैसे को अपने जीवन व तन्दुरुस्ती से बढ़कर जानते हैं। सब या अधिकांश व्यायाम करने वाले होते हैं। हमने मथुरा में स्थान २ पर उनकी व्यायामशालायें देखीं। यह व्यायाम ही है जो उनकी रक्षा करता है। यदि यह आदत भी न पड़ती तो न जाने उन बेचारों की क्या दशा होती।

मानसिक कार्य करने वालों को तो भूलकर भी इस प्रकार की ग़लती न करनी चाहिये। उनके वास्ते इतना भोजन खाकर अपने शरीर को तन्दुरुस्त रखना कठिन कार्य है।

दूसरी बड़ी भूल बार २ खाने की है। इसका मतलब यह है कि पेट हर समय भरा रहता है और आज़ादी से पूरा सांस कभी नहीं आता है। दिन में दो तीन बार खाने वाले लोगों के लिये आवश्यक था कि आज़ादी से पूरा सांस लें और अपने शरीर को दूषित मवाद से पवित्र व शुद्ध करें।

अधिक खाने और बार २ खाने से बड़ी हानियां होती हैं। उनका यहां वर्णन नहीं कर रहे हैं। उन हानियों के अतिरिक्त एक हानि यह है कि सांस पूरा नहीं लिया जा सक्ता है। शरीर को खुली वायु नहीं मिलती है। इस लिये जो लोग खुली वायु की और पूरी वायु की क़द्र करते हैं, उनको चाहिये कि भोजन भूख रख कर खाया करें और जब तक एक भोजन भली भांति हज़म न हो दूसरा खाना न खावें।

तंग पेटियां पहिनने की भी एक हानि यह है कि पेट का पर्दा पूरा काम नहीं करता है। सांस के साथ पेट पूरे तौर पर अन्दर बाहर नहीं हो सक्ता है। इस वास्ते पूरी वायु शरीर को नहीं मिलती है। विलायत की स्त्रियों की तो सांस के साथ पेट की गति बहुत कम होती है। बल्कि यूं कहिये कि बिल्कुल मारी जाती है। स्त्री पुरुष किसी को भी अपने पेट को बहुत कस कर नहीं बांधना चाहिये।

एक ही बिछौने पर दो आदमी का सोना

यह आदत बाज़ विवाहित जोड़े डाल लेते हैं, जो कि न केवल शुद्ध वायु की प्राप्ति में बाधक है, प्रत्युत और भी इस से बहुत सी हानियां हैं। दो मनुष्यों का इकट्ठा सोना वैद्यक सिद्धान्तों के सर्वथा विरुद्ध है। लंदन के अख़बार लैनसेट की राय है कि दो मनुष्यों के इकट्ठा सोने में उत्तम शारीरिक व मानसिक बल रखने वाले मनुष्यों को अधिक हानि पहुंचती है। जिनके मज्जा तंतुओं में अधिक शक्ति है और जिसका निज़ाम अस्बी अधिक रोशन और बलवान है वह यदि दूसरे मनुष्य के साथ सोता है तो उसके अन्दर से विद्युत्शक्ति

निकल कर दूसरे के अन्दर दाखिल होती रहती है और दूसरा मनुष्य आनन्ददायक निद्रा हासिल करता है। प्रातः काल तरो ताज़ा उठता है, किन्तु उस मनुष्य को सारी रात गाढ़ी निद्रा नहीं आती है और वह थका मांदा सा आता है। स्त्री पुरुष का एक विस्तरा रखने में तो पुरुष निर्बल भी हो जाता है और बल दिन प्रति दिन घटता जाता है।

डाक्टरों की भी राय है कि बच्चों को माता के साथ नहीं सुलाना चाहिये। साल के बाद से यही कोई कोशिश आरम्भ करना चाहिये कि या तो एक ही चारपाई पर बच्चा अलग सोया रहे या एक अलग चारपाई साथ रखी जाय। छोटी अवस्था में बच्चे को माता के शरीर की गर्मी इत्यादि कई वस्तुओं की आवश्यकता है इस वास्ते माता के साथ सोना उत्तम है, किन्तु ज्यों २ बड़ा होगा त्यों २ यह लाभ कम होता जायगा और अंत में इकट्ठा सोना हानिकारक हो जाता है।

लैंसेट में लिखा था कि दो मनुष्यों के साथ सोने में थोड़ी अवस्था वाले प्रायः अधिक हानि पहुंचती है। इस विचार से बच्चे का सोना भी ठीक नहीं ठहरता है।

और डाक्टरों ने और हानियां भी लिखी हैं किन्तु हमारा अभिप्राय यहां अधिकतर यह बतलाने का है कि इकट्ठा सोने से हवा साफ़ नहीं मिलती है। यदि दोनों में मुंह ढांपने की बुरी आदत है तब तो हानि बहुत अधिक है। वैसे ही जब मुंह आमने सामने हों तो एक के अन्दर से निकली गंदी हवा दूसरे के अन्दर सीधे जाती है, जिससे हानि प्रतीत होती है। अतः चाहिये कि इस प्रकार की आदत न डाली जावे। सोते समय जितनी तुम खुली हवा लोगे, उतना ही तरो ताज़ा हो जाओगे और बहुत काम करते हुये भी तन्दरुस्त रहोगे। यही कारण है कि हम ने इतना बल इस विषय पर दिया है। मकान खुला हो, दर्वाज़े, खिड़कियां काफ़ी खुली हों मुंह नाक नंगा हो, लैम्प या आग न जलती हों, यदि जलती भी हो तो उससे उत्पन्न होने वाली खराब हवा के निकलने का भली भांति प्रवन्ध हो, समीप पशु आदि न बंधे हों, असबाब कमरे में बहुत अधिक न भरा हो, दुर्गन्धित वस्तुओं के ढेर कहीं समीप न हों।

जल का वर्णन ।

वायु का विस्तृत वर्णन करने के पश्चात् अब पानी का वर्णन किया जाता है। जीवन की आवश्यकताओं में वायु से घट कर पानी ही है। भोजन के बिना मनुष्य महीनों जीवित रह सक्ता है। अमेरिका के एक डाक्टर ने उपवास चिकित्सा निकाली है। वह ६६ दिन तक भूखा रह चुका है। ४० दिन का उपवास तो उसने कई रोगियों को कराया है। २-३ सप्ताह का उपवास तो कई लोग कर बैठते हैं। आयर्लैन्ड का नेता मेक्सविनी ६६ दिन तक जेल में उपवास करने के बाद मरा। हिन्दुस्तान के एक जैन ने कई दिन तक जेल में उपवास किया, किन्तु पानी के बिना इतने दिन कोई जीवित नहीं रह सकता। जिस प्रकार वायु के बिना सिवाय योगियों के अन्य व्यक्तियों का काम चलना चंद मिनट भी असम्भव है इसी प्रकार पानी के बिना भी काम चलना बहुत कठिन है। ऐसे २ योगी मौजूद हैं जो एक बार वायु को भीतर खींच कर कई दिन तक फिर सांस लेने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते। महाराजा रनजीतसिंह के समय में एक योगी को एक मास तक पृथ्वी में गाड़ दिया गया और फिर निकाला गया तो चंद घंटे बाद वह उठ कर खड़ा हुआ। भूख प्यास पर तो बहुत शीघ्र योगीयों को विजय प्राप्त होती है। सुश्रुत में तो भूख प्यास को बीमारी लिखा है। जो भी मनुष्य को कष्टदायक बात है वह बीमारी है। धन्वन्तरी महाराज कहते हैं कि भूख प्यास के दुख से बचना भी मनुष्य का कर्त्तव्य है और यह तब ही हो सक्ता है जब इस पर इतना अधिकार हो कि यदि भोजन इत्यादि कई दिन तक न मिले तो शरीर को कोई कष्ट अनुभव न हो। प्यास को बुझाने के लिये योगी अपनी जिह्वा की निचली तार को काट कर उसको बढ़ा लेते हैं और घुमा कर गले में उसको देते हैं। मस्तिष्क से हमेशा एक रस निकलता है जिसकी एक बूंद भी अमृत है और जो सीधा एक नाड़ी द्वारा आंतों में जा गिरता है और पाख़ाना के अन्दर सम्मिलित होता है और इस प्रकार नष्ट हो जाता है। इसी अमृत के कारण मल जब खेतों इत्यादि में डाला जाता है उनको खूब तर व ताज़ा कर देता है। यदि केवल

मल ही मल होता तो उन वस्तुओं में यह शक्ति कभी न आती। योगी लोग इस अमृत को जिह्वा पर रोक लेते हैं और उसको पीकर उनके मस्तिष्क में स्फूर्ति उत्पन्न हो जाती है। हृदय की कली खिल जाती है। प्यास बुझ जाती है। ऐसे ही प्यास के समय प्राणायाम भी करते हैं।

पानी तमाम जानदारों के जीवन के वास्ते विशेष कर पशुओं के वास्ते अत्यन्त आवश्यक है। अनुमान करो कि आप का वज़न का ३/४ भाग पानी है। अनुमान करो कि आप का वज़न ६० सेर हो तो उसमें ४५ सेर केवल पानी होगा, और शेष १५ सेर ठोस पदार्थ हैं। यह स्पष्ट प्रगट है कि पानी की सारे शरीर को बहुत अधिक आवश्यकता है। बाज़ आदमी कहते हैं कि हम कई २ दिन पानी सर्दियों में नहीं पीते हैं। उनको मालूम होना चाहिये कि पानी ख़ालिस वह न पीते हों किन्तु पानी अन्य साधनों से उनके अन्दर अवश्य पर्याप्त परिमाण में जाता है। वे दूध चाय पीते हैं, वे दालें, व तरकारियां खाते हैं, वे कई प्रकार के फल इत्यादि खाते हैं, उन सब में पानी का बड़ा भारी भाग होता है। शरीर का कोई भाग बिना पानी के अपना कार्य नहीं कर सकता। जब हम खाते हैं तो भोजन जब तक पतला न होगा तब तक अन्दर नहीं जा सक्ता। यदि भोजन ठोस भी हो तो भी मुंह के अन्दर से लार निकल कर यह कार्य करता है। हज़म होते समय आमाशय से रस निकलता है। अंत्रियों में जा कर वहां से कई रस दाख़िल होते हैं, तब यह बाहर जाने योग्य होता है। और शरीर में घूम कर तमाम शरीर को बल प्रदान करने के लिये इसको रुधिर में परिवर्तित होना चाहिये जिसमें बड़ा भाग पानी का है। नसें जिनमें रक्त भ्रमण करता है और जिनकी संख्या उपनिषद्कार योगियों ने ७२ करोड़ लिखी है बारीक हैं। एक बाल सी बारीक नसें तमाम शरीर पर ताने बाने की भांति फैली हुई शरीर का पालन पोषण कर रही हैं।

यदि रुधिर काफ़ी पतला न हो तो उन नाड़ियों से कैसे गुज़र सके जब कि ४० सेकन्ड के अन्दर रुधिर हृदय से चल कर सारे शरीर में घूम कर फिर वापस भी आ जाता है। जब ही शरीर

के अन्दर से पानी कम हो जावे व रुधिर में गाढ़ापन आ जावे तो शीघ्र प्यास लगती है। जल की आवश्यकता प्रतीत होती है क्योंकि उसके बिना रुधिर बारीक नालियों में सुगमता से दौरा नहीं लगा सक्ता है। गर्मी के बढ़ने से, किसी बीमारी से, शराब इत्यादि मादक वस्तुओं के सेवन से झूंठी प्यास भी लगती है। वह प्राकृतिक प्यास से भिन्न है। जब हम खूब काम करते हैं व्यायाम करते हैं तो सांस जल्दी २ आकर सांस द्वारा पानी खारिज होता है। ऐसे ही पसीना आकर रोम कूपों द्वारा पानी निकल जाता है। इसके बाद भी प्यास लगती है क्योंकि शरीर का पानी बहुत निकल गया है किन्तु चूंकि उस समय शरीर गर्म होता है इस लिये उस समय ठण्डा जल पीना वर्जित है। इस सभय प्यास को कुछ देर तक रोकना चाहिये या दूध इत्यादि पौष्टिक वस्तुयें खानी चाहियें जो प्यास को भी कम करें और गर्मी सर्दी भी न हो सके। अतः यह स्पष्ट प्रगट हो गया कि हमारे जीवन के लिये पानी अत्यन्त आवश्यक वस्तु है और उसकी हर समय आवश्यकता है। कोई प्राणधारी इसके बिना जीवित नहीं रह सक्ता। बनस्पतियों को भी अधिक पानी की आवश्यकता है। इसके बिना न वे उग सकती हैं न बढ़ सकती हैं न तरो ताज़ा रह सकती हैं।

पानी तमाम दुनिया को साफ़ रखता है। यदि पानी न होता तो न जाने दुनिया की क्या दशा होती। हम अपने शरीर को पानी से ही धोकर साफ़ करते हैं। हमारे कपड़े पानी से साफ होते हैं। घर के बर्तन आदि सब पानी से धोये जाते हैं। जानवर भी पानी से अपने शरीर को धोते हैं। कई पत्तियों को पानी में पर फड़काते देखा होगा। जानवर पानी में घुस कर अपने शरीर की मैल उतारते और ठण्डक पाते हैं। कई पशु पक्षी वर्षा में खड़े होकर अपने शरीर को धोते हैं। वर्षा से तमाम वृक्षों और बेल बूटों की मैल धोई जाती है। कुल ज़मीन भी इससे धुल कर साफ़ हो जाती है। ऐसी आवश्यक वस्तु को ईश्वर ने पैदा ही किस बहुतायत से किया है। दुनिया में ३ भाग जल और १ भाग थल है। पानी ही से अनाज पैदा होते हैं, पानी के कम होने से दुनिया में अकाल पड़ता है। उपनिषदों में लिखा है जल जीवन है, जल ब्रह्म है।

बनावट—वैज्ञानिक लोग बतलाते हैं कि पानी २ गैसों के मिलने से बनता है। एक का नाम आक्सीजन और दूसरे का नाम हाईड्रोजन है। यदि पानी में बिजली की तार डाल दें तो पानी से दोनों गैसें पृथक् कर ली जासकती हैं। स्कूलों में यह प्रयोग विज्ञान पढ़ने वाले विद्यार्थियों को सिखलाया जाता है। वैसे ही दोनों गैसों को एकत्र करके उनसे बिजली की रौ गुज़ारी जावे तो पानी बन सकता है। हाईड्रोजन सब से हल्की गैस है। यदि पानी से दो गैस पृथक करें तो हाईड्रोजन शरीर में आक्सीजन से दुगनी होगी, किन्तु वज़न में आक्सीजन से ⅛ हिस्सा होगी।

आक्सीजन गैस जैसा कि वायु के वर्णन में उल्लेख हुआ, जीवनप्रद वायु है। इसमें नाइट्रोजन इत्यादि उसकी तेज़ी को कम करने के वास्ते है। हाईड्रोजन जलने वाली गैस है किन्तु जलने में मदद नहीं करती। यदि एक आक्सीजन से भरे हुये वर्तन में कोई जलती हुई बत्ती ले जावें तो वहां वह खूब रोशन होगी, किन्तु यदि उसे हाईड्रोजन के वर्तन में ले जावें तो हाईड्रोजन को तो फ़ौरन आग लग जायगी और उस वर्त्तन में ज़र्दी मायल नीला सा प्रकाश होगा, किन्तु बत्ती धुल जावेगी।

अमिश्रित या मिश्रित—बाज़ लोग कहते हैं कि जब कि पानी गैसों का योग है तब वैद्यक में इसको तत्वों में क्यों गिना है और यूनानी इसे अरकान में कैसे शुमार करते हैं। विदित हो कि आकाश अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी ५ तत्त्व वैद्यक में मानते हैं। इनसे सब दुनिया बनी है। हर एक चीज़ की बनावट में यही शामिल हैं किन्तु साथ ही वह मानते हैं कि आकाश वस्तुतः एक रूढ़िक चीज़ है। अग्नि इस के बाद आकाश व आग के तत्वों से बनी है। आग व हवा के ख़ास तत्त्वों से हवा, हवा पानी के खास तत्त्व से मिल कर पानी और पानी वा मिट्टी के ख़ास तत्त्व से मिल कर मिट्टी बनी है। यदि दुनिया के अन्दर सूक्ष्म रुप में ये तत्त्व न पाये जाते तो चीज़ें पैदा न हो सकतीं। पानी से मुराद वह सूक्ष्म वस्तु है जिस में पानी बनने की क्षमता मौजूद है। इस से मालूम होता है कि शायद हाईड्रोजन ही सूक्ष्म तत्व माना जाता हो। हाइड्रोजन का अर्थ अंग्रेज़ी में भी पानी

बनाने वाले के हैं। पानी और मिट्टी के पार्थिव तत्वों के मिलने से पृथ्वी बनती है। प्रत्येक वस्तु के न्यूनाधिक परिमाण में ये तत्त्व पाये जाते हैं॥

सुश्रुत में इसका वर्णन हुआ है। ख़याल रहे कि यूनानी आकाश को शामिल न करके ४ तत्व मानते हैं। वास्तव में आकाश इतना सूक्ष्म है कि इसका बयान छूट जावे तो आश्चर्य नहीं किन्तु आकाश के बिना न दुनिया की कोई चीज़ है न कोई बन सकती है। यह सब में है और सब इस में है। ईश्वर की व्यापकता के लिये कोई और उदाहरण नहीं मिल सकता तो आकाश की तरह बल्कि आकाश से भी सूक्ष्म ऐसा शास्त्र पुकारते हैं। आकाश का गुण शब्द है, जिसके बिना आवाज़ हो नहीं सकती है। आकाश के आगे ही शेष उत्पत्ति है। आकाश आग में है, आकाश और वायु अग्नि में हैं, आकाश, अग्नि और वायु पानी में हैं और यह चारों पृथ्वी में शामिल हैं। इस से पता लगता है कि पानी का तत्व अमिश्रित ही है। पानी यौगिक है और पांच तत्वों से दुनियां की सब चीज़ें बनती हैं, यह बिल्कुल सत्य है।

नर्म व सख्त पानी

अच्छे जल की पहिचान यह है कि वह बिल्कुल साफ़ व सुथरा हो। ज़रा भी उसमें गदलापन मालूम न हो। इस में किसी प्रकार की सुगन्धि न हो, स्वाद मधुर हो। यहां मधुर का अर्थ मीठा नहीं है बल्कि मज़ेदार है।

पानी में बहुत सी ऐसी चीज़ें मिल जाती हैं जो कि सुगमता से दिखलाई नहीं देतीं, यथा, पानी में चूना या नमक कई प्रकार के ऐसे घुल मिल जाते हैं कि जल्दी उनका पता ही नहीं लगता॥

नर्म पानी उसको कहते हैं जिसमें कोई चूना आदि न मिला हो, और सख्त पानी उसको कहते हैं, जिसमें चूना मिला हुआ हो। वर्षा का जल जो बहुत ऊंचाई से लिया गया हो वह असली नर्म पानी होता है। ऐसे ही पानी का अर्क़ खींच लें तो साफ़ पानी प्राप्त हो जाता है। यह नर्म पानी है। इसमें साबुन घोल दें तो घुल जाता है, किन्तु यदि चूना मिश्रित् पानी में साबुन घोलें तो दही की तरह

फिटकियां सी बन जाती हैं। यही पहचान नर्म व सख्त पानी की है। जिस जगह आप पानी पीते हैं, यदि मालूम करना चाहें कि यह पानी नर्म है या सख्त है तो उसमें साबुन घोल दें, यदि जल्दी घुल जाय और पानी से मिलता जावे तब वह नर्म है, यदि दही सा बनता जावे और देर में घुले तो सख्त है। थोड़ी सी मैल मिट्टी व गर्द आदि यदि पानी में मिल जावें तब भी उसकी स्वच्छता में अन्तर नहीं पड़ता है। इसका पहिचानना बहुत कठिन है। कभी इस थोड़ी सी खराबी के साथ कई रोगों के कीटाणु मिल जाते हैं। उनको आंख से कोई नहीं देख सकता है केवल सावधानी की आवश्यकता होती है। विशूचिका आदि रोगों के कीटाणु किसी प्रकार थोड़ा भी पीने वाले पानी में मिल जायं तो वह खराब होगया हमें सावधानी इस बात की करनी चाहिये कि जब इस प्रकार की बीमारी आस पास हो, तो हम अपने पीने के पानी की खूब रक्षा करें॥

यदि मलादिक अधिक मिल जावें या मैल मिट्टी ज्यादा हो, तो पानी स्वच्छ भी नहीं रहता है और उसमें से दुर्गन्धि भी आने लगती है। इसका रंग गंदला हो जाता है, इसके अन्दर कई परमाणु दिखाई देते हैं, वह पीने के योग्य नहीं॥

ठहरे हुये पानी में भी दुर्गन्धि आने लगती है। वह भी पीने योग्य नहीं। इन में कई प्रकार के जीवाणु उत्पन्न हो जाते हैं॥

पानी बेरंग है। उसमें कोई भी रंग हो तो मिलावट ज़ाहिर होती है, पानी का मज़ा पहचानना बहुत कठिन है। बहुधा यह देखा गया है कि एक ही प्रकार का पानी पीने वालों की ज़बान पर ऐसा चढ़ जाता है कि उनको वही अच्छा मालूम होता है। कभी २ किसी जगह के लोग ऐसे पानी को बड़े मज़े से पीते रहते हैं जिसको दूसरा जाकर पी भी नहीं सकता। चन्द दिन उस पानी को छुड़ाकर फिर असल साफ़ पानी पिलाया जावे तो वह मज़ेदार और स्वादिष्ट ही मालूम होता है और अब वह पानी पीने से पता लगता है कि जिसको मीठा समझते थे वह मज़ेदार नहीं है। मीठा पानी वह है जिसमें किसी प्रकार की खारी या नमकीन पन इत्यादि न हो।

मीठा से मतलब यह नहीं कि उसमें शक्कर की भांति मिठास हो बल्कि पीने में स्वादिष्ट हो। अच्छे पानी पियो तो स्वयं ही पता लग जायगा।

सच पूछो तो असली शुद्ध पानी हमको नसीब ही नहीं होता है। न्यूनाधिक खराबी इस में मौजूद होती है। किसी जगह से लिया जावे, किन्तु मिट्टी के कण, बनस्पतियों के बारीक टुकड़े इत्यादि जो पानी के भीतर ही पैदा हो जाते हैं। पानी के अन्दर पड़े हुये बानस्पतिक पदार्थ के गले हुये भाग बारीक तौर पर उसमें शामिल होते हैं, यहां तक कि वर्षा का स्वच्छ जल भी जब ज़मीन के पास की हवा से गुज़रता है तो हवा में उड़ने वाली गर्द तथा अन्य वस्तुऐं उसमें मिल जाती हैं। कुछ समय तक वर्षा होजाने पर जब गर्द इत्यादि बैठ जावे तब ऊंचाई से वर्षा का जल शुद्ध स्वच्छ व नर्म होता है। बर्तन स्वच्छ रक्खे जायें। तब वर्षा का जल शुद्ध स्वच्छ व नर्म होता है। बाक़ी किसी तरह भी लिया जावे कुछ न कुछ खराबी होती है।

जल के विषय में हमारी यूनानी व वैद्यक पुस्तकों में जो कुछ लिखा है उसी को संग्रह करके पाठकों के लाभार्थ नीचे उद्धृत किया जाता है :—

जल पांच तत्वों में से एक तत्व है जो वायु के बाद तमाम चीज़ों से अधिक हमारे तथा समस्त प्राणियों के लिये आवश्यक है। यदि पानी कुछ दिन और कतिपय दशाओं में चन्द घंटे न मिले तो मनुष्य और पशु सब तड़प २ कर मर जायें। फलतः गर्म देशों में ग्रीष्म ऋतु में ऐसी दुर्घटनायें होती रहती हैं। प्राचीन तत्वज्ञों ने जीवन की आवश्यकताओं में वायु के बाद पानी का दूसरा दर्जा रखा है। यद्यपि सामान्य रूप से देखने से यह ठीक मालूम होता है। किन्तु यदि ध्यान पूर्वक देखा जाय तो जीवन की आवश्यकताओं में हवा और पानी समकक्ष (बराबर दर्जे वाले) पाये जायेंगे, अतः इसके विषय में दिल्ली के प्रसिद्ध हकीम मौ० अजमल खां साहिब अपने एक लेख में लिखते हैं कि अधिक ध्यान पूर्वक देखने से मालूम होगा कि जिस प्रकार प्रकट में हमें हर समय हवा

की आवश्यकता रहती है, पानी या वह चीज़ें जिसमें पानी के अंश होते हैं, यद्यपि रात दिन में चार या दस पांच बार पी जाती हो, किन्तु मनुष्य का शरीर उससे हर समय काम लेता रहता है और हर समय उसका महुताज है। यदि कोई समय ऐसा अनुमान करो कि शरीर में जल के अंश न हों तो उस समय विश्वास कर लो कि जीना असंभव हो जाएगा और सब बातों को छोड़कर केवल रक्त प्रवाह को देखो कि वह जल की तरलता के कारण है। यदि रुधिर में जल के अंश न रह जायें तो रक्त प्रवाह शीघ्र बंद हो जाय और मनुष्य गतिशून्य हो जाय। इस लिये मेरा ख़याल यह है कि मनुष्य को जितनी हवा की अवश्यकता होती है उतनी ही उसे पानी की भी आवश्यकता है। यह बात भिन्न है कि वह पानी को रात दिन में चंद बार पीता है और हवा सांस द्वारा हर समय लेता रहता है। चंद बार पानी इस्तेमाल करने को केवल यह समझना चाहिये कि हम उसे आमाशय और अंतड़ियों में एकत्रित करते जाते हैं और हमारी नसें हमेशा थोड़ा २ भाग उस ढेर में से लेती रहती हैं। मैं इस बात को स्पष्ट करने के लिए बहुत ही सरल उदाहरण देता हूं कि खेती या वृक्ष भी देखने में हवा के अधिक महुताज मालूम होते हैं क्योंकि चन्द घन्टे भी यदि उससे हवा रोकी जाय तो मुर्झा कर बेकार हो जाते हैं किन्तु उन्हें सारी फ़सल में पानी केवल चन्द बार दिया जाता है। ऊपरी दशा तो उनकी यह है किन्तु जब गहरी दृष्टी डालेंगे तो मालूम हो जायेगा कि चन्द बार पानी देना ज़मीन को कितने समय तक नर्म रखता है और वृक्ष या खेती की जड़ें उसे ज़मीन से कब तक पानी चूसती रहती हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं उन्हीं बनस्पतियों में उसी पानी के अंश उनके जीवन क़ायम रखने के लिये यह बराबर मौजूद रहते हैं। यदि यह अनुमान करो कि किसी वृक्ष में अंश बिलकुल नहीं है तो साथ ही यह बात भी अनुमान करनी पड़ेगी कि उस वृक्ष का जीवन ही समाप्त हो गया।

इसके बाद जानना चाहिये कि हवा मनुष्य के फेफड़े में जाती है और वहां से दो भागों में विभक्त होती है। एक भाग जिस में वाष्पीय अंश होते हैं और जो मनुष्य जीवन के शत्रु हैं सांस

द्वारा बाहर आ जाता है, और दूसरा भाग जिस में शुद्ध और सूक्ष्म वायु होती है और जो जालीनूस के कथनानुसार जीवन का आधार है फेफड़े से हृदय में और वहां से सारे शरीर में जाती है और मनुष्य के जीवन की सहायक होती है ॥

इस संक्षिप्त वर्णन से यह बात ज्ञात हो गई कि वायु के उस सूक्ष्म भाग का जो नसों द्वारा तमाम शरीर में हर समय पहुंचा रहता है मनुष्य अपने जीवन के लिये मुहताज है। अब पानी पर विचार करो कि जब हम पानी का सेवन करते हैं तो वह आमाशय और अंत्रियों में जाता है और वहां से बारीक नसें उसे क्रमशः बड़ी नसों तक पहुंचाती हैं जहां वह रुधिर के साथ मिलकर उसमें प्रवाह व तरलता पैदा करता है या भोजन को अपने तरल होने के कारण सहायता देता हुआ उन नसों में पहुंचाता है। भोजन चाहे अपने रोम में रह या रुधिर बन जाय किन्तु यह इसका साथी रहता है। अब समझ सकते हो कि जल और वायु दोनों की आवश्यकता जीवन के लिये बराबर है या नहीं। मेरे विचार में तो भेद कोई नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार वायु के न होने से मनुष्य मर जाता है उसी प्रकार यदि शरीर में पानी न हो तो मर जायगा।

वायु के हर समय सांस द्वारा लेने और पानी को चंद बार पीने का कारण यह है कि वायु सूक्ष्म वस्तु है जो शरीर की आन्तरिक उष्णता से बहुत शीघ्र घुल जाती है और अधिक काल तक नहीं रहती, इस लिये मनुष्य उसे जल्दी २ लेकर उसकी कमी को पूरा करता रहता है। पानी वायु की अपेक्षा स्थूल है इस लिये वह केवल चंद ही बार पिया जाता है और शरीर की आन्तरिक उष्णता उसे इतनी जल्दी तहलील नहीं कर सकती जितना कि हवा को करती है। यही कारण है कि वह देर तक बाकी रहता है और आन्तरिक अवयव बराबर उससे अधिक समय तक काम लेते रहते हैं।

जल की प्रकृति

जल की प्रकृति सर्द तर है जिसकी दलील यह है कि पानी स्थूल होता है और स्थूलता सर्दी की द्योतक है। इस के अतिरिक्त

छूने से पानी ठण्डा होता है। पानी की सर्दी अत्यन्त तीक्ष्ण होती है और कोई तत्व इससे अधिक ठण्डा नहीं मालूम होता और तरलता का प्रमाण जल का सुगमता से भिन्न २ रूपों को धारण करना है। और यह भी विदित रहे कि पानी स्वभावतः स्थूल है किन्तु सूर्य की गर्मी की भांति बहुत साधारण कारण से भी स्थूलता दूर होकर तरलता आ जाती है, इसी कारण से पानी को तर कहते हैं। अर्थात जिस प्रकार तर उस वस्तु को कहते हैं जो सुगमता से रूप के परिवर्त्तन को स्वीकार करे इसी प्रकार तर उस को भी कहते हैं जो यद्यपि स्वभाव से स्थूल हो, किन्तु सामान्य कारण से उसके रूप में परिवर्त्तन हो जाय। अतः इस विचार से हवा पहली युक्ति से तर है, और पानी दूसरी युक्ति से।

पानी का घर

स्वभावतः पानी का घर पृथ्वी के ऊपर और हवा के नीचे होता है बल्कि यूनानी हकीमों का ख़याल है कि आरंभ में ऐसा ही था किन्तु जब ईश्वर ने सृष्टि रचनी चाही तो ऐसे कारण उत्पन्न कर दिये जिनके कारण पृथ्वी के एक बड़े भाग से गहराई पैदा हो गई तो पानी सिमट कर एक जगह जमा हो गया (जो समुद्र के नाम से पुकारा जाता है) और कुछ पृथ्वी में शोषण हो गया और पृथ्वी के उस भाग में जहां से पानी अलग हुआ वहां वायु का संचार होगया।

यद्यपि बाज़ आदमी इसको युक्तिहीन और उपहासास्पद समझेंगे किन्तु उक्त किंवदन्ती का ठीक होना संभव है, क्योंकि समय के परिवर्त्तन इससे अधिक प्रभाव रखते हैं और जब कि बाज़ ऊंचे पर्वतों पर घोंघे और अन्य प्रकार के जलचर जीवों को देख कर उन पहाड़ों की चोटियों को किसी काल में समुद्र के तल के बराबर बताया जाता है तो उस समय उक्त बातों का समर्थन होता है जो यूनानी हकीमों ने लिखी हैं।

जल के गुण

जैसा कि पहिले वर्णन हो चुका पानी की प्रकृति सर्दतर है, यद्यपि उस में अग्नि या हवा की गर्मी की वजह से अस्थायी गर्मी

आ जाती है। पानी तरी पैदा करता है और जो पानी गर्मी या खुश्की पैदा करते हैं यह उन चीज़ों के कारण होता है जो पृथ्वी की वस्तुयें उसके साथ मिली हुई हैं। अतः पानी अपनी सर्दी व तरी के कारण गर्मी या खुश्की को दूर करता है और हर एक जानदार अपनी प्यास उसी से बुझाता है। प्यास चूंके अधिक तर गर्मी व खुश्की के कारण होती है इस लिये पानी से बढ़ कर कोई प्राकृतिक वस्तु उसको दूर करने के लिये उपयुक्त नहीं है और चूंकि पानी तरल होता है इस लिये बहुत शीघ्र मुंह से आमाशय तक और फिर अंत्रियों से होता हुआ तमाम शरीर तक पहुंच जाता है। यदि इसके स्थान पर कोई और सर्द तर वस्तु बर्ती जाय और उसमें तरलता न हो तो कभी उससे प्यास शांत नहीं होगी जो पानी पीने से होती है।

(२) जल भोजन को द्रव और पतला बनाता है क्योंकि भोजन भारी होता है। पानी उसमें मिलकर उसको इस योग्य बना देता है कि वह पतला होकर बारीक २ नसों में पहुंच जाये। इसके अतिरिक्त रक्त परिभ्रमण भी उस समय तक मनुष्य के शरीर में नहीं हो सकता जब तक उसमें पानी के अंश न मिले हों॥

(३) पानी के मिलने से भोजन भली भांति पकता है। बिना पानी मिले भोजन का पकना असंभव है। जिस प्रकार एक हांडी में यदि बिना पानी डाले भोजन पकाया जाय तो वह जल जायेगा इसी प्रकार यदि आमाशय में खुश्क भोजन जाय और उसमें पानी न मिला हो तो वह भी जल जायगा और हानि के अतिरिक्त उससे कोई लाभ नहीं पहुंचेगा॥

(४) भोजन में पानी मिला लेने से एक यह भी लाभ होता है कि वह भोजन को जलने से बचाते हैं क्योंकि भोजन पकाने के लिये संसार में एक ही उष्णता यंत्र है जिसका यह काम है कि गीली वस्तुओं को खुश्क करदे और खुश्क चीज़ों को जला दे। इसलिये यदि जठराग्नि को खुश्क भोजन दिया जायगा तो फल यह होगा कि वह उसे जला देगी। इस लिये भोजन को जलने से बचाने के लिये पानी ऐसी तरल वस्तु की बड़ी आवश्यकता है, और हम उसी

की सहायता से भोजन हज़म करते हैं और वे किसी प्रकार जलने नहीं पाते ॥

(५) पानी एक तरल वस्तु है इस लिये अपनी तरलता की वजह से भोजन को संकीर्ण मार्गों में से भी ले जाता है। यद्यपि यह गुण उसमें दूसरे दर्जे के गुणों में वर्णन किया जा चुका है किन्तु यहां केवल भोजन को पतले करने का ही गुण वर्णन किया गया है, और यहां हमारा अभिप्राय यह है कि भोजन के साथ मिल कर उनको पतला करके तंग रास्तों में पहुंचाता है ॥

(६) जिस प्रकार बड़े २ नगरों में नालियों का मैल पानी से साफ़ किया करते हैं उसी प्रकार हमारे शरीर की नालियां भी अपने मैल को उसी पानी के द्वारा साफ़ किया करती हैं। मल, मूत्र, पसीना, नाक के मैल, कान का बहना, शरीर का मैल इन सब चीज़ों में पानी के अंश स्पष्ट रूप से दिखाई नहीं देते। मल में जल के भाग अधिक होते हैं। यदि वह बिल्कुल खुश्क हो जाय तो उसका बाहर निकलना कठिन हो जाय, बल्कि बाज़ दशाओं में बिना औषधि के निकलना दुष्कर हो जाता है। यदि उस में से पानी का अंश निकाला जाय तो उसमें से बहुत ही साफ़ व सुथरा पानी निकलता है जिसमें किसी प्रकार की दुर्गन्धि नहीं होती और उसका स्वाद भी शुद्ध जल का सा होता है। इसी प्रकार तुम नाक के मैलों और कान से बहने वाली आर्द्रताओं और शरीर से निकलने वाले मैल को समझो। उनमें से हर एक चीज़ में पानी का भाग काफ़ी होता है। इसी वजह से वे जल द्वारा शरीर से बाहर आते हैं। यह लाभ हम जल की तरलता के कारण ही प्राप्त करते हैं।

(७) पानी अवयवों को तर रखता है। यह उसकी तरी की वजह से होता है। चलने फिरने और अधिक घूमने घामने से शरीर की आर्द्रतायें कम हो जाती हैं और उनसे कई प्रकार की बीमारियां पैदा हो जाती हैं। पानी अपनी तरलता के कारण मनुष्य को उन बीमारियों से सुरक्षित रखता है, यदि उसका सदुपयोग किया जाय।

शुद्ध जल

शुद्ध जल वह होता है जिसमें किसी दूसरी खनिज वस्तु का कोई अंश सम्मिलित न हो। यदि मिट्टी के महीन कण उसके साथ मिले हुये हों तो ऐसा पानी भी शुद्ध ही कहा जायगा, क्योंकि मिट्टी के कण से रहित पानी का मिलना असंभव है। जिस प्रकार मिट्टी के कणों के मिलने से पानी अशुद्ध नहीं कहा जा सकता इसी प्रकार पानी में वानस्पतिक अंश मिलने की वजह से इसको अशुद्ध नहीं कह सकते॥

शुद्ध जल के गुण

(१) बेरंग हो, (२) निर्मल हो, (३) शुद्ध हो, (४) उसमें किसी प्रकार की दुर्गन्धि न हो, (५) स्वाद मीठा हो, (६) हलका हो, (७) खराब होने वाला न हो, (८) गर्म सर्द ऋतु के अनुकूल शीघ्र गर्म या सर्द हो जाय, (९) आमाशय से शीघ्र उतर जाय, (१०) जो चीज़ उसमें पकाई जाय उसको जल्द गला दे, (११) यदि इस में से अधिक भाग शराब में मिलाया जाय तो उसके नशे में कोई अन्तर न पड़े॥

यदि पानी दूर से बहकर आये, और जिस ज़मीन पर बहता हो वह भी अच्छी हो (पथरीली ज़मीन पर बहता हो तो बहुत ही अच्छा है) तेज़ चलता हो, गहरा हो, पूर्व की ओर बहता हो तो और भी अच्छा है। यह तमाम बातें जिस पानी में पाई जायें वह सब से उत्तम है। किन्तु यदि यही पानी खराब ज़मीन से बहता हो या ऐसी जगह से बहता हो जहां वृक्षों की पत्तियां जमा हो कर सड़ती हों या किसी शहर के नीचे से बहकर निकलता हो और नगर के खराब पानी, मैली चीज़ें, मुर्दे इत्यादि उसमें डाले जाते हों तो उसमें उतनी ही खराबी पैदा हो जायगी जितनी कि ये चीज़ें उसके साथ मिलेंगी। अधिकांश यूनानी हकीमों का यह मत है कि उक्त गुण "नील" नदी (जो कि मिश्र देशमें बहती है) पाये जाते हैं। नील के बाद दरिया जेहूं और उसके बाद

दरिया फ़रात का नम्बर है । हिन्दुस्थान में गंगा का पानी सब नदियों से उत्तम है ॥

उत्तम जल

यद्यपि पानी के गुण विस्तार से ऊपर वर्णन कर चुके हैं और उसी से हम उत्तम जल की परीक्षा कर सकते हैं, किन्तु इस में वैद्यों में मतभेद है । बाज़ कहते हैं कि झरनों का शुद्ध पानी उत्तम होता है जो उक्त गुणों के साथ निकल कर बहता हो । यद्यपि पानी को उन क़िस्मों में जो ज़मीन पर बहते या ज़मीन से कृत्रिम रूप से निकाले जाते हैं, झरनों का पानी उत्तम होता है, किन्तु इस से भी उत्तम वर्षा के जल को कह सकते हैं, जब तक कि इस में पृथ्वी की अन्य खराब वस्तुयें न मिल जायें । अतएव इसी उत्तमता के कारण हम प्रथम वर्षा के जल का वर्णन करते हैं फिर क्रमशः पानी की दूसरी क़िस्मों का वर्णन करेंगे ॥

वर्षा का जल

बुक़रात ने लिखा है कि तमाम जलों से हलका मीठा और साफ़ वर्षा का जल होता है क्योंकि वर्षा का जल वाष्प से होता है जो सूर्य की गरमी से पृथ्वी के जल से ऊपर चढ़ती है । दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि वर्षा का जल एक चुआया हुआ पानी है जो वाष्प बन कर बादल बनता और फिर गर्मी पाकर जल रूप में बरसता है । इसी कारण से वर्षा के जल को दूसरे जलों से श्रेष्ठ कहना उत्तम है, क्योंकि इसमें किसी अन्य वस्तु की मिलावट नहीं होती और बहुत ही सूक्ष्म होता है ।

पानी के सूक्ष्म परमाणु ही वाष्प बन कर उड़ते हैं । इस बात का प्रमाण यह है कि अधिकतर वाष्प समुद्र से ही बनती हैं और समुद्र का जल खारी होता है, क्योंकि उसमें नमकीन वस्तुयें मिली होती हैं, किन्तु वर्षा के जल में बिलकुल खारीपन नहीं होता । इस से सिद्ध होता है कि सूर्य की गर्मी से केवल वह वस्तुयें बनती हैं जो सूक्ष्म होती हैं और वह शुद्ध जल के अंश हैं । यही कारण है जिस आधार पर वर्षा के जल को सबसे श्रेष्ठ कहा

जाता है किन्तु वर्षा के जल में भी वही जल श्रेष्ठ होता है जो ग्रीष्म ऋतु में कड़क व गरज के साथ बरसे, क्योंकि ग्रीष्म ऋतु की गर्मी के कारण वाष्प बहुत ही सूक्ष्म उठती है और उनका जल भी बहुत सूक्ष्म बरसता है, किन्तु इसके विपरीत बाज़ विद्वानों का कथन है कि वर्षा का वह जल उत्तम होता है जो शरद् ऋतु में बरसता है, क्योंकि उस ऋतु में आकाश मंडल धूल व गर्द इत्यादि से भरा होता है, इस लिये जो पानी इस ऋतु में बरसेगा वह स्वभावतः उत्तम होगा, इसके उपरांत उष्णता के कम होने से वाष्प भी वही उड़ेगी जो बहुत ही सूक्ष्म होगी, लेकिन चाहे वर्षा जिस ऋतु में हो बादल के साथ गरज व कड़क का होना उत्तम है। इसके अतिरिक्त बाज़ ने यह भी लिखा है कि उस बादल का बरसा हुआ पानी बहुत ही उत्तम होता है जो श्वते धुयें के रंग का हो। उसकी चाल तेज़ और उसमें कड़क और गरज भी हो॥

हमारे विचार में वर्षा का सर्वोत्तम जल वह होता है जो कि पहिली वर्षा हो कर उससे कुछ समय बाद बरसे। इस प्रकार का जल बहुत ही साफ़ होगा और उसमें मिट्टी व धूल आदि की मिलावट न होगी क्योंकि जो धूल मिट्टी के अंश होते हैं वह पहली ही बार की वर्षा में पृथ्वी पर गिर चुके होते हैं और अकाश मंडल बिलकुल निर्मल होता है। यदि ऐसी दशा में वर्षा का जल पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही लिया जाये तो वह सब पानियों से बढ़ कर शुद्ध व पवित्र होगा। बाज़ चिकित्सकों ने वर्षा के जल को आवाज़ और छाती के लिये हानिकारक बतलाया है। किन्तु बिलकुल हानिकारक बतलाना ठीक नहीं है। अलबत्ता शेख ने उस वर्षा के जल को गले और छाती के वास्ते हानिकारक लिखा है जो तेज़ हवा के साथ अथवा तेज वायु के बहने के बाद बरसे। और कभी २ उससे ज्वर पैदा होने की संभावना भी लिखी है॥

वर्षा के जल के विषय में आयुर्वेदिक वर्णन

आयुर्वेद में वर्षा के जल को चार भागों में विभाजित किया है और वर्षा के जल को दिव्य जल कहा है। इसके जो चार भाग

किये हैं वह यह हैं :—

(१) धारा जल, (२) करका जल, (३) तुषार, (४) हिम वर्षा के जल। इन चारों क़िस्मों में धारा जल श्रेष्ठ बताया है। यह पानी साफ़ कपड़े से छान कर या पत्थर के साफ़ घड़े से लेकर या छत्त पर गिरा हुआ लेकर सोने चांदी, तांबा, कांच या मिट्टी के बर्त्तन में डाल रक्खें। इसको धारा जल कहते हैं जो वर्षा के जलों में श्रेष्ठ है ॥

धार जल के गुण

धारा जल त्रिदोष विकार (बात, पित्त, कफ) को दूर करता है। गुप्त रस है। हलका, सर्द, रसायन, पौष्टिक, और बुद्धिवर्धक है। इसको पीने से मूर्च्छा, उन्माद, दाह क्लान्ति और तृषा दूर होती है ॥

नोट—यह गुण शरद ऋतु की वर्षा के जल के हैं, वर्षा ऋतु के नहीं।

धारा जल के भेद

धारा जल गांग और सामुद्र दो प्रकार का होता है। गांग जल बहुत ही उत्तम होता है और उसकी बड़ी प्रशंसा लिखी है। अतः इसके विषय में लिखा है कि यह जल प्रत्येक दशा में सब के लिये उपयोगी है और यह प्रायः आश्विन मास में बरसता है और इसकी पहिचान यह है कि सोने या चांदी या मट्टी के बर्तन में चावल डालकर पानी से भर दें। यदि वह चावल न बिगड़े और न उनका रंग बदले तो समझ लो कि गंगजल है। यह गंगाजल त्रिदोष विकार को दूर करता है लेकिन यदि वे चावल सड़ जायें और उनका रंग भी बदल जाय तो उस पानी को सामुद्र जल (समुद्र का पानी) कहते हैं। यह सामुद्र जल त्रिदोश को दूषित करता है। यह पानी खारी, नमकीन, वीर्य, दृष्टि और शक्ति को घटाने वाला है, दुर्गन्धित, दोषकारक, तेज़ और सब कामों में हानिकारक है। किन्तु आश्विन मास के सामुद्र जल के गुण न्यूनाधिक, गंगाजल के समान हैं, क्योंकि इस मास में अगस्त्य ऋषि (जो कि

एक तारा होता है) के उदय होने से सब पानी साफ़, स्वादिष्ट, वृष्य, विष रहित, और शोधन करने वाले होते हैं। इसके अतिरिक्त वर्षा ऋतु में आकाश में विषधर सर्प (कीटाणु व धूल मिट्टी आदि) रहते हैं जिनके विषैले प्रभाव से आकाश जल भी विषैला हो जाता है। किन्तु आश्विन मास में वे विषैले नहीं होते। जो अपनी २ ऋतु को छोड़ कर दूसरी ऋतुओं में बरसता है वह सब आदमियों के लिये हानिकारक है, त्रिदोष को दूषित करता है॥

धारा जल के उक्त दो भेदों के अतिरिक्त वह बरसने के समय के विचार से चार प्रकार का होता है:—

(१) रात्रि की वर्षा का जल (२) दिन की वर्षा का जल (३) ख़राब दिन की वर्षा का जल (४) असमय की वर्षा का जल॥

रात्रि की वर्षा का जल

कफोत्पादक और दूषित होता है, सर्द, वात को दूषित करने वाला और सामुद्र जल की भांति है॥

दिन की वर्षा का जल

दिन में सूर्य की किरणों से तप्त हुये बादलों से बरसा हुआ पानी कफ को दूर करता है, तृषा को शांत करता है, हलका होता है और वात को ख़राब करता है॥

ख़राब दिन में बरसा हुआ पानी

वात व पित्त उत्पन्न करता है। शुष्कता को दूर करता है, तृप्तिकारक है और और दोषों को ख़राब करता है॥

श्रावण मास की वर्षा का जल

दोष को बिगाड़ने वाला, कंडुजनक, त्रिदोष को दूषित करने वाला, श्रावण मास की वर्षा का जल अच्छा नहीं होता॥

भाद्र मास की वर्षा का जल

भादों का पानी कफ उत्पन्न करने वाला है, वात को बिगाड़ने वाला, पित्तज रोगों को हितकर और मीठा होता है, रक्तज रोगों

को पैदा करता है।

आश्विन मास की वर्षा का जल

आश्विन मास का पानी रुक्ष, पित्त पैदा करने वाला, और पित्तज व रक्तज रोग पैदा करता है।

चित्रा नक्षत्र में बरसने वाला जल

त्रिदोष विकार को दूर करने वाला और बहुत ही उत्तम होता है ।

कार्त्तिक मास में बरसने वाला जल

अत्यन्त ठण्डा, त्रिदोष को दूषित करने वाला, कृषि उपयोगी, पौष्टिक, वीर्य और तृषा बढ़ाने वाला, दाह और ज्वर को दूर करने वाला। अब करके जल का वर्णन करते हैं—

करका जल

वर्षा के जल की दूसरी क़िस्म करका जल है । यह वह है जो कि तेज़ हवा और बिजली के मिलने से उत्तेजित होकर जमकर (ओलों के रूप में) बरसता है जिसे दूसरे शब्दों में ओलों का पानी कहते हैं।

ओलों के पानी के गुण

ओलों का जल रुक्ष, स्वच्छ, गुरु, बहुत ठण्डा, गाढ़ा, पित्त-मोह, नाशक और कफ उत्पन्न करने वाला है।

ओलों के पानी से क्लांति (थकावट) दूर होती है। मूर्छा, शिर पीड़ा और हिचकी को दूर करता है ॥

शोथ और घाव वालों को अहितकर है। पित्तज रोगियों को हितकर है । इसके अतिरिक्त ओलों के पानी के और बहुत से लाभ हैं ॥

तुषार—नदी से लेकर समुद्र तक हरारत मौजूद है। इस रास्ते के पानी को जिसमें धूयें के अंश न मिले हों तुषार कहते हैं । यह पानी जानदारों और वृक्षों के लिये हानिकारक है । तुषार का

पानी ठण्डा, रुक्ष, वादी, पित्ताभाव, कफ, रानों के अकड़ने कण्ठ प्रमेह और गलगंड इत्यादि रोगों को दूर करता है।

तुषार का पानी हल्का, ठण्डा, पौष्टिक, पित्तज पीड़ा नाशक, दोषनिवारक, जलरोग निवारक, कुष्ठ, श्लीपद, मकड़ी के विष, खाज और सर्प विष को दूर करता है। इस के अतिरिक्त निर्बल घायल और सूखा रोगवालों के लिये हितकर है॥

हिमजल—पहाड़ों से बर्फ़ के पिघलने से जो पानी टपकता है वह हिम जल कहलाता है॥

हिमजल के गुण—हिमजल गाढ़ा, मीठा, कफ पैदा करने वाला, मूर्छा, क्लांति, भ्रम, रक्त, पित्त व रुधिर विकार और शरीर के घावों को हितकर है॥

हिमजल ठण्डा, रुक्ष, कठोर और सूक्ष्म है। न यह दांत को बिगाड़ता है और न यह पित्त और कफ को ख़राब करता है॥

स्रोतों और नदियों का जल—स्रोत उस स्थान को कहते हैं जहां पानी भूमि फाड़ कर ऊपर उबल आता है। अब यदि यह बाहर निकलने वाला पानी थोड़ा होता है तो उसी जगह जमा हो जाता है, लेकिन यदि निकलने वाले पानी का परिमाण अधिक हो तो यह बाहर आकर अपने वास्ते रास्ता बनाकर बहता है और दरिया के नाम से प्रसिद्ध होता है। यदि थोड़े परिमाण में बहता हो तो वह नदी कहलाती है। विदित रहे कि वैद्यक में स्रोत को उद्भिद लिखा है और इसके पानी के यह गुण लिखे हैं, "उद्भिद जल पित्त को शमन करता है, बहुत ठण्डा होता है, मीठा, पौष्टिक, किंचित वात पित्त पैदा करने वाला और हलका होता है॥

नोट—यूनानी पुस्तकों में "दरिया" के लिये शब्द "नहर" व्यवहृत हुआ है और यह नहर जो हिन्दुस्तान में प्रसिद्ध है यह नहर कृत्रिम कहलाती है। विदित हो कि बहने वाले स्रोत का पानी उत्तम समझा जाता है, किन्तु यह उसी दशा में है जबकि निम्न लिखित बातें उसमें मौजूद हों—

(१) जिस ज़मीन से निकलता हो वह ज़मीन साफ़ सुथरी हो। उसके अन्दर नौशादर व गंधक इत्यादि न हो ॥

(२) स्रोत से पानी निकल कर शुद्ध व पवित्र मिट्टी या रेत वाली ज़मीन या पत्थर के टुकड़ों पर बहे या रेतीली मिट्टी पर से बहे तो उस स्रोत के पानी से उत्तम होता है जो मिट्टी पर बहता है, क्योंकि ऐसा पानी साफ़ होता है, आमाशय से जल्द उतर जाता है, और जल्दी सड़ता भी नहीं। इसके अतिरिक्त मिट्टी जब पानी के साथ मिल जाती है तो बहुत समय में उससे अलग होती है और रेत इत्यादि से मिला हुआ पानी बहुत जल्द साफ़ हो जाता है, बल्कि वह पानी के दूसरे मैलों को लेकर नीचे बैठ जाता है। रेत पर बहने वाला पानी पथरीली ज़मीन पर बहने वाले पानी से भी उत्तम होता है।

(३) पानी स्रोत से निकल कर दक्षिण से उत्तर की ओर या पश्चिम से पूर्व की ओर बहे तो वह अच्छा होता है।

(४) पानी ऊंचाई से गिरता हो, क्योंकि पानी के ऊपर से गिरने और तेज़ी से बहने से उस में सूक्ष्मता आ जाती है ॥

(५) पानी का उद्गम दूर हो अर्थात् पानी दूर से बह कर आया हो। अधिक दूर तक बहने से उसमें [सूक्ष्मता पैदा हो जाती है, किन्तु यह उसी दशा में हो सकता है जब वह ज़मीन भी वैसी ही अच्छी हो जिस पर से कि वह बहता है। उसके साथ दूसरे ख़राब जल न मिले हों। यदि मैले न हों तो उद्गम के पास का जल ही उत्तम है; जैसा कि दरिया गंगा का हाल है कि उसका पानी उद्गम के निकट शुद्ध और उत्तम है, परन्तु आगे दूर तक बहने से ख़राब जल आदि मिलने के कारण उसके असली गुण दूर हो जाते हैं ॥

(६) पानी तौल में हलका हो क्योंकि हलका पानी सूक्ष्म होता है और उसके अन्दर मिट्टी आदि नहीं होती। पानी के हलका और भारी मालूम करने की यही विधि है कि एक पैमाना को पानी से भरदें और उस पानी का वज़न करें। इसके बाद दूसरा पानी तोलो।

जो वज़न में कम हो वही हलका है। इसके अतिरिक्त दूसरी विधि यह है कि रूई के दो टुकड़े जो वज़न में बराबर हों लेकर दो पानी में अलग २ भिगोयें। इसके बाद यहां तक खुश्क करें कि कुछ तरी न रहे। इसके बाद वज़न करें। जो रूई का टुकड़ा हल्का हो उसका पानी हल्का है॥

(७) पानी पीने से मीठा मालूम हो। पानी का मीठा होना सूक्ष्मता का लक्षण इस वजह से निश्चित किया गया है कि जो पानी तरल और सूक्ष्म होता है वह मुंह की रतूबत को सूक्ष्म और तरल करके जिह्वा में आर्द्रता प्रविष्ठ करा देता है। क्योंकि उक्त आर्द्रता किसी क़दर मीठी होती है, इस लिये रसना को उससे मिठास मालूम होती है। इसी वजह से पानी के मीठा होने का ख्याल आता है नहीं तो वास्तव में पानी में कोई स्वाद नहीं होता और जो मिठास मालूम होती है वह मिठास का प्रथम दर्जा है॥

(८) स्रोतों का जल परिमाण में अधिक हो, क्योंकि अधिक परिमाण में होने से किसी दूषणकारिणी वस्तु से शीघ्र दूषित नहीं होता॥

(९) बहुत तेज़ बहता हो, क्योंकि अधिक तेज़ बहने से अधिक सूक्ष्मता होती है॥

(१०) शीघ्र ही गर्म और शीघ्र ही ठण्डा हो जाय।

(११) पीने के बाद आमाशय से शीघ्र गुज़र जाय।

(१) जो चीज़ उसमें पकायें वह शीघ्र जल जाये, क्योंकि ऐसा सूक्ष्म जल ही में हो सकता है।

अब हम उत्तम स्रोतों के जल के गुणों का वर्णन कर चुके, किन्तु स्मरण रखना चाहिये कि किसी स्रोत के पानी के लिये विशेष रूप से आदेश नहीं दिया जा सकता, क्योंकि बहुत कम स्रोत होंगे जो उद्गम से निकलने के बाद बराबर एक समान भूमि पर गुज़रते हुये किसी बड़ी नदी या समुद्र में मिल जाते हों। उदाहरणतः एक स्रोत किसी पहाड़ से निकले और ३४ मील तक किसी पहाड़ी ज़मीन पर बहे फिर नीचे आकर तराई की ख़राब ज़मीनों और वृक्षों के सड़े हुये पत्तों पर बहे तो ऐसी दशा में पार्वत्य प्रदेशों की अपेक्षा तराई का पानी अच्छा न होगा।

स्रोतों के जल के विषय में एक यह बात स्मरण रखना चाहिये कि जिस स्रोत का जल वेग से अधिक परिमाण में निकलता हो वह उस जलसे उत्तम होगा जो धीरे २ और कम परिमाण में निकले। तथा जो स्रोत पर्वतों के शिखर पर हो उसका पानी उन स्रोतों की अपेक्षा जो पर्वत के मध्य भाग से निकले अधिक ठण्डा और सूक्ष्म होता है॥

हिन्दुस्थान में गंगोत्री का जल सब से उत्तम और लाभदायक समझा जाता है जो गंगा जल के नाम से विख्यात है किन्तु उसके लाभ केवल पार्वत्य प्रदेशों तक ही परिमित हैं, क्योंकि तराई प्रान्त में आकर उसमें अन्य छोटी २ नदियां सम्मिलित हो जाती हैं जिन का पानी बहुत ही ख़राब होता है। बाज़ २ नाले भी आ मिलते हैं, जिनमें शहरों का पानी जा मिलता है जिससे उसकी असलियत में फ़र्क़ आ जाता है।

चूंकि लगभग सारी नदियां चश्मों से निकाल कर बहती हैं इस लिये दोनों के गुण एक हैं। अब हम हिन्दुस्थान में बहने वाली नदियों के जल का गुण बतलाते हैं—

गंगा का जल— स्वादिष्ट, ठण्डा, दोषों को शमन करने वाला पवित्र, और बहुत ही गुणकारी है। यह हिमालय के एक भाग से गंगोत्री नामक चश्मे से निकलता है। वहां के जल बराबर उत्तम संसार में दूसरा कोई जल न होगा। यह चिरकाल तक रक्खा रहने पर भी ख़राब नहीं होता।

यमुना का जल—यह गंगा जल से कुछ भारी होता है। स्वादिष्ट, पित्त शमन कर्ता, जठराग्नि को प्रज्वलित करने वाला और रूक्ष होता है। यमुना हिमालय के एक भाग जमनोत्री नामी पहाड़ के निकट एक चश्मे से निकलती है॥

नर्बदा का जल—स्वच्छ, ठण्डा, लघु, ख़राश करने वाला, पित्त और कफ को शांत करने वाला है और सब प्रकार के दोषों का नाश करता है।

गोदावरी का जल—खाज, कुष्ट, वात पित्त, का नाश करता है, उष्णता को बढ़ाता है और पाचक है।

कावेरी का जल—हितकर, बात नाशक, पौष्टिक, रंग निखारने वाला, जठराग्नि को प्रज्वलित करने वाला और बहुत ही ठण्डा है। यह दाद और कुष्ट को दूर करता है।

कृष्णा का जल—रुक्ष ठण्डा और बात रक्त को ख़राब करने वाला है।

पूर्व देश की तमाम नदियों का जल बात और कफ पैदा करता है।

पश्चिम देश की तमाम नदियों का पानी पित्त उत्पन्न करने वाला और कफ बात का नाश करने वाला है। पश्चिम के समुद्र में जाने वाली नदियों का पानी और तेज़ बहने वाली नदियों का जल स्वच्छ होता है,। नदियों का पानी थोड़ा ही गुणकारी होता है। अधिक सेवन करना हानिकारक है।

ऊपर जो गुण वर्णन किये गये हैं वह नदीयों के पृथक २ रूपसे हैं, किन्तु साधारणतः नदियों का पानी रुक्ष, बादी, हल्का, दीपन और कफ पित्त का नाश करने वाला होता है। नदियों का जल अमीरों और राजाओं के वास्ते बहुत उत्तम है। मीठा, हल्का रुक्ष, गरम बात को शांत करने वाला, अग्नि दीपक, कृषि को ख़राब करने वाला, पौष्टिक और रोगियों के लिये हितकर है। नदियों का जल शीत ऋतु के आरम्भ और शिशिर ऋतुमें प्रयोग करना चाहिये।

झरने का पानी—पहाड़ों से जो पानी बहता है उसको झरने का पानी कहते हैं। झरने का पानी रुचिकारक, कफ को दूर करने वाला, दीपन, लघु, मीठा, तेज़ या कड़वा, बात पैदा करने वाला है।

कूयें का जल

हिन्दुस्थान में प्रायः कूयें का जल पीने में सेवन होता है। पक्के कूयें का जल कच्चे कूयें के जल से उत्तम होता है और कूआं जितना ही अधिक गहरा होगा उतना ही उसका जल उत्तम होगा क्योंकि जो पानी अधिक गहराई से निकलेगा वह छना हुआ और ख़ालिस होगा।

कूयें की क़िस्में—यदि कूआं वैसे ही खोद कर बिना बनाये छोड़ दिया जाय तो वह कच्चा कूआं कहलाता है और यदि बड़ा पक्का कूआं बना कर उसमें सीढ़ी बनाई जाय तो वह बावली कहलाती है। और यदि उसे पक्का न बनाया जाय तो वह कच्ची बावली कहलाती है। इसके उपरान्त दरिया के निकट गड्ढा खोद कर जो पानी जमा हो जाता है उसको जूहड़ का पानी कहते हैं और बाज़ जगह गड्ढा खोद कर उस पर ढेकली लगा कर खेतों को सींचते हैं। ऐसी दशा में इसे ढेकली दार कुआं कहते हैं॥

इसके अतिरिक्त कूयें की एक क़िस्म कारेज़ है जिसका युनानी पुस्तकों में उल्लेख आया है। इसको विस्तार से वर्णन किया जायेगा॥

कूप निर्माण सम्बन्धी सावधानी

यहां कूयें से हमारा तात्पर्य उन कूओं से है जो पक्के बनाये जायें और उनका जल पीने आदि के काम में लाया जाता है। कूआं यथासम्भव गहरा खोदना चाहिये। कूयें का पानी चूना, मैगनेशिया इत्यादि खनिज वस्तुओं के परिमाण की न्यूनाधिकता के विचार से लघु या गुरु कहे हैं। कूप का पानी स्वच्छ, और उन गुणों से परिपूर्ण हो जो लेख के आरम्भ में वर्णन किये गये हैं तो वह पानी उत्तम कोटि का होगा।

कूओं के पानी के विषय में इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वह गंदा न हो और पत्तियां इत्यादि गिरने से वह सड़ न गया हो। और कूओं को ऐसे स्थान पर न बनाया गया हो जो कीचड़ मैले इत्यादि से खराब पड़ा रहता हो और न इतनी नीची भूमि में होना चाहिये कि उसमें दूसरा पानी भी आ गिरे। कूयें के आस पास की ज़मीन पक्की करा देनी चाहिये बल्कि उसके गिर्द मुंडेर और चारों ओर कई फ़ीट चौड़ा चबूतरा बना दिया दिया जाय ताकि उसके क़रीब गंदा पानी न रहने पावे। कूओं पर वृक्ष का होना भी हानिकारक है, क्यों कि उस में पत्ते गिर कर सड़ जाते हैं और कभी कभी इसकी जड़ भीतर ही भीतर कूयें में पहुंच जाती है जिस से कूयें का पानी खराब और दुर्गन्धित हो जाता है। कूओं के पास

कूड़ा करकट का जमा होना और वहां गन्दा पानी इकट्ठा होना भी हानिकारक है। वे कूयें बहुत उत्तम हैं जो खुले हुये हों। उनके पानी तक चांद की चांदनी और सूर्य्य की किरणें पहुंचती हों, किन्तु कूयें के ऊपर टीन इत्यादि का सायबान डाल देना भी उत्तम खयाल किया जाता है, किन्तु हमारी राय में इसकी कोई आवश्यकता नहीं है। हां, यदि कूयें के ऊपर जालीदार सायबान रख दिया जाय जिससे पत्ते वगैरह भीतर न आने पायें तो कोई हानि नहीं और यदि सम्भव हो तो पानी खींचने के लिये पम्प लगायें या लोहे के डोल, लोहे की ज़ंजीर बांध कर रख दें जिससे सब अपने २ गंदे और खराब बर्तन डाल कर कूयें को खराब न करें। बाज़ स्थानों पर लोग कूयें के चबूतरे के ऊपर खड़े होकर नहाते और उसी पर कपड़े इत्यादि धोते हैं। ऐसा नहीं होना चाहिये। इससे दूषित जल के छींटे पानी में पड़ने से कूयें का जल दूषित हो जाता है। जब कूयें के पानी में थोड़ी सी खराबी भी मालूम हो तो उसका पानी निकलवा देना चाहिये बल्कि यदि साल भर में दो बार वैसे ही कूओं का पानी निकलवा दिया करें तो उत्तम है, क्योंकि इसके बाद जो ताज़ा पानी छन कर आयेगा वह बहुत उत्तम होगा॥

कूयें का स्वादिष्ट व मीठा जल

हो और उसके अंदर अच्छे पानी के तमाम गुण पाये जायें तो ऐसा पानी दोषों को दूर करता है, उत्तम और लघु होता है और सेवन करने योग्य होता है ॥

कूयें का खारी पानी

तन्दुरुस्त आदमियों के लिये हितकर नहीं है। इस से परहेज़ करना उत्तम है, किन्तु ऐसे रोगी जिनके आमाशय आर्द्रता की वजह से कमज़ोर हों उनके वास्ते खारी कूयें का पानी उत्तम है। खारी कूयें का पानी पाचक, भूख लगाने वाला और कफ व वात का दूर करने वाला है ॥

तन्दुरुस्त व हट्टे कट्टे आदमियों का शरीर खारी पानी के इस्तेमाल से दुबला होकर खुश्क और फीका पड़ जाता है। बाज़ कूओं के पानी में चूने की मिलावट अधिक पाई गई है और इससे बहुत हानि

पहुंचा है। सुना गया है किसी कैदखाना में एक बार लोग गर्दन फूल जाने की बीमारी में ग्रस्त हो गये थे। जब जांच पड़ताल की गई तो इसका कारण पानी मालूम हुआ जिसमें चूने की मिलावट अधिक थी। उस पानी का पीना छोड़ देने से सबको अराम हो गया। इसलिये यथासम्भव पानी स्वास्थ्य नाशक वस्तुओं से सुरक्षित हो तो उत्तम है॥

जिन खारी कूओं को नहर के पानी से मीठा किया जाता है वह भी स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते हैं। अनुभवी वैद्यों और चिकित्सकों की एक स्वर से यह सम्मति है कि नहरों और कूपों के पानियों का मिश्रण पेट में बायु और गुड़गुड़ाहट पैदा करता है और पाचनशक्ति को खराब कर देता है। प्रायः वे खारी कूयें स्वयं ही मीठे हो जाते हैं जिनके निकट नदियां बहती हैं या जिनके पास से हो कर नहरें गुज़रती हैं। इस पानी का गुण भी वही है जो उन कूओं का है।

हिन्दुस्थान में कहीं २ यह भी प्रचलित है कि कूओंमें शोरा इत्यादि डाल कर उन्हें आठ मास तक बंद रखते हैं और गर्मी के दिनों में खोल देते हैं। यद्यपि ऐसे कूओं का पानी ठण्डा हो जाता है और ग्रीष्म ऋतु में ठण्डा होने के कारण सुखदायक मालूम होता है, किन्तु यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है, नहीं तो बहुधा कोई स्वादिष्ट वस्तु (स्वाद के विचार से) मनुष्य के स्वास्थ्य और जीवन पर प्रभाव डालने वाली होती है। इसलिये इस प्रकार की स्वास्थ्य नाशक बातों को जो अल्पज्ञ लोग किसी प्रकट सुख के लए करते हैं देश से दूर करनी चाहिए। यद्यपि स्वास्थ्य पर ऐसी बातों का प्रभाव धीरे २ पड़ता है, किन्तु हानि पहुंचाने वाली वस्तु को छोटी न समझना चाहिए॥

जो कूयें प्रायः बंद रहते हैं और उन पर पानी की सिंचाई नहीं होती या बहुत कम होती है उनके पानी से यथाशक्ति परहेज़ करना चाहिए, विशेष कर वह कूयें जिन पर कोई वृक्ष हो और उसके पत्ते कूयें में गिर कर सड़ते रहते हों। ऐसे कूयें के पानी से दुर्गन्धि आने लगती है। वर्षा ऋतु में जिन कूओं का पानी गंदला

हो जाता हो उसके पानी से भी परहेज़ करना चाहिए । शहरों में बाज़ बाज़ कूयें बरसात में ख़राब हो जाते हैं और शहर की मोरियों के ख़राब और सड़े हुये पानी उनमें कभी २ जमा हो जाते हैं ॥

बावली का पानी

बावली का पानी यदि खारी हो तो पित्त पैदा करने और कफ बात को दूर करने वाला होता है और यदि मीठा हो तो कफ पैदा करने वाला और बातपित्त के दूर करने वाला होता है ॥

चोहे का पानी

यह वह पानी होता है कि नदियों के क़रीब गढ़ा खोद कर निकाला जाता है । यह पानी यदि भली भांती स्वच्छ हो तो ठण्डा हल्का कसैला स्वादिष्ट और पित्त को दूर करने वाला होता है और यदि खीरा हो तो पित्तोत्पादक होता है ॥

ढेकली दार पानी

यह भी नदी के क़रीब खोदे जाते हैं और उन में से ढेकली द्वारा पानी निकालते हैं । यदि यह पानी भी साफ़ सुथरा हो तो इसके गुण भी चोहे के जल के समान होते हैं ।

कच्चे कूयें का पानी

पक्के कूयें के पानी की अपेक्षा भारी और गाढ़ा होता है ॥

पातालतोड़ कूयें का पानी

"कारेज़" भी कूयें की क़िस्म है । इसे अर्बी में "क़नात" और हिन्दी उर्दू में "पताल तोड़" कुआं कहते है । "कारेज़" को खोदते हैं, उससे पानी निकलता है । उस पानी को कृत्रिम रूपसे जारी करते हैं । यह "कारेज़" कहलाता है । (किन्तु यदि दरिया से कोई शाख निकाली जाय उसको कारेज़ कहते हैं । किन्तु यह कारेज नाम मात्र का होता है । इसी प्रकार जब जमे हुए पानी को कोशल से जारी किया जाय तो यह भी "कारेज़ मजाज़ी" कहलाता है) इसका पानी अपनी असल पर होता है, बल्कि दूसरी ख़राब भूमि पर बहने या

किसी अच्छी बुरी चीज़ के उसमें प्रविष्ट होने की दृष्टि से उसके पानी की भली बुरी अवस्था होती है । कारेज़ का पानी कूयें के पानी से उत्तम होता है, क्योंकि कारेज़ का पानी बहने वाला होता है और बहने वाला पानी उस पानी से अच्छा होता है जो कि एक स्थान पर जमा हो। दूसरा कारण 'कारेज़' के पानी के उम्दा होने का यह है कि "कारेज़" का पानी खुला हुआ होता है। सूर्य की गर्मी और स्वच्छ वायु उसको शुद्ध करती रहती है। "कारेज़" का पानी "चश्मों" के पानी से खराब होता है, इसलिये कि चश्मे स्वयम् बहते हैं और उनका पानी अपने बल से बाहर निकलता है, विपरीत इसके "कारेज़ का पानी" बाह्य और कृत्रिम उपायों से निकाला जाता है ॥

"कारेज़" बनाने की विधि–यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि पानी अपने धरातल को समतल रखता है। कल्पना करो कि जिस स्थान से हम पानी लाना चाहते हैं वह जगह उस जगह से जहां कि लाना चाहते हैं २० फुट ऊंची है। ऐसी दशा में यदि ठीक प्रकार से पानी की ऊंचाई पर पहुंचाना चाहें तो २० फुट की ऊंचाई तक पहुंच सकेगा और अपनी सतह को बराबर कर लेगा। इसको हम निम्नस्थ चित्र से समझाते हैं ॥
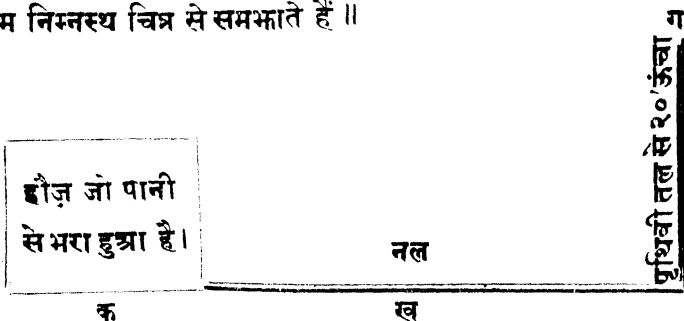
इस चित्र में 'क" वह हौज़ है जहां से पानी लाना चाहते हैं, और 'ख" वह नलका है जिसके द्वारा पानी की ऊंचाई पर पहुंचाना चाहते हैं, और "ग" नल का वह सिरा है जो पृथ्वी के धरातल से २० फुट ऊंचा है और ऊंचाई में हौज के बराबर है। ऐसी जगह में जब "ग" के क़रीब पानी पहुंचेगा तो वह हौज की

ऊंचाई के बराबर हो जायगा। इस चित्र से हमारा अभिप्राय केवल यह बात समझाना था कि पानी की सतह ऐसी दशा में बराबर हुआ करती है और इससे अधिकांश लोग परिचित होते हैं किन्तु इस बात से बहुत कम लोग परिचित हैं कि "कारेज़" में इस बात के होते हुए भी कि पानी ज़मीन के नीचे होता है किस प्रकार खुद-बखुद ज़मीन के ऊपर आकर बहने लगता है। यह बात प्रकट में असम्भव मालूम होती है कि पानी अपनी असली सतह से जो ज़मीन के नीचे होती है, बिना किसी बाह्य आकर्षण शक्ति के ऊंचाई पर आकर बहने लगे। इसका गुर बतलाने से पूर्व चन्द बातें बतलानी आवश्यक हैं, जिनसे यह बात समझाने में सहायता मिलेगी॥

पृथ्वी की तहें होती हैं और हर तह की अवस्था भिन्न २ होती है। इस में बाज़ तहें ऐसी होती हैं कि वर्षा के जल को नहीं रोक सकतीं। यह तहें प्रायः रेत की होती है। इसके अतिरिक्त खालिस मिट्टी की तह ऐसी होती है जो पानी को गुज़रने नहीं देती। रेत के कण तर होकर परस्पर ऐसे मिल जाते हैं कि पानी जैसी द्रव्य और पतली चीज़ को भी गुज़रने से रोकते हैं। वर्षा का जल जो ऊंचे पहाड़ों से उतरता है उसका एक बड़ा भाग पृथ्वी में सूख जाता है। जिस जगह उस रेत की तहें मिलती हैं उसमें से गुज़र जाता है, और जहां कहीं चिकनी मिट्टी बीच में आ जाती है रुक जाता है॥

कारेज़ का पानी–यह वह पानी है जो कारेज़ में उबल कर निकलता है। अब हम इस बात को समझाते हैं कि यह पानी किस प्रकार स्वयम् उबल कर निकलता है। इस बात को समझाने के वास्ते इतनी बात और बतलाने की ज़रूरत है कि यह तबके पहाड़ से धनुषाकार शुरू होते हैं। हर एक तबके का वह हिस्सा जो पहाड़ की ओर होता है ऊंचा होता है और वह भाग जिसे मध्य दर्जे का कहना चाहिये पस्त होता है। कभी ऐसा होता है कि यहां ऊंचा भाग ऊंचा होते २ फिर किसी पहाड़ से जा मिलता है और कभी अलग हो जाता है। प्रथम दशा में रेत मिट्टी और पानी की

तह लगभग अर्धवृत्ताकार होती है और किसी २ दशा में वृत्त के सदृश होती है ॥

अब यह प्रगट है कि मध्य भाग में किसी जगह कुआं खोदने और पानी की उस सतह के निकल आने पर जो चिकनी मिट्टी के ऊपर है पानी उतनी ही ऊंचाई पर जा सकेगा जितनी ऊंचाई उस पानी के उस भाग को प्राप्त है जो पर्वत के समीप है और यह ऊंचाई प्रत्येक दशा में पृथ्वी की उस सतह से अधिक होगी जहां कि कुआं खोदा है । यदि ऐसा न होगा तो भी स्वयम् पानी बाहर न आ सकेगगा ॥

इस बात को हम एक चित्र द्वारा समझाते हैं जिससे सब लोग भली भांति इसे समझ सकें ।
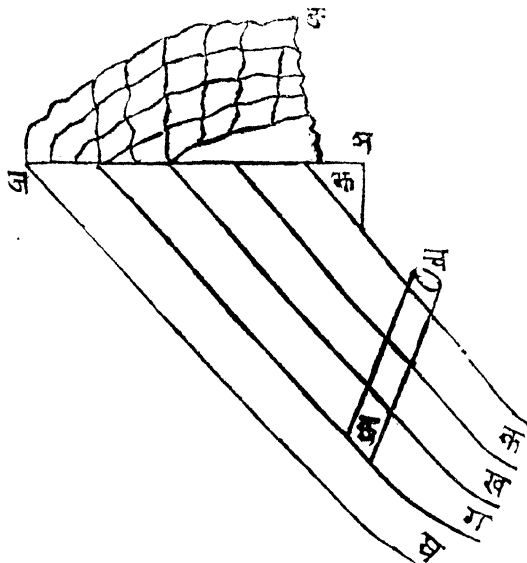
(क) पृथ्वी की वह तह जिस पर हम रहते हैं ।

(ख) रेत की वह तह जो पानी को नहीं रोक सकती ।

(ग) पानी की तह जिस के बाद चिकनी मिट्टी है ।

(घ) ख़ालिस चिकनी मिट्टी की तह ।

(ङ) वह पहाड़ जिससे वर्षा का जल बह कर जमीन में जज़्ब होता है ॥

(च) कारेज़ का वह भाग जो पृथ्वी के धरातल पर है ।

(छ) कारेज़ का वह अन्तिम भाग जो पहाड़ से बह कर आये हुये जमे हुये पानी तक पहुंच गया हो।

(ज) वह दो काल्पनिक रेखायें हैं जिसमें पानी को उस भाग की ऊंचाई मालूम होती है जो कि पहाड़ के क़रीब है।

"झ" रेखा का एक भाग पृथ्वी की सतह के साथ मिला हुआ है और दूसरी रेखा "ज" के प्रारंभिक भाग के समीप है जो अपने अंतिम भाग के साथ तहों के आरंभिक भागों से मिलता है। कल्पना करो कि "झ" रेखा की ऊंचाई धरातल से ५० फीट है तो तुम यह भी विश्वास कर लो कि कारेज़ का पानी ५० फीट ऊंचा हो सकता है बलिक कारेज़ का पानी जितनी ऊंचाई पर पहुंचेगा उतना ही धरातल से पानी के उस खज़ाने का सिरा जिससे कारेज़ का सम्बन्ध है ऊंचा होगा॥

कुआं हो या कारेज़, नदी हो या चश्मा गंदला पानी हर एक का खराब है। पाचन को खराब करने के अतिरिक्त गुर्दों या मूत्राशयों में पथरी पैदा करता और रुधिर को खराब करता है। यदि विवश होकर ऐसा पानी वर्त्तना पड़े तो उसे साफ करके वर्त्तना चाहिये। बिना साफ़ किये कदापि न वर्त्तना चाहिये, क्योंकि यह बहुत खतरनाक है। पानी साफ़ करने के तरीक़े हम आगे चलकर लिखेंगे॥

चोये का पानी।

चोये का पानी वह है जो ज़मीन की सतह पर एक गढ़ा बना कर उस में इधर उधर की तर ज़मीन से पानी रिस २ कर जमा हो जाय। इस को भी चोये का पानी कह देते हैं, यद्यपि शालग्राम निघण्टु में उस पानी को चूहे या चोये का पानी कहा है जो कि नदी के समीप गढ़ा खोदने से निकलता है॥

नोट—चोये के पानी और स्थिर चश्मे (जो बहता न हो) में यह अन्तर है कि चोये में ज़मीन के ऊपर से आस पास की जमीन का पानी रिस २ कर नीची ज़मीनों में जमा हो जाता है और चश्मे का पानी ज़मीन के अन्दर से ज़मीन को फाड़ कर निकलता है, और जमा हो जाता है॥

चोये का पानी स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है बल्कि वैद्यक पुस्तकों में इस को तमाम जलों से निकृष्ट कहा है। हां जो नदी के समीप गढ़ा खोदने से जमा होता है वह नदी का असली पानी अधिक साफ़ हो जाता है। जहां दूसरा पानी न मिले वहां वह नदी के पानी से भर जाता है॥

तालाब का जल॥

तालाब किसी गहरी ज़मीन का नाम है जिस में बरसात का पानी जमा हो जाता है। तालाब का जल प्रायः साफ़ नहीं रहता। उस में ज़मीन के मल मूत्र आदि मिल जाते हैं। इसके अतिरिक्त तालों में जानवर पानी पीते और उसी में मलमूत्र कर देते हैं, और वैसे भी गन्दी भूमि पर से बह २ कर तालाब में पानी जमा होता है। नालियों मोरियों का गन्दा पानी भी उसी में शामिल होता है। इस के अतिरिक्त कपड़े धोये जाते और कभी रस्सी बटने के वास्ते सन भी उस में दबा देते हैं जिससे पानी बहुत ख़राब हो जाता है। हां, यदि तालाब पक्का है या बस्ती से दूर किसी जंगल में उत्तम भूमि पर स्थित है। चाहे वह कच्चा ही हो, उस में किसी प्रकार की गन्दगी बाहर से न आती हो और उक्त सब दोषों से रहित हो तो ऐसे तालाबों का जल स्वादिष्ट, कसैला, वातवर्धक, गरिष्ट और रक्त पित्त व कफ को बढ़ाने वाला होता है, किन्तु क्योंकि अच्छे तालाब बहुत कम होते हैं और उन की सफ़ाई का बहुत कम ध्यान रक्खा जाता है, इस लिये तालाबों का जल प्रायः स्वास्थ्य नाशक होता है और पीने के योग्य नहीं होता है। जहां अधिकतर तालाबों का पानी व्यवहार में लाया जाता है वहां के लोग बहुधा रोगों में ग्रस्त हो जाते हैं यथा नारूवा रोग का कारण तालाबों का ख़राब जल ही होता है। यदि तालाबों के इर्दगिर्द बांस, नरसल, वृक्ष इत्यादि खड़े हों तो ऐसे तालाबों को फ़ारसी में "अजाम" कहते हैं और उनके जलों को "मियाहुल अजाम" कहते हैं और यदि तालाब का पानी सड़ गया हो जैसा कि काई इत्यादि के सड़ने से होता है तो ऐसे तालाबों को फ़ारसी में "बतायह" और उन के जलों को 'मियाहुल बतायह" कहते हैं॥

यह दोनों जल भी स्वास्थ्य के लिये बहुत हानिकारक होते हैं। जाड़े में जबकि यह ऋतु या बर्फ पड़ने से ठण्डे हो जाते हैं तो उनके पीने से कफ और तज्जन्य रोग खांसी प्रतिश्याय इत्यादि पैदा हो जाते हैं और गरमियों में जबकि उष्ण वायु के कारण उनकी दशा बदल जाती है तो पित्त वा वात पैदा करते हैं। इस के उपरान्त उन पानियों के पीने वाले प्रायः निम्नलिखित रोगों में ग्रस्त हो जाते हैं:—

(१) तिल्ली का बढ़ जाना, (२) पर्दे का पतला पड़ जाना, (३) आमाशय, यकृत, तिल्ली, हृदय, और फेफड़ों का कठोर हो जाना, (४) हाथ, पांव मोढ़ों और गर्दन का पतला और कमज़ोर होना, (५) असाधारण-रूप से भूख का अधिक होना और प्यास लगना, (६) कब्ज, (७) जलोदर (८) निमोनिया, (९) आंतों की दुर्बलता, (१०) यकृत निर्बलता (११) बवासीर (१२) पैर की नसों का फूलना और मोटा हो जाना, (१३) शोथ इत्यादि, (१४) कठिनाई से गर्भ ठहरना, और कठिनाई से बच्चा पैदा होना, (१५) बच्चों का अपनी माता के पेट से बेडौल पैदा होना, (१६) बच्चों की अण्डकोषों की थैली का फूल जाना, (१७) पिंडलियों का ज़ख्मी होना, (१८) चौथिया ज्वर का आना, (१९) टाइफाइड ज्वर होना।

उपरोक्त प्रकार के जलों के अतिरिक्त उन तालाबों का पानी भी यही गुण रखता है जिन के अन्दर कांस काई और अन्य प्रकार की घास पैदा होती है॥

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में भी ऐसे पानी के विषय में लिखा है कि "बहुत से वृक्ष और बहुत सी बेलों इत्यादि के छाये में कुंआं या तालाब इत्यादि हो और उस में हमेशा पानी भरा रहता हो, उन के अन्दर कीड़े पड़े हुए हों, सिवार पैदा हो रही हो, मैला हो, काले रंग का हो, उस में वृक्षों की जड़ें आई हों, वृक्षों के पत्ते पड़ कर सड़ रहे हों, मूत्र की तरह उस से दुर्गन्धि आती हो ऐसे पानी को रोगोत्पादक कहते हैं। इस के पीने से विषम रोग, पेट पीड़ा, कोढ़ और खाज पैदा हो जाती है। और जिस पानी में मल मूत्र घास काई इत्यादि पड़ते हों, गर्म वा गाढ़ा हो, दांतों को पकड़ता हो, अकाल में बरसा हो, दुर्गन्धित हो, सिवार पड़ी हुई हो और उस में कई प्रकार के

कीड़े पैदा हो गये हों, बहुत भारी हो और उस पर चांद की चांदनी और सूरज की धूप न पड़ती हो, ऐसा पानी भी रोगोत्पादक होता है। इस को भी नहीं पीना चाहिये। यह सदैव हानिकारक है। यह वायुगोला, तिल्ली, जलोदर और पाण्डु रोग उत्पन्न करता है।

यदि बहती हुई नदी से कुछ पानी बहकर अलग किसी गड्ढे इत्यादि में जमा हो जाय, जैसा कि प्रायः नदियों के समीप देखा जाता है, यद्यपि यह पानी उपर्युक्त जलों से अपेक्षाकृत उत्तम है, इस के निकृष्ट होने में संदेह नहीं। इसी प्रकार वे जल हैं जो कि झीलियों में जमा हो जाते हैं। फलतः ये सब पानी आमाशय को हानि पहुंचाते हैं और पित्तज या वातज प्रकृति वालों के लिये बहुत ही हानिकारक हैं। ज्वर की दशा में ऐसा पानी विशेष रूप से ज्वर को अधिक कर देता है और घबराहट इत्यादि अधिक हो जाती है।

उपरोक्त प्रकार के जलों के अतिरिक्त अन्य प्रकार के जल लिखते हैं, जिनका आयुर्वेदिक पुस्तकों में अधिक उल्लेख है।

चोंडिया—जो गढ़ा चारों ओर से पत्थरों से आवृत हो और उस का जल नीले रंग का बहुत ही स्वच्छ हो और उस के ऊपर लताएं छा रही हों, उस को चोंडिया कहते हैं, जैसा कि पहाड़ों या पथरीली जगहों में प्रायः होता है। कई लोगों का कथन है कि पत्थर इत्यादि आवृत्त न हो उसको चोंजिया कहते हैं। उस के पानी को चोंजिया जल कहते हैं।

चोंडिये का पानी जठराग्नि को प्रज्वलित करने वाला रूक्ष, कफ नाशक, हलका मीठा, पित्त दूर करने वाला भूख लगाने वाला और पाचन है॥

सर—जिस जगह नदी पर्वत इत्यादि से रुक कर ठहर जाय उसको सर कहते हैं, और उसके जल को सारस कहते हैं। सर पौष्टिक, प्यास शांत करने वाला, मीठा, हलका, भूख लगाने वाला, कसैला, रूक्ष, और क़ाबिज़ है॥

पल्वल—छोटे सर को पल्वल कहते हैं। इस में वर्षा ऋतु में जल रहता है और फिर सूख जाता है। इस के जल को पाल्वल कहते हैं॥

पल्वल का जल कोष्ठबद्धता करने वाला भारी स्वादिष्ट और वात पित्त कफ को बिगाड़ने वाला है ।।

नोट—पल्वल का नाम तलैया भी है ।

केदार—खेत के पानी को केदार कहते हैं । यह पानी भारी, मीठा और बिकारोत्पादक होता है ।

नोट—यदि वर्षा का जल उस दिन का बरसा हुआ किसी नीची भूमि में जमा हो, वह पानी हानिकारक है, लेकिन यदि वही पानी तीन रात ठहरा रहे तो साफ़ और अमृत की भांति हो जाता है ।

ठण्ढा जल ।

ठण्ढा जल कई प्रकार का होता है—जो स्वभावतः ठण्ढा हो, और जो बर्फ़ से ठण्ढा किया गया हो, शोरे के पानी में रख कर या रात को खुली वायु में रख कर ठण्ढा किया हो, या ओलों इत्यादि का पानी हो । इन सब के विषयमें हम पृथक २ बयान करेंगे । सब से प्रथम हम उस ठण्ढे जल के विषय में लिखना चाहते हैं, जिसको साधारणतः प्रतिदिन पिया जाता है ॥

समशीतोष्ण प्रकृति के मनुष्य के लिये सरदी गरमी में समशीतोष्ण जल को उत्तम बतलाते हुये समशीतोष्ण प्रकृति का बंधन इस वास्ते लगाया गया है कि उष्ण प्रकृति और शीत प्रकृति के भेद भिन्न २ हैं, क्योंकि गरम उष्ण प्रकृति को कभी कभी अधिक ठण्ढे जल की आवश्यकता होती है और वह इससे लाभ उठाता है, लेकिन इस पर भी उनको बहुत ठण्ढा जल भी हानि करता है । यह उन उष्ण प्रकृति वालों के लिये है जो खूनी या बादी स्वभाव के हों न कि पित्तज प्रकृति के ।

यहां प्रश्न होता है कि पित्तज प्रकृति वातज प्रकृति से अधिक उष्ण प्रकृति के होते हैं, तो फिर पित्तज प्रकृति वालों को अधिक ठण्डे जल का क्यों निषेध है ?

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि पित्तज प्रकृति वाले वातज प्रकृति वालों की अपेक्षा अधिक उष्ण स्वभाव के होते हैं लेकिन चूंकि वे प्रायः कमज़ोर और उन के शरीर में मांस थोड़ा होता है इस लिये वे अधिक ठण्डे जल को सहन नहीं कर सकते, विपरीत इस के वातज प्रकृति वाले के शरीर में अधिक मांस होतेहैं और उन्हें अधिक ठण्डे जल से हानि नहीं पहुंचेगी ॥

जब कि यह बात मालूम हो गई समशीतोष्ण जल समशीतोष्ण प्रकृति के वास्ते उपयुक्त है और बहुत अधिक ठण्डा जल उष्ण प्रकृति को भी वर्जित है, अतः ठण्डी प्रकृति वालों को ऐसा जल सानुकूल होगा जो थोड़ा सर्द हो लेकिन ग्रीष्म ऋतु या गर्म बीमारी में कुछ अधिक सर्द भी हो सकता है।

उपरोक्त कथन से यह बात प्रगट हो गई कि हर एक प्रकृति को ठण्डे जलकी आवश्यकता है चाहे वह ठण्डी प्रकृतिका ही हो। हां ! सर्दी की न्यूनता या अधिकता स्वभाव भेद से अनुकूल या प्रतिकूल है।

ठण्डे जल की आवश्यकता व उसके गुण।

ठण्डा जल पीने से प्यास बुझ जाती है। यह अपनी ठण्डक से आमाशय को पुष्टि देता है और मन को आनन्द प्रदान करता है और हृदय की धड़कन को जो कि हरारत के कारण हो बहुत लाभ पहुंचाता है॥

अधिक ठण्डा पानी—ऊपर जिस जल के विषय में लिखा गया है वह साधारण ठण्डे पानी के विषय में है। यहां हम अधिक ठण्ढे या बहुत अधिक ठण्ढे जल के विषय में लिखते हैं। अधिक ठण्डे जलों से मतलब उन जलों से है जो कृत्रिम रूप से ठण्डे किये जाते हैं या स्वयं ही बहुत ठण्डे हों यथा बर्फ से ठंडा किया हुआ पानी या बर्फ का गला हुआ पानी, ओले का पानी, शोरे से ठण्डा किया हुआ पानी इत्यादि २। हर एक पानी का पृथक २ वर्णन करने से पूर्व हम बहुत अधिक ठण्डे जल की हानि लिखते हैं॥

ठण्डे जल की हानियां—अधिक ठंडा जल पट्ठों को निर्बल करता है, फेफड़े और मूत्राशय के घाव में भी हानिकारक है। यकृत और आमाशय की क्रिया को खराब करता है, जठराग्नि को मन्द करता है, परिणामशूल पैदा करता है। और बहुत से लोगों को बहुत ठंडा जल पीने से शिर में पीड़ा होने लगती है। मैथुन शक्ति के लिये भी अच्छा नहीं है। यदि यह निहार मुंह पिया जाय तो और भी हानिकारक होगा। बाज़ कमज़ोर और बूढ़े आदमियों को देखा गया है कि अधिक ठंडा जल पीने से फ़ौरन फ़ालिज में ग्रस्त हो गये। यह पानी दांतों को भी हानि पहुंचाता है, मस्तिष्क को भी हानि पहुंचाता है॥

बर्फ़—जमे हुये पानी को बर्फ़ कहते हैं, चाहे कृत्रिम रूप से जमाय गया हो या स्वाभाविक रूप से जम गया हो।

बर्फ़ की प्रकृति—बर्फ तीसरे दर्जे में ठण्डा और दूसरे दर्जे में सर्द व खुश्क है। बाज़ चौथे दर्जे में शीत शुष्क कहते हैं। कहते हैं कि बर्फ़ स्वभावतः ठंडा है और खुश्क है। खुश्की मनुष्य की प्रकृति में असर नहीं करती बल्कि वह शक्ति शून्य हो जाती है, इस वास्ते कि बर्फ की प्रकृति तर है और उसकी खुश्की क्षणिक है। बाज़ बर्फ़ को गर्म कहते हैं, लेकिन मालूम होता है कि ज्यादा सरदी आमाशय में जाने से हर तरफ से गरमी उस ओर दौड़ती है जिससे कुछ भड़कन लगती है, इसी से इसको गर्म कहा है॥

बर्फ़ के गुण—बर्फ़ को तालू पर रखने से नकसीर बंद हो जाती है, तथा बर्फ़ के रखने से हर प्रकार का रक्तस्राव बन्द हो जाता है। इसके खाने से हलक में चिमटी हुई जोंक छूट जाती है। इसके पानी से गंडूष करने से दन्त पीड़ा जो कि गर्मी के कारण हो दूर हो जाती है। यह खांसी को उभारती है, प्यास लगाती और कभी २ प्यास बुझाती है। बूढ़ों, ठण्डी प्रकृति वाले लोगों और उन लोगों के वास्ते जिनके आमाशय व यकृत कमज़ोर हों और आन्तरिक शोथ के लिए हानिकारक है। उष्ण प्रकृति और उन लोगों के लिये जिनका आमाशय और यकृत गर्म हों या रुधिर या पित्त की अधिकता हो अनुकूल होती है। आमाशय से मस्तिष्क की ओर चढ़ने वाली वाष्प को रोकती है, पट्ठों को हानिकारक है, आमाशय को सिकोड़ती और निर्बल करती है विशेष कर शीत प्रकृति वाले लोगों के आमाशय को निर्बल करती है। उष्ण प्रकृति वाले लोगों के आमाशय को पुष्ट बनाती है। उष्ण ज्वर और खुश्क व तर खाज में हितकर है॥

नोट—बर्फ़ पीने के बाद जो प्यास मालूम होती है उसका कारण यह है कि बर्फ शीतलता के कारण आमाशय के अंदर सुकड़न पैदा करके हरारत को घोटती है, जिससे प्यास मालूम होती है; लेकिन यह प्यास झूठी होती है। यदि यह अधिक हो तो उष्ण जल, शकर या शहद मिलाकर पियें तो ऐसी प्यास मिट जाती है।

आयुर्वेदिक में प्राकृतिक बर्फ़ के पानी को गुरु, मधुर, कफो-त्पादक, मूर्च्छा, थकन, भ्रम, रक्त पित्त और रक्त विकार नाशक लिखा है ॥

नोट—बर्फ के विषय में जो कुछ ऊपर लिखा गया है यह कृत्रिम और अकृत्रिम दोनों के लिये है, अब आगे हम उनका कुछ उल्लेख पृथक २ भी किये देते हैं ॥

कृत्रिम बर्फ़—कृत्रिम बर्फ शहरों में अधिकता से इस्तेमाल होती है, लेकिन इस से हानि बहुत अधिक पहुंचती है। बर्फ़ के अधिक सेवन से दांत बेकार हो जाते हैं। पट्ठों को विशेष हानि पहुंचती है, और कम्प व अर्धांगवात इत्यादि रोग पैदा करता है, चंद दिनों के लगातार सेवन से पाचन शक्ति भी कम कर देता है, हां ऊष्ण प्रकृति वाले लोगों के लिये जिन की कभी साधारण ठण्डे जल से तृप्ति न होती हो गुणकारी है। इस से उष्ण प्रकृति को भूख ज्यादा लगती है और आमाशय पुष्ट होता है,। लेकिन बर्फ़ से जो पानी ठण्डा किया जाये वह बर्त्तन में डालकर ठण्ठा न किया जाये बल्कि पानी के गिलास को बर्फ़ के अन्दर रखकर ठण्डा किया जाये तो यह अच्छा होता है। जो बर्फ़ ख़राब पानी की बनी हो या ख़राब जगह पड़ी हुई हो (अकृत्रिम) तो उस को पानी में मिलाकर पीने की भी हानि प्रगट है, क्योंकि इसके मिलाने से पानी भी ख़राब हो जाएगा ॥

बर्फ़ का घुला हुआ पानी अच्छा नहीं, क्योंकि इस घुले हुये पानी की सरदी पट्ठों आदि के लिये बहुत हानिकारक है। इस पर आक्षेप होता है कि उपरोक्त अवयवों की ठण्डक का कारण पानी की सरदी है, अतः बर्फ के घुले हुए जल का विशेष रूप से क्यों उल्लेख किया है (यद्यपि यह भी स्वभावतः ठण्डा है)। इस आक्षेप का उत्तर यह है कि बर्फ़ घुलती है तो उस के पानी में गाढ़ापन रह जाता है और गाढ़ेपन के कारण अवयवों में वह देर तक ठहरता है, और अधिक ठहराव के कारण हानि अधिक होती है ॥

प्राकृतिक बर्फ़—अकृत्रिम बर्फ़ जो कि ठण्डे स्थानों और पहाड़ी स्थानों में पड़ती है इस की प्रकृति भी वही है जो कृत्रिम बर्फ की

लिखी गई है और इस का पानी भी वही हानि पहुंचाता है जो कि कृत्रिम बर्फ़ का। लेकिन इसका पानी कृत्रिम बर्फ़ की अपेक्षा अधिक गाढ़ा होता है और पट्ठों को विशेष हानि पहुंचाता है। ख़राब जगह पर पड़ी हुई बर्फ सेवन करने योग्य नहीं होती॥

यख़—जमे हुये पानी को कहते हैं जो अधिक सरदी से स्वभावतः जम जाता है। इस की प्रकृति वा गुण बर्फ़ के समान है। यदि यख़ उम्दा और साफ़ पानी की जमी हुई है तो उत्तम है। यदि ख़राब पानी जमकर यख़ बन गया हो तो इससे हानि बहुत अधिक होती है और ऐसी यख़ इस्तेमाल करने योग्य नहीं होती। यह हैज़ा, पित्तज ज्वर, और मुहरक़ा ज्वर के लिये हितकर लिखा है। आन्तरिक शोथ के लिये हानिकारक है॥

ओलों का पानी—ओलों के गुण और स्वभाव बर्फ़ की तरह होते हैं, लेकिन यह बर्फ से अधिक गाढ़ होते हैं। हकीम गीलानी का कथन है कि ओलों की प्रकृति ठण्डी होती है। कभी २ इस से गर्मी और खुश्की प्रगट होती है लेकिन बूढ़ों के लिये हानिकारक है॥

ओलों का पानी दांतों की पीड़ा को शांत करता है जो कि गर्मी के कारण हो। इसका पानी पीने से हलक में चिमटी हुई जोंक छूट जाती है। यदि ओलों को कपड़े पर रखकर घेघे पर बांधे तो उस को बिठा देता है, लेकिन दर्द व जलन बहुत ज्यादा होती है। जले हुए स्थान पर मलने में पीड़ा शांत होती है॥

वैद्यक के अनुसार ओलों का पानी सर्दी पहुंचाने वाला शरीर की थकावट को दूर करने वाला और रुक्ष होता है. वात और कफ पैदा करता है, मूर्च्छा, मोह और शिर पीड़ा को शांत करता है। हिचकी को लाभ पहुंचाता है, शोथ घाव और नासूर के रोगियों को हानिकारक है, पित्तज प्रकृति के लिये अनुभूत है॥

शोरे से ठण्डा किया हुआ पानी।

गर्मियों के दिनों में जिस जगह बर्फ़ नहीं मिलती वहां पर शोरे को एक बर्त्तन के अंदर पानी में घोलकर उस में पानी का गिलास रख देते हैं, पानी ठण्डा हो जाता है, उस के गुण दोष

ज्यादा ठण्डे पानी की तरह हैं। इस प्रकार ठण्डा किया हुआ पानी बर्फ़ के पानी से अच्छा होता है। इस के अतिरिक्त ऐसे पानी का अच्छा बुरा होना पानी के अच्छे बुरे होने पर निर्भर है॥

बासी पानी–बाज़ लोग ग्रीष्म ऋतु में बासी पानी ठण्डा होने की वजह से इस्तेमाल करते हैं। बासी पानी पित्त को कम करता और वात व कफ को बढ़ाता है कमज़ोर फेफड़े वालों के वास्ते हानिकारक है, मैथुन शक्ति को कम करता है, खांसी को उभाड़ता है।

ठण्डा जल किन रोगों में हानिकारक है॥

ठण्डा पानी पसली के दर्द, प्रतिश्याय, ज़ुकाम, वातरोग, घेघ, पेट के फूलने, क़ब्ज़, जुलाब के बीच में या पीछे नये ज्वर भूख की कमी, संग्रहणी वायु गोला, दमा, खांसी, हिचकी और स्निग्ध भोजन के साथ या पीछे पीना हानिकारक है। भूख की कमी नज़ला, मंदाग्नि, शोथ, तपेदिक, उदर रोग, कुष्ट नेत्ररोग, ज्वर, नासूर, और मधुमेह में थोड़ा पानी पीना चाहिये। वायुगोला, बवासीर, संग्रहणी, तपेदिक, उदर रोग, मंदाग्नि, पांडु रोग, शोथ, घेघा, नासूर, शुक्रमेह, नेत्ररोग भूख की कमी, अतिसार, कफ कुष्ट नज़ला की बीमारी में पकाकर ठण्डा किया हुआ पानी पीना चाहिये, लेकिन ज्यादा यह भी न पियें, थोड़ा पीना चाहिये॥

गरम जल।

गरम जल दो प्रकार का होता है।

(१) ज्यादा गरम जिस को अति ऊष्ण या ऊष्ण भी कहते हैं।

(२) कम गरम जिस को शीतोष्ण कहते हैं। इन के अतिरिक्त जोश देकर ठण्डा किया हुआ जल भी इसी श्रेणी में वर्णन करेंगे।

विदित हो कि ऊष्ण या शीतोष्ण जल का साधारण प्रयोग वर्जित है परन्तु यदि दवा के लिये काम में लाया जावे तो कोई हानि नहीं। उदाहरणार्थ जब वमन कराने की रुचि हो तो वमन लाने वाली औषधियों को शीतोष्ण पानी में मिलाकर पिलावें, क्योंकि शीतोष्ण जल भी वमनकारी होता है। ऐसी अवस्था में वमन औषधियों के साथ मिलाना और ज्यादा सहायक होगा। जब पेट को धोना और दस्त लाना हो तो ऊष्ण जल पिलावें। इसी

कारण दस्त लाने वाले चूरण के पश्चात् गरम पानी पिलाया जाता है। गरम जल झूठी प्यास को दूर करता है क्योंकि पेट से दोषाधिक्य को जो झूठी प्यास का कारण होता है धो डालता है जिस से झूठी प्यास दूर हो जाता है।

इस के अतिरिक्त गरम पानी वात को शान्त करता है, वातज रोगियों को हितकर है। सर्दी के कारण जो सिर दर्द हो उस के लिये हितकर है, दुखती हुई आंख, घाव, सूजन, फुन्सियों को धोने से लाभ देता है, अफारा को दूर करता है, खाज को लाभदायक है। प्रातः खाली पेट घूंट पीने से पेट साफ़ करता और कोष्टबद्धता को दूर करता है। शूल को भी लाभदायक है। अपस्मार रोगियों के वास्ते अच्छा है। नज़ला प्रतिश्याय को और उस के कारण जो गिलटियां कानों के पीछे हो जाती हैं उनके लिये लाभकारी है। जिन रोगियों के पेट में किसी ऐसी जगह घाव हो जावे जहां इस का प्रभाव पहुंच सके तो उनके लिये भी लाभदायक है। ऋतुस्रावक है और मूत्रल है। दर्दों को आराम देता है और मोटे आदमियों को पतला करता है।

मसीहुलमुल्क देहलवी ऊपर वर्णित लाभों की पुष्टि करते हुए अपने कुछ रोगियों का उदाहरण देते हैं जो पाठकों के लाभ के लिये हम भी यहां लिख देते हैं। आप लिखते हैं कि एक स्त्री जिस की आयु ४५ वर्ष की थी वातगुल्म में तीन साल से ग्रस्त थी क्षुधा और हाज़मा दोनों खराब थे, कब्ज़ बहुधा रहता था। दर्द तमाम दिन रहता था। इन के अतिरिक्त और भी कष्ट थे। इस के वास्ते और औषधियां नियत करने के अतिरिक्त एक विशेष नियम से जो आगे लिखी जावेगी गरम पानी भी पिलवाया जिस से दिन प्रति दिन रोगिनी को आराम होता गया और एक मास में वह अच्छी हो गई।

कई पुरुषों को आमाशय से बुख़ारात उठने की शिकायत थी। उन्हें भी गरम जल से आराम हुआ। यद्यपि पूरा आराम तो नहीं हुआ परन्तु औषधियों से अच्छा प्रभाव पड़ा।

(३) एक रोगी के मुख में पानी भर आने की शिकायत थी

उस को गरम पानी पीने को कहा गया। उस ने गरम जल उसी समय पिया और तत्काल यह हालत दूर होगई।

(४) एक बीमार को मूत्राशय में सर्दी प्रतीत होती थी और रात दिन में ६—७ बार से अधिक मूत्र उतरता था। उस को गरम जल का प्रयोग कराया जिस से यह दोनों रोग बहुत शीघ्र जाते रहे।

(५) दो रोगियों को मूत्र शीघ्र २ आता था। अनुसन्धान से मालूम हुआ कि पेशाब की साधारण अवस्था हाज़िमा की ख़राबी के कारण है। इन रोगियों के लिये कुछ औषधियां नियत की गई हैं और साथ ही उन्हें गरम पानी का प्रयोग कराया गया। थोड़े दिनों के पश्चात् उन्हें आराम आ गया।

अब हम आप के लाभार्थ यह भी लिखना आवश्यक समझते हैं कि गरम पानी से ऊपर वर्णन किये हुए लाभ क्यों होते हैं। विदित हो कि गरम जल में तीन गुण हैं। प्रथम गरम करना, द्वितीय नरम करना, तृतीय बहाना। इस लिये गरम पानी पेट के अफारा, वात, उन्माद, शिरःशूल (जो सर्दी के कारण हो) को अपनी गरमी के कारण लाभदायक है। इस की गरमी दोषों को पतला करती है और उन की तकलीफ़ें कम हो जाती हैं। सिर पीड़ा (जो सर्दी के कारण होती है) को भी इस की गर्मी के कारण ही लाभ होता है और सम्भव है कि इस के दूसरे गुण (गरम करने) का भी सिर दर्द को दूर करने में भाग हो। सूजन और इस की क़िस्मों को वह पानी अपने दो गुणों (गरम करना) के कारण लाभ पहुंचाता है। जिन दर्दों को यह लाभदायक होता है उन्हें भी इन्हीं दो गुनों के कारण लाभदायक होता है और मृगी को अपने तीनों गुनों के कारण लाभ पहुंचाता है।

सेवन नियम।

ऊपर वर्णित रोगों में गरम पानी के प्रयोग का यह नियम है कि दोनों समय खाने से एक घंटा पूर्व एक गिलास जिस में बीस पच्चीस तोला पानी हो चाय की भांति गरम २ एक २ घूंट करके पियें और उस के एक घंटा के पश्चात् खाना खा लें। खाना खाते

समय और उस के आध घंटा पश्चात् तक ठंडा पानी न पियें। फिर साधारण सर्द जल के प्रयोग में कोई हानि नहीं परन्तु बर्फ़ के जल से परहेज़ करें।

यद्यपि इस पानी के सेवन से ऊपर वर्णित रोग सर्वथा दूर नहीं होते परन्तु गरम पानी इन रोगों में लाभ अवश्य पहुंचाता है।

गरम पानी के लाभ।

जो लोग दिल की धड़कन की सदा शिकायत करते रहते हैं या जिन के ज्ञानतन्तु बहुत निर्बल होते हैं उन्हें गरम पानी बहुत हानिकारक होता है, इसलिये ऐसे मनुष्यों को इस का सेवन कभी २ करना चाहिये। ऐसे बीमारों को इस पानी से शोथ रोग हो जाने का डर है। दुबले पतले आदमी अगर इस का प्रयोग करें तो उन्हें क्षय होजाने का डर है परन्तु कइयों के विचार में गरम पानी क्षय नहीं पैदा कर सकता। वह कहते हैं कि जब तक इस पानी की गरमी दिल तक पहुंचने के पश्चात् दिल की गरमी से अधिक न होगी दिक़ नहीं हो सकता। और दिल की गरमी के सम्बन्ध में यह बात कही गई है कि जीवित मनुष्यों के दिल पर अगर मनुष्य हाथ रक्खे तो उस की गरमी सहार नहीं सकता। फिर ऐसा पानी जो दिल तक पहुंचते २ भी उस की गरमी से अधिक गरम हो इन्सान क्योंकर पी सकता है।

ऊपर वर्णन किये रोगों के अतिरिक्त गरम पानी के अति प्रयोग से सिर भारी होना, तिल्ली का बढ़ना, खून की कमी, नकसीर इत्यादि रोग पैदा हो जाते हैं, आमाशय सुस्त हो जाता है।

गरम पानी मतली पैदा करता है, आमाशय को निर्बल करता है क्योंकि अपनी ऊष्मा और आर्द्रता के कारण आमाशय को ढीला करता है जिस से आमाशय निर्बल हो जाता है और आहार को भली भांति नहीं पचा सकता। इस के अतिरिक्त और भी हानियां हो जाती हैं। इस लिये शीतोष्ण जल का सेवन ठीक नहीं।

धूप में गरम किया हुआ पानी—अपने गुणों से कुष्ठ रोग उत्पन्न करता है, विशेष कर यदि गरम देश में ग्रीष्म ऋतु में ताम्र

पात्र मे गरम किया हो । इस के अतिरिक्त इस से दूसरे रोग भी उत्पन्न होते हैं । इस लिये धूप के गरम किये हुये जल से बचना चाहिये । क्रोमोपेथी में जो धूप पानी को देकर रंगत का प्रभाव पहुंचा बोतलों में रक्खा जाता है वह ठण्डा होने पर औषधि के रूप में सेवन करना चाहिये ।

नोट— जानना चाहिये हम ने पहिले जो गरम पानी के गुण दोष वर्णन किये हैं वह ऐसे जल से तात्पर्य्य है जो औटाया हुआ हो और ऐसा हो कि आसानी से पिया जा सके ।

अब हम आयुर्वैदिक पुस्तकों से ऐसे जल के गुण कर्म लिखते हैं जो औटाकर आधे चौथाई तक पहुंचा दिये जायें फिर चाहे वह ठण्डे हो जायें ।

आरोग्योदक—ऐसे पानी को कहते है जो इतना औटाया जाये कि चौथाई रह जाये । ऐसा पानी कास, श्वास को दूर करता है, सदा लाभदायक है, वात का नाश करता, नये ज्वर को शीघ्र उतार देता है । और मेद, कफ़ नज़ला, उदरशूल, बातगुल्म तथा अर्श को गुणकारी है, जठराग्नि को बढ़ाने वाला, पाण्डु रोग शोथ, को दूर करने वाला है । ज्वर के आरंभ में सदा इस को देना चाहिये । पानी उबाला जाने के पीछे अपने आप ठण्डा हो जाये । रात्रि का बनाया रात्रि को और दिन का बनाया दिन को सेवन करना चाहिये ।

उष्ण जल—जब पानी उबालते हुये आधा रह जाये उस को उष्ण जल कहते हैं । उष्ण जल भी सर्वथा पथ्य है । कास, ज्वर, कोष्ठबद्धता, वात, कफ और अतिसार को लाभ देता है और रात्रि को पिया हुआ गरम पानी अपाचन को गुणकारी है ।

यदि गरम पानी पकते पकते एक चौथाई जल कर तीन चौथाई रह जाये तो वह पानी पित्त का नाश करने वाला और जब पकते पकते चौथाई रह जाये तब वह कफ का नाश करने वाला, हलका, जठराग्नि को बढ़ाने वाला होता है ।

अन्य गुण—उष्ण जल रात्रि को पिया हुआ कफ, आमवात और मेद रोग का नाशक है, मूत्राशय को शुद्ध करता है और दीपन

है, कास, श्वास और ज्वर को गुणकारी है।

ऋतुअनुसार उष्ण जल—उबाल कर पानी पीने वाले को पानी कभी हानि नहीं पहुंचाता है। ऋतुओं के विचार से ऐसा लिखा है। हेमन्त और शिशर ऋतु में वह उष्ण जल पीना चाहिये जो पकते २ तीन चौथाई शेष रहे। बसन्त ऋतु में वह सेवन करना चाहिये जो पकते २ चौथाई भाग रह जाये। शरद और ग्रीष्म ऋतु में जो पानी पकते २ आधा रह जाये सेवन करना चाहिये, परन्तु वर्षा ऋतु में जल निकृष्ट होता है इस लिये इस ऋतु में वह जल सेवन करना चाहिये जो पकते २ आठवां भाग रह जाय। कतिपय लोगों का मत है कि ग्रीष्म और शरद ऋतु में तीन चौथाई शेष रहने पर और हेमन्त ऋतु, शरद ऋतु, वर्षा ऋतु, और वसन्त ऋतु में आधा रह जाने पर सेवन करना चाहिये।

औटाये हुये पानी के सम्बन्ध में सावधानी—दिन का औटाया हुआ पानी रात को भारी हो जाता है और रात का औटाया हुआ पानी दिन में भारी हो जाता है, इस लिये रात का औटाया हुआ जो पानी ठण्डा हो जाये वह दिन में नहीं पीना चाहिये और जो पानी दिन में औटा कर रात को ठण्डा हो जाये वह रात को नहीं पीना चाहिये।

नोट—(१) जो पानी औटाया हुआ अपने अपने आप ढके हुये बरतन में ठण्डा हो जाये वह वात पित्त कफ के प्रकोप का नाश करता है। तात्पर्य यह है उस को पंखे इत्यादि से ठण्डा नहीं करना चाहिये।

(२) औटाकर ठण्डा किया हुआ पानी हल्का होता है। न रूखा है न कफ करने वाला और न वायु के दोष उत्पन्न करने वाला है।

औटाकर ठण्डा किया हुआ पानी स्वच्छ, निर्मल, हल्का ठण्डा मधुर, पथ्य, दीपन पाचन और श्वास, कास, हिचकी, अफारा, नये ज्वर को दूर करता है, मूत्राशय को शुद्ध करता है, हृदरोग को लाभदायक है, पसली की पीड़ा और उदर शूल को लाभ देता है और गोला, अरुचि और पीनस रोग में उत्तम है।

अन्य गुण—औटाकर ठण्डा किया हुआ पानी कफ वात और पित्त रोग में रक्त पित्त में मूर्छा, उबकाई, ज्वर, जलन, प्यास, शुक्र क्षीणता, विष सन्निपात रोग और विशेष कर कोष्ठबद्धता में गुण-कारी है !

नोट—(१) औटाकर ठण्डा किये हुये पानी को दूसरी बार गरम नहीं करना चाहिये क्योंकि गरम किये हुये पानी को फिर से गरम करके सेवन करने से विष के समान हानि होती है।

(२) गरम पानी पागलपन, जलन रक्त पित्त आदि रोगों में हानिकारक है।

यूनानी हकीमों के जोश दिये हुए जल के सम्बन्ध में भिन्न २ विचार हैं।

अतः बहुत से हकीम कहते हैं कि जल को जोश देने से जल सूक्ष्म हो जाता है और इस के दुर्गुण दूर हो जाते हैं। शैख़ का भी यही सिद्धांत है। चुनांचि वह अपने अनुभव के आधार पर कहते हैं कि प्रथम तो जोश दिया हुआ जल कम अफारा करता है और आमाशय से शीघ्र हलका हो जाता है। (ये दोनों गुण सूक्ष्मता के हैं) दूसरे जोश दिया हुआ जल न जोश दिये हुए जल से भार में हलका होता है यह भी सूक्ष्मता के गुण हैं॥

इस के विरुद्ध कई हकीम कहते है कि जल पकने से अधिक स्थूल हो जाता है। क्योंकि जब जल उबाला जाता है तो उसका कोमल और सूक्ष्म भाग भाप बनकर उड़ जाता है (इसलिये कि कोमल भाग ही भाप बनने के योग्य होता है) और जिस समय कोमल परमाणु प्रथक हुए तो जो शेष रहेगा वह अवश्यमेव कठोर और स्थूल स्वभाव का होगा क्योंकि उस पर पार्थिव परमाणु अधिक होंगे और यह बात प्रत्यक्ष है कि इन जलों में से कोई पार्थिव परमाणुओं से खाली नहीं होता अतएव जोश देने से अधिक कठोरता आ जाती है। और जो बोझ के हलके होने और न्यून अफारा उत्पन्न करने के सम्बन्ध में कहा है उस को हम नहीं मानते हैं कि सब जलों में पाया जाए जैसा कि अनुभव से सिद्ध है।

उपरोक्त सिद्धान्त का शेखुलरईस इस प्रकार खण्डन करते हैं कि भाप बनकर उड़ने वाला जल निस्सन्देह कुछ सूक्ष्म और कोमल होता है परन्तु भेद बहुत नहीं है। क्योंकि प्रायः अमिश्रित होने के कारण संयुक्त परमाणुओं में ऐक्यता रखता है और वह जल जो कि जोश देने के अनन्तर शेष रहता है यद्यपि वह उस जल से स्थूल होता है जो भाप बनकर उड़ गया है परन्तु उस अवस्था की अपेक्षा जो पकाने से पहिले थी सूक्ष्म है। और जानना चाहिये कि जल में दो कारणों से स्थूलता होती है एक सरदी से दूसरे मट्टी के परमाणुओं के मिलने से। पकाने से जल की सरदी में कमी आना प्रत्यक्ष है। और मट्टी के परमाणु गुरू होकर जल से जुदा हो जाते हैं और नीचे बैठ जाते हैं। अतएव अवश्य ही जल सूक्ष्म हो जाता है। और यही बिल्कुल ठीक है।

उपरोक्त दो प्रतिकूल सिद्धान्तों के उद्धृत करने के अनन्तर 'मुफ़र्रहउलक़लूब' के लेखक इस प्रकार दोनों की अनुकूलता प्रकाशित करते हैं कि जल में मट्टी के परमाणु दो प्रकार से मिलते हैं, एक तो ऐसे कि जल में मट्टी के परमाणु अधिकता से न मिले हों जैसा कि वह जल जो स्वभाविक शुद्ध पवित्र हो परन्तु उस में वाह्य परमाणु मिलकर मलीन और कठोर हो जायें। इस में संदेह नहीं कि ऐसा जल जोश देने से सूक्ष्म होता है। दूसरे इस प्रकार कि जल में मट्टी के परमाणु अधिकता से मिले हों और उनका जुदा होना दुष्कर हो जैसा कि धात्विक जल और सामुद्रिक जल। ऐसे जल स्वभाविक स्थूल होते हैं और पकाने से अधिक स्थूल हो जाते हैं। पकाने से पहिले जल का सूक्ष्म होना और दूसरे जल का स्थूल होना प्रथम युक्तियों से प्रगट है।

जलपान के सम्बन्ध में आवश्यक बातें

किस समय जलपान वर्जित है ?

जिस २ समय जलपान वर्जित है वह सात समय हैं—

(१) निराहार— इस समय में जलपान करना कष्ट दायक है क्योंकि आमाशय खाली होने के कारण जल पीते ही बिना किसी विलम्भ के अपने शीतल गुण से शरीर के सारे अंगों में ऐसा बीज

बो देगा जो जीवन वृक्ष को प्राकृतिक आयु तक न पहुंचने देगा और जो कुछ समय बीतने पर निर्जीव सा कर देगा। निहार मुंह पानी पीने से सब से बड़ी हानि यह होगी कि इस से पुरुषत्व का नाश होगा, उदर शूल होने लगेगा, जठराग्नि कम हो जायगी। यदि यह यकृत में सो गया तो शोथ होने का भय है। पट्ठे, आमाशय, यकृत, प्लीहा और फुफ्फुस इत्यादि सब के लिये अत्यन्त हानिकारक होगा। इस लिये निहार मुंह पानी न पीना चाहिये। परन्तु वह बात सो कर उठते ही टट्टी जाने से पहले ५ या ७ घूंट पानी के घूंट घूंट करके पीने के लिये नहीं है। वह पानी स्वास्थ दायक होता है। टट्टी के पीछे ही यदि आवश्यकता हो तो ५-७ घूंट पी लेने में कोई हानि नहीं। हानि निहार मुंह अधिक जल पी लेने में है।

(२) अधिक श्रम के पीछे-व्यायाम, परिश्रम, संभोग या धूप चलने से शरीर गरम हो जाता है और उस को दूर करने के लिये पानी की आवश्यकता होती है। परन्तु इस से पूर्व कि उस की गरमी दूर हो जाय इस को पी लेने से अवयवों में जाकर ऐसी ठन्डक पहुंचायेगा जिस से अनेक प्रकार के कष्ट होंगे. जठराग्नि कम हो जायगी। तीव्र धूप में तेज़ चलते हुए आते ही ठन्डा पानी पीने से कई समय मृत्यु तक हो जाती है।

संभोग से तो अवयवों के गरम हो जाने से वीर्य्य भी निकलता है। इस कारण शोषण अंगों में निर्बलता, हृदय की गति धीमी पट्ठों का कार्य ढीला, इन सब बातों के पैदा हो जाने से हानि बिला रोक टोक अपना कार्य्य कर जाती है। बातकंप, सुन्न, जोड़ों की पीड़ा इत्यादि रोग मुहं चमका देते हैं जो बहुत ही बुरे हैं।

(३) हमाम में या उस के पश्चात—कुछ अदूरदर्शी लोग हमाम में या उससे फ़ौरन बाहर आकर बेधड़क गट २ ठण्डा जल पी जाते हैं और यह ख्याल नहीं करते कि ऐसी दशा में पानी पीना बहुत ही हानिकारक है, और विशेष कर ख़ाली पेट स्नान करते समय। कारण इसका वही है जिस का नं० २ में उल्लेख हो चुका है॥

(४) विरेचन के पश्चात् वर्जित है—यह बात स्पष्ट है कि विरेचन में रतूबतें निकल जाने से खुश्की बढ़ जाती है और माद्दा

के निकल जाने से शरीर में उष्णता और प्राण शक्ति में निर्बलता और क्षीणता आ जाती है। इसलिये यदि दस्त के बाद पानी पिया जायेगा तो वैसा ही हानि पहुंचायगा जैसा प्रसंग के पश्चात् पीने से हानि पहुंचती है। तथा दस्त के मध्य में भी पानी पीना वर्जित है, क्योंकि बाज़ औषधियों के प्रभाव में हानि पहुंचाता है॥

(५) तर फलों पर पानी पीना वर्जित है--फलों का नाम और साधारण जल को इकट्ठा करना जाति विभिन्नता और गुण विभिन्नता के कारण हानिकारक समझा जाता है और क्या आश्चर्य कि शोथ और घाव इत्यादि का कारण बन जाये। तरबूज़ इत्यादि तो अधिक जल वाले और शीघ्र ही गल जाने वाले भी होते हैं, इस लिये उत्तम यह मालूम होता है कि जब तक यह चीज़ें आमाशय (मेदे) से न गुज़र जायें पानी न पीना चाहिए॥

(६) सोते समय या रात्रि को जागने पर पानी पीना वर्जित है--यद्यपि इस समय पानी पीना वर्जित है परन्तु यदि कोई उष्ण प्रकृति का हो या गरमी के दिन हों, या भोजन सोने से थोड़ी देर पहले किया हो तो उनके लिए पानी पीना वर्जित नहीं है। किन्तु घूंट २ करके पियें। इस दशा में मानसिक रोग नज़ला प्रतिश्याय इत्यादि पैदा हो जाते हैं। यदि ऐसी दशा में पानी पीने से पहले गंडूष कर लिया जाये और थोड़ा पानी पैर के पंजों पर डालकर उस के बाद पानी पियें तो हानि की आशंका कम होती है॥

(७) भोजन से पूर्व या पीछे भी जल पीना वर्जित है--

भोजन से पूर्व जल पीने से जठराग्नि मंद पड़ जाती है और भूख बंद हो जाती है। किन्तु यदि प्रकृति गर्म हो तो उस को पानी पीने से भूख भी लग आती है। यदि भोजन के पश्चात् पिया जाय तो उससे पेट में भोजन का परिपाक भले प्रकार नहीं हो पाता, लेकिन गर्म प्रकृति वाले के लिये हानिकारक नहीं है। भोजन से पूर्व हिन्दू लोग जल से तीन बार आचमन करते हैं, जो कि बहुत ही गुणकारी है। इस से जठराग्नि प्रज्वलित हो जाती है, रास्ता गीला हो जाता है। ऐसे ही भोजन के पश्चात् भी तीन आचमन किये

जाते हैं, लेकिन साधारणतः भोजन के मध्य में जल का पीना हितकर है। इस के अतिरिक्त आरम्भ या अन्त में हानिकारक है, यद्यपि आवश्यकता पड़ने पर आरम्भ और अंत में भी पी सकते हैं। एक आयुर्वेदिक पुस्तक में लिखा है कि भोजन के आरम्भ में पानी पीने से पाचन शक्ति निर्बल हो जाती है और कमज़ोरी आ जाती है और भोजन के मध्य में पिया हुआ जल रसायन है और भोजन के अंत में पिया हुआ जल हानिकारक होता है। आमाशय में कफ़ अधिक पैदा होता है, और मोटापा होता है॥

झूठी प्यास में भी पानी न पीना चाहिए।

विदित हो कि प्यास दो प्रकार की होती है। एक सच्ची होती है जिस में शरीर के सारे अवयवों को पानी की आवश्यकता होती जिस से जो आर्द्रतायें शरीर में पच गई हैं उनके स्थान की पूर्ति करें और गरमी और शुष्क को दूर करें और जो ऐसी न हो उस को झूठी प्यास कहते हैं। झूठी प्यास कफ या पित्त आमाशय में जमा हो जाने से लगती है, इसलिये तबीयत इन खराब माद्दों को आमाशय से धोने के वास्ते पानी चाहती है, और उस का गुण है कि ठण्डा पानी पीने से बढ़ती है, लेकिन यदि ऐसी प्यास पर धैर्य धरें या सो रहें, ठण्डा पानी न पियें तो शान्त हो जाती है, क्योंकि वह माद्दा बैठ जाता है। इस प्यास को भी झूठी ही कहते हैं और उसी प्रकार की है जो कि भोजन के पश्चात् पानी पीने पर भी लगती रहती है। तथापि पानी पीने का बन्धन इस वास्ते किया गया है कि वह प्यास जो भोजन के पश्चात पानी पीने से पहले लगती है, वह सच्ची प्यास होती है। झूठी प्यास में पानी पीना बहुत हानिकारक है, बल्कि झूठी प्यास को ठण्डी हवा में सांस लेने और पानी की कुल्लियों से शांत करना चाहिये, और जो प्यास मद्यसेवियों को रात के समय प्रायः प्रगट होती है, उसको भी सच्ची और झूठी कहने में मतभेद है। सुतरां बाज़ लोग कहते हैं कि बर्फ़ यद्यपि ऊपर से ठण्डी मालूम होती है परन्तु प्रकृति उस की गरम है क्योंकि वह भाप कणों का सम्मिश्रण है। बर्फ़ के भीतर पहुंचने पर उस की ठण्डक शरीर की उष्णता से दूर हो जाती है

और उस की गरमी प्रभाव करती है। अतः जो प्यास बर्फ के पीने से फिर मालूम होती है वह सच्ची प्यास है इस के विपरीत बाज़ कहते हैं कि बर्फ़ का प्यास लगाने का कारण यह है कि वह कफ और अमाशय की आर्द्रता को गाढ़ा करने वाली है, इस लिए यह प्यास झूठी है। इसी प्रकार वह प्यास जो गाढ़ी और गरिष्ठ चीज़ों यथा मछली ताज़ी, कल्ला इत्यादि के खाने से पैदा होती है, उससे प्यास के पैदा होने का कारण यह है कि वह अपने गाढ़पन के कारण तंग रास्तों में चिपट जाती है, जिससे पानी यकृत की ओर जा नहीं सकता। निस्सन्देह वह प्यास सच्ची है, क्योंकि अवयवों को पानी की आवश्यकता होती है, और यदि प्यास इस कारण से लगती है कि तबीयत को इस बात की आवश्यकता होती है कि गाढ़ी वस्तुओं को आमाशय से सूक्ष्म और पतला करके निकाले तो उस प्यास को भी बाज़ लोग झूठी प्यास कहते हैं, लेकिन कुछ लोग उसे सच्ची प्यास कहते हैं और युक्ति यह देते हैं कि तबीयत गाढ़े मादा को खारिज करने के लिये हरारत को आमाशय की ओर आकर्षित करती है, फलतः प्यास मालूम होती है। इस में सन्देह नहीं कि वह सच्ची है न झूठी। सुतरां इस बात का भी उपाय यही है जो कि झूठी प्यास का है। वाहिष्करण और सूक्ष्मकरण में प्रायः ऐसी प्यास पानी के बार २ सेवन से दूर हो जाती है, विपरीत उस प्यास के जो कफ और गाढ़ापन से होती है कि ऐसी दशा में पानी पीने से प्यास अधिक हो जाती है, क्योंकि इससे मूल कारण को सहायता मिलती है॥

उपरोक्त अवसरों के अतिरिक्त चिन्ता, शोक और क्रोध के पश्चात् तत्काल ही, और ऐसी दशा में जब कि भूख बहुत अधिक लग रही हो पानी पीना हानिकारक है। कतिपय लोग पर्य्यटन काल में भी बिना रोक टोक बहुत सा पानी पी जाते हैं और हानि उठाते हैं, बल्कि बाज़ दफ़ा तो मृत्यु तक हो जाती है, इस लिए जब तक आध घण्टा आराम न किया जाय पानी पीना हानिकारक है॥

पानी पीने का ढंग।

पानी को धीरे २ घूंट २ करके पीना चाहिए, गट २ करके पेट भर लेना अच्छा नहीं है। बीच २ में अवकाश के समय पानी के

बर्तन को अपने होठों से दूर हटा दिया जाय। यदि ऐसा न किया जायगा तो सांस गंदी हवा पानी में मिलकर बुरा प्रभाव करेगी। मुंह पर चुल्लू लगाकर ऊपर से पानी डाल कर पीने का ढंग अच्छा नहीं है, जैसा कि हिन्दुओं में विशेष कर पियाऊ पर इसी प्रकार पानी पिलाया जाता है। इस प्रकार कभी २ फेफड़ों की नाली में पानी पहुंच कर बड़े कष्ट का कारण होता है॥

मुसलमानों में यह एक साधारण प्रथा है कि वे एक ही बर्तन से हज़ारों आदमी पानी पीते हैं और यह नहीं समझते कि पानी पीने से मुख की लार बर्तन के किनारे पर लग जाती है। यदि उस मनुष्य को जिसकी लार बर्तन में लगी है, कोई सांसर्गिक रोग हो तो इस प्रकार पानी पीने से दूसरे को भी रोग होजाने की अधिक संभावना है। अतः इस प्रकार पानी पीने की प्रथा से उपदंश व कुष्ठ इत्यादि रोग एक दूसरे में लग जाते हैं, इसलिये एक बर्तन से कई आदमियों का पानी पीना हानिकारक है। कम से कम इस बात की तो अवश्य सावधानी रखनी चाहिये कि बर्तन किसी सांसर्गिक रोगी का जूठा न हो।

जल पात्र।

पानी पीने का बर्तन साफ़, खुला हुआ, और सफ़ेद होना चाहिये जिसमें जल की समस्त चीज़ें दिखाई पड़ें, और ख़राब वस्तुओं के मिश्रण का भेद खुल जाय, और शकल उसकी ऐसी हो जिसमें पानी कम आये और दिखाई ज्यादा दे। इस से यह लाभ होता है कि तृषा शांत हो जाती है और पानी कम पिया जाता है। कटोरों का आविष्कार किसी विद्वान् ने शायद इसी दृष्टि से किया था। कांसी के कटोरे में यह सारे गुण विद्यमान होते हैं। इस समय गिलास इस प्रकार के प्रचलित हैं जो उस शकल के नहीं होते। चीनी, ताम चीनी, मुरादाबादी गिलास, पीतल और कांच इत्यादि के गिलास में बड़ी उन्नति हो रही है परन्तु कटोरों से इसको उत्तम नहीं समझते हैं। पीतल के गिलास तो वैसे हानिकारक है, और इनमें पानी का प्रभाव ख़राब हो जाता है। हां कांच के अच्छे होते हैं, क्योंकि इन में जल के गुण दोष भली भांति ज्ञात हो जाते हैं॥

सोने चांदी के बर्तन में पानी पीने से हृदय की पुष्टि होती है, इस से हृदय की निर्बलता इत्यादि को लाभ पहुंचता है। पीतल या तांबे के बिना क़लई किये हुए घड़ों में पानी देर रक्खा रहने से खराब हो जाता है, परन्तु स्मरण रहे कि तांबा के बर्तन में पानी के कई विष दूर हो जाते हैं, हैज़ा इत्यादि के कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। वैद्यक में तांबा के बर्त्तनों में पानी रखने के कई गुण लिखे हैं, परन्तु इसका लाभ यह है कि पानी जब ताज़ा निकालते हैं, तो उसको तांबे के बर्त्तन में डालते हैं। थोड़ी देर के बाद वह दूसरे बर्तन में रखा जाता है, परन्तु यदि दिन भर उसमें पानी रहे, तो फिर तांबा की तेज़ी असर कर जाती है। इस बात को भली भांति समझ लेना चाहिये ॥

दो भिन्न जलों को मिलाना वर्जित है।

अनुभवी लोगों ने दो भिन्न प्रकार के जलों को मिलाना बर्जित कहा है। अतः नहर का पानी और कूयें का पानी आमाशय में जमा न करना चाहिए। हां यदि एक पानी आमाशय से गुज़र चुका है तो दूसरा पानी पीने में कोई हानि नहीं। क़र्शी ने शरह क़ानून में लिखा है कि हमने कई बार अनुभव से मालूम किया है कि दो भिन्न २ प्रकार के जलों के मिश्रण से वायुविकार इत्यादि पैदा हो जाता है, जिसका कारण यह है कि दोनों पानी गुरुता और सूक्ष्मता में भिन्न होते हैं क्योंकि यह बात विदित है कि कूयें का पानी स्थूल और नहर का पानी सूक्ष्म होता है, अतः इस प्रकार कूयें का पानी, वर्षा का जल, और नदी या नहर का जल परस्पर मिलाना वर्जित है, परन्तु चूंकि नहर या नदी के पानी और वर्षा के जल में थोड़ा अन्तर है इसलिए इनका मिश्रण भी कम हानिकारक है।

उपरोक्त कथन के अनन्तर मालूम होना चाहिए कि दो कूओं के जल के मिश्रण से भी जो कि गुरुता और सूक्ष्मता में विभिन्न वायु-विकार उत्पन्न हो जाता है। कभी २ यात्रा में जब भिन्न २ कूओं के पानी पीने का अवसर हो जाता है तो ऐसी दशा में खांसी भी हो जाती है।

अच्छे और ख़राब जल की परीक्षा विधि ।

जैसा कि पहिले ही उल्लेख किया जा चुका है अच्छा पानी वह है जिसमें किसी प्रकार की अन्य वस्तुयें मिश्रित न हों और ख़राब पानी में इसके विपरीत दूसरी वस्तुयें भी मिली होती हैं। ऐसे पानी का वज़न शुद्ध जल के वज़न से ज्यादा होता है, इसलिए अब हम दोनों प्रकार के जलों की परीक्षा करने की विधि लिखते हैं ताकि पीने वाला आवश्यकता के समय इनसे काम ले सके ॥

यदि जल में सड़ांद हो किसी प्रकार की दुर्गन्धि पाई जाये, या उसका रंग बदला हुआ हो, या उसके स्वाद में फ़र्क़ हो, तो हम श्रवण शक्ति या स्वाद शक्ति (रसना) द्वारा उसकी ख़राबी और अशुद्धि होना मालूम कर सकते हैं, और यह एक सुगम रीति है, जिसमें किसी प्रकार के कष्ट की आवश्यकता नहीं, परन्तु यदा कदा जब नमकें जैसा कि पहले उल्लेख हो चुका है मिली हों तो जल में कोई वाह्य अन्तर नहीं मालूम होता, और हमारी विवेक शक्ति उसमें कोई भेद नहीं पा सकती, इसलिए ऐसी दशा में पूर्ण रूप से निश्चित करने के लिए कुछ अन्य विशेष साधनों की आवश्यकता पड़ती है, विशेष कर उस समय जब कि उस जल को चिर-काल तक व्यवहार करने का मौक़ा हो ॥

जल साफ़ करने की कई वैज्ञानिक रीतियां हैं। और सख्त और नर्म पानी की पहचान का उल्लेख गतांक में हो चुका है, परन्तु जो विधि प्रत्येक मनुष्य उपयोग में ला सकता है वह लिखना आव-श्यक है। इन तरीक़ों में से एक तरीक़ा यह है कि एक गिलास में एक बार एक पानी को और दूसरी बार दूसरे पानी को बहुत साव-धानी के साथ वज़न किया जाय। यदि किसी जल में खनिज अथवा अन्य पदार्थ अधिक होंगे तो उसका वज़न उस पानी से जिसमें यह वस्तुयें कम होंगी अथवा बिल्कुल न होंगी, भारी होगा ॥

दूसरी विधि यह है—कि दो जगह सम तौल रेत या मिट्टी लेकर उन दोनों पानियों में तर करके ख़ुश्क कर लिया जाय और फिर वज़न करके मालूम किया जाय कि मिट्टी या रेत का वज़न

ज्यादा है। जिसका वज़न अधिक होगा वह इस बात का द्योतक है कि जो पानी मेरे शरीर में गया है, उसमें भौमिक अंशों का अधिक भाग है॥

तीसरी विधि यह है—कि रुई के दो समतोल गाले इन दोनों पानियों में भिगो कर खुश्क कर लिए जावें और फिर उन्हें वज़न कर लिया जाये। जो गाला वज़न में ज्यादा होगा उसका पानी अपेक्षाकृत खराब होगा क्योंकि मिट्टी या दूसरे खनिज पदार्थ पानी के खुश्क होने के बाद उसमें शेष रह जायेंगे और गाले के वज़न को ज्यादा कर देंगे॥

ख़राब जल को शुद्ध करने की रीति।

(१) खराब जल को शुद्ध करने की एक विधि यह है कि पहले उसको खूब जोश दें। इसके पश्चात् ठण्डा होने पर सोना, चांदी, लोहा, पत्थर और बालू को गर्म करके सात बार उसमें बुझावें, फिर उम्दा मिट्टी के कोरे बर्तन में रख कर चमेली, कपूर, पुन्नाग और पाटल इत्यादि के सुगन्धित फूलों और खस इत्यादि सुगन्धित वस्तुओं से सुवासित करके फिर कपड़े में छान लें यह पानी साफ़ हो जाता है॥

(२) कोयला पीस कर पानी में मिला कर रख दें। पानी के तमाम मलों को लेकर कोयला तह में बैठ जायेगा और पानी साफ़ हो जायेगा।

(३) खालिस चिकनी मिट्टी या रेत को पानी में मिला कर रख दें, तमाम मलों के साथ नीचे बैठ जायेंगी और पानी साफ़ हो जायगा॥

(४) पानी को किसी पात्र में डालकर एक फिटकिरी की डली चंद बार उसमें फेर दें, पानी साफ़ हो जायगा॥

(५) निर्मली बीज बारीक घिस कर पानी में मिला दें, पानी साफ़ हो जायगा॥

(६) पानी का अर्क खींच लिया जाय, क्योंकि जब पानी का अर्क खींचा जायगा तो उसके स्थूल पदार्थ शेष रह जायंगे, और सूक्ष्म पदार्थ भाप का रूप धारण करके टपकेंगे और यह पानी निस्सन्देह खालिस पानी होगा॥

(७) पानी को फ़िल्टर द्वारा निथार लिया जाये। यह किसी ऐसी चीज़ के द्वारा होना चहिए जो स्थूल और अतरल पदार्थों को अपने छिद्रों से बाहर न जाने दे और सूक्ष्म व तरल वस्तुओं को बाहर जाने से रोके। यह कभी २ रेत द्वारा फ़िल्टर किया जाता है, और कभी कोयलों से। परन्तु कपड़े से छानने से भी यह अर्थ सिद्ध हो सकता है, यदि कपड़े के छिद्र बहुत ही बारीक हों। कपड़े को चन्द तहों में कर लिया जाये। अंगरेज़ी फ़िल्टर इसी ढंग पर बनाए जाते हैं। मसामदार एक बोतल से पानी गुज़र कर साफ़ हो जाता है। कोयले भी पानी को फ़िल्टर करते हैं।

(८) पानी को एक देग में डाल कर उसके मुंह पर लकड़ियां रक्खें और उसके ऊपर साफ धुनी हुई रूई इस तरह रख दें कि उस देग का मुंह बिल्कुल ढक जाये। इस के पश्चात् देग के नीचे आग जलायें। इससे भाप उड़ कर रुई में जायेगी और पानी बन कर देग के नीचे टपकती जायेगी। पानी को देखते रहें जिस समय पानी मीठा मालूम हो रुई को उठा कर एक बर्तन में निचोड़ दें। इस प्रकार जितना चाहे लें। इस प्रक्रिया से खारी तलख़ पानी मीठा हो जाता है॥

(९) यदि नदी का पानी खारी हो और उसको साफ़ और मीठा करना चाहें तो उसकी विधि यह है कि उसके किनारे बड़ा गढ़ा खोदें ताकि पानी उसके अन्दर टपक आए। उसके बाद उसके बग़ल में एक बड़ा गढ़ा खोदें, ताकि उस गढ़े से उस गढ़े में पानी टपक आए। सारांश यह कि इस प्रकार पानी को ३--४ गढ़ों में बदल दें, यहां तक कि पानी में मिठास पैदा हो जाये। यदि भूमि भी खारी हो दूसरे साफ़ गढ़े खोद कर यह अमल करें॥

(१०) गदले पानी के साफ़ करने की विधि यह भी है कि उनमें पीले आलू की गुठली बारीक पीस कर मिला दें या खरिया मिट्टी सत्तू गेहूं थोड़ी फिटकिरी बारीक साथ मिला कर रख दें तो पानी साफ़ हो जाता है और यदि अच्छी लकड़ी का दहकता हुआ कोयला लेकर पानी में बुझाएं तो उससे भी पानी शुद्ध हो जाता है॥

नोट—खराब जलों के शोधन और पानीलाग के वास्ते प्याज़ रामबाण है। हरड़ भी बहुत ही उपयोगी है। सोंठ का इस्तेमाल भी खराब पानियों के असर को दूर करता है॥

अशुद्ध जल

अशुद्ध जल उस पानी को कहते हैं जिसके अन्दर खनिज द्रव्य इतनी अधिकता से मिले हों कि उसके गुण और प्रभाव में परिवर्तन हो जाये। अशुद्ध जल प्रायः चश्मों से निकलता है, परन्तु आवश्यकता के समय हर कोई उसे तैयार भी कर सकता है, उदाहरणतः आमाशाय और यकृत की बाज़ बीमारियों में वह प्राकृतिक जल उपयोगी होता है जिसमें लोहांश शामिल हों। यदि किसी जगह यह जल प्राप्त न हो सके और तबीयत को उसके सेवन करने की आवश्यकता हो तो वे लोहे को तपा कर जल में बुझा कर काम में ला सकता है। इस रीति से लोहे के बारीक कण पानी में मिल जातेहैं और यह जल वही लाभ पहुंचाता है जो कि प्राकृतिक जल पहुंचाता है, जिसमें स्वभावतः लोहांश मिले हों, परन्तु जैसा नक़ली और असली चीज़ में अन्तर होता है वैसा ही इन कृत्रिम जलों में अन्तर पाया जावेगा॥

नोट—ख्याल पैदा हो सकता है कि लोहादि के अंश एक दूसरे से ऐसे मिले होते हैं कि जल में डालने से कोई ऐसा असर नहीं पहुँच सकता। इसके समझने के वास्ते मालूम होना चाहिए कि लोहे इत्यादि को आग पर लाल कर लेने से उसके अन्दर नर्मी पैदा होती है या दूसरे शब्दों में यह समझना चाहिए कि उसके सूक्ष्म कणों में एक दूसरे से पृथक होने की समता हो जाती है (इसी कारण जब उसे हथौड़े से कूटा जाता है, तो उसमें लाल २ चिंगारी निकलती दिखलाई देती है) और जब इस गर्म लोहे को ठण्डे पानी में डालते हैं तो उसके बहुत बारीक कण जल की ठण्डक के कारण सिमट कर उस लोहे के बड़े खण्ड से अलग होकर पानी में मिल जाते हैं। यही कारण है कि जल का स्वाद भी बदल जाता है। इस पानी को यदि ठीक वज़न किया जाय तो साफ़ पानी की अपेक्षा इसका वज़न कुछ अधिक होगा। जितने ही बुझाव अधिक दिए

जायेंगे उतना ही उसके वज़न में अन्तर होता जायेगा। इसी तरह तुम यदि चाहो तो दूसरे खनिज द्रव्य मिश्रित जल भी बना सकते हो ॥

पानी के अन्दर खनिज द्रव्य अन्य लवणों इत्यादि से मिलाकर भस्म की भांति होकर भी मिल सकते हैं ॥

साधारणतः सिद्धांतरूप से यह बात समझ लेनी चाहिए कि जो खनिज पदार्थ पानी में मिल कर चश्मे से निकलते हैं उसके जो गुण होंगे लगभग वही इस जल के भी होंगे । और इस दृष्टि से हर एक पानी के गुण विशिष्ट रूप से वर्णन करने की आवश्यकता नहीं, तथापि लेख क्रम को पूर्ण करने और पाठकों की सुविधा के वास्ते उनके गुण भी संक्षेप से वर्णन करेंगे ॥

यह बात भी स्मरण रखनी चाहिए कि खनिज पदार्थ जब कि जल के साथ मिल कर बहता है तो उनके बाज़ दोषों का इस दशा में प्रायः निराकरण हो जाता है, जिसके तीन कारण होते हैं:—

(१) उनके अंश जो जल में मिश्रित होते हैं, जलांश की अपेक्षा बहुत ही कम होते हैं और जब यह जल पिया जाता है, तो उनका बहुत अल्पांश पानीके साथ मनुष्यके शरीर में जाता है। ऐसी दशा में स्पष्ट है कि उनकी हानि (जो कुछ भी हो) उसी अनुपात में कम होना चाहिये जो उनकी मात्रा से सम्बन्ध रखती है ॥

(२) ये खानिज पदार्थ प्रायः उष्ण और तीक्ष्ण होते हैं, परन्तु जब ये पानी के साथ मिलकर बहते हैं तो जल उनकी उष्णता और तीक्ष्णता को एक उचित सीमा तक दूर कर देता है ॥

(३) पानी इन खनिज पदार्थों को भली भांति शरीर के भीतरी मार्गों में ले जाता है, और इस प्रकार उन पदार्थों के गुण बहुत ही शीघ्र पूर्णरूप से प्रगट होते हैं। उदाहरणतः यदि कोई बद्धता के ख्याल से किसी प्रकार का नमक फांका जाय तो यह नमक आमाशय में अधिक समय तक रहेगा और उसकी थोड़ी मात्रा अंत्रियों तक पहुंचेगी और क़ब्ज़ पर इतना प्रभाव नहीं डालेगी जितना प्रभाव कि इसी प्रकार के नमक का पानी डालेगा (यदि इन दोनों अवस्थाओं में लवणांश की मात्रा समान हो) क्योंकि यह पानी आमाशय से जल्द उतर जायगा और अपने साथ मिली हुई वस्तुओं को सावधानी के साथ अंत्रियों तक पहुंचा

देगा। इसके अतिरिक्त पानी अपनी तरलता के कारण अंत्रियों के मलको साफ़ करने में उन नमकीन पदार्थों का सहायक होगा। इसी वास्ते तो खनिज जल विलायती बोतलों में बन्द लाखों रुपयेके बिक रहे हैं। हर एक चशमा के पानी के भिन्न २ गुण छिपे हुये होते हैं। इसके साथही यह भी ज्ञात होना चाहिये कि यह खनिज वस्तुयें जैसे कि अपने दोषोंको जल द्वारा कम कर लेती हैं उसी प्रकार उनके गुण भी कम हो जाते हैं। नमक ही को देखो कि उसमें अनुविच्छेद (छोटे छोटे टुकड़े करना) और स्वच्छ करने की शक्ति होती है जो पानी मिलने से कम हो जाती है। तीन माशा नमक यदि बिना पानी के फांका जाय—तो उसका अणुबिच्छेद आमाशय में घुलने के बाद उस तीन माशा नमक से अधिक होगा, जो सेर या दो सेर समुद्र के पानी में पाया जाता है ॥

साधारणतः—जो खनिज चशमे पाये जाते हैं या जो पानी किसी खनिज भूमि पर बहते हैं, यद्यपि उनकी संख्या अधिक है, परन्तु हम सिद्धान्त की व्याख्या के लिये चंद आवश्यक बातें लिखते हैं:—

स्वर्णजल—स्वर्णजल उस पानी को कहतेहैं जिसमें सोने का अंश सम्मिलित हो। ऐसे पानी पीने से घबराहट,धड़कन, उन्माद इत्यादि दूर होते हैं। हृदयको बल प्राप्त होता है। इन्हीं बातोंके लिये पानी में सोनेको बुझा कर भी देते हैं, जिससे अच्छा लाभ पहुंचता है। बच्चोंको जब चेचक निकलनी शुरू होती है तो इस अभिप्राय से कि अच्छी तरह निकल आये यही पानी देते हैं, जो बहुत ही लाभकारी होता है। बल्कि चेचक उभर कर फिर बैठने लगती है तबभी इस पानी को दोबारा उभारने के लिये देते हैं ॥

रौप्य जल—रौप्य जल उसे कहते हैं जिसमें चांदी का अंश हो। इसके गुण भी स्वर्ण जल जैसे होते हैं परन्तु शक्ति में उससे कुछ घट कर है। जब किसी रोगी को घबराहट के साथ प्यास भी अधिक होती है तो चांदी का बुझा हुआ पानी सरदी और खुशकी सम्यक रूपसे पैदा करता है ॥

वंग जल—रांगका पानी (चाहे वह प्राकृतिक हो, चाहे सीसा या रांग को गरम करके पानी में बुझाया जाय) क़ाबिज़ है और

परिणाम शूल का उत्पादक है और मूत्र अवरोधक है, और कुछ एक चिकित्सकों की राय में अंत्रियों में घाव भी पैदा करता है।

ताम्र जल—इस जल का प्रयोग वाह्य चिकित्सा में करना चाहिये। इसका पानी किसी प्रकार भी समुचित नहीं है, क्योंकि इसके पीनेसे अंत्रियों और आमाशय इत्यादि में खाज पैदा हो जाता है। प्यास और गर्मी मात्रा से अधिक बढ़ जाती है परन्तु यदि इसे बाहरके लेप इत्यादि में इस्तेमाल किया जाये तो कई रोगों में लाभदायक होता है।

(१) मुंहके दांतोंके लिये हितकर है (२) कौवे के शोथके लिये लाभदायक है (३) कर्ण पीड़ा में लाभ पहुंचाता है (४) आमाशय, यकृत और प्लीहा को बल प्रदान करता है (५) जलोदर के लिये भी उपयोगी है।

लोहजल—यह आमाशयको शक्तिदायक है। निर्बल यकृत को बलवान बनाता है। बढ़े हुये प्लीहा को घटाता है। कुछ २ बाजीकरण भी है। इसके अलावा सामान्य आन्तरिक अवयवों को शक्ति प्रदान करता है। उन्मादको दूर करता और रंग को निखारता है। कुछ चिकित्सकों ने लिखा है कि अंत्रियों के घाव के लिये हितकर है। यह दस्त के लिये बहुत उपयोगी होता है। बार २ पेशाब आने के लिये भी लाभ दायक है। इससे सिर धोने से बाल सुदृढ़ और मज़बूत होते हैं।

गन्धकका जल—यह पानी गरमी खुश्की पैदा करता है, कब्ज़को हितकर है, हिचकी भाई, और त्वचाकी खुश्की को लाभदायक है, यदि इसमें नतूल किया जाय या इसमें बैठा जाय। ऐसी खुजली को जिसमें छाले पड़कर घाव बन जाते हैं इस पानी से धोना गुणकारी है। संधिपीड़ा को भी हितकर है। यकृत प्लीहा गर्भकोष (रहम) के रोगों के लिये भी उपयोगी है। घुटने की पीड़ा को भी लाभ पहुंचाता है। मस्सोंको दूर करता है। इस में नहानेसे हिंसक पशुओंके काटने से जो घाव होजाते हैं दूर होते हैं। गंधक के पानीसे वे उदर कृमि जो वातज सड़े हुए माद्दा से पैदा होते हैं निकल जाते हैं।

यदि इस पानी में वे स्त्रियां नित्य आधा घंटा बैठा करें, जिन्हें गर्भाशय की आर्द्रता के कारण गर्भ नहीं रहता, तो उनको गर्भ रह सकता

है। इस जल से नहाना 'शग्मूस' के लिये जो एक दिमागी रोग है, लाभदायक होताहै। पट्ठों को नर्म और गर्म रखता है। परन्तु आमाशय के लिये अच्छा नहीं है और नेत्रों को भी हानि पहुंचाता है। दोनों प्रकार के (भुस) वायु के लिये यह एक अच्छी दवा है।

खारी जल-खारी जल शरीर को दुबला और त्वचा को खुश्क करने वाला है। विलायती चश्मों के पानी अक्सर मोटापे को कम करने के वास्ते ही इस्तेमाल होते हैं। क़ब्ज़ के वास्ते भी बर्तते हैं। पहले पहल दस्त लगता है, लेकिन जब अधिकता से इस्तेमाल किया जाय तो क़ब्ज़ पैदा करता है। क़ब्ज़ को दूर करने का कारण तो यह है कि यह पानी अपनी प्रज्वलन और सूक्ष्मकारिणी शक्ति द्वारा मलों को दूर कर देता है, और अन्त्रियों की शमन कारिणी शक्ति को प्रगति देता है। अधिकांश वैद्य जब किसी औषधि से वस्ति कर्म कराते हैं तो पहले खारी जल (गुलरोग़न इत्यादि मिला कर) से वस्ति कर्म कराते हैं। इसके बाद दूसरी औषधि से वस्ति कर्म करते हैं। खारी जल के वस्ति कर्म को अन्य दस्तावर औषधियों द्वारा वस्ति कर्म के साथ वही सम्बन्ध है जो जुलाब के साथ होती है। यह खारी पानी उन मलों को, जो अन्त्रियों में चिमटे हुए होते हैं, और उन में जो रास्ते में हल हो जाते हैं, उन को पतला बना देता है, जिस से वे अपेक्षाकृत अधिक सुगमता से निकल आने योग्य हो जाते हैं।

खारी पानी आख़िर में क्यों क़ब्ज़ करता है इसका कारण यह है कि यह गर्म, खुश्क प्रज्वलनकारी, सूक्ष्मकर्त्ता होने के कारण शरीर की तरी (रतूबत) को कम करके खुश्की अधिक करता है जिसस कब्ज़ का होना अनिवार्य है।

खारी पानी से ऐसा भी होता है कि पहले तमाम मल निकल आते हैं और फिर दूसरे ही दिन क़ब्ज़ हो जाता है। इसका कारण यह होता है कि पहले दिन मल आसाधारण तौर पर अधिक निकल जाते हैं, और दूसरे दिन के लिये अन्त्रियों में इतना जल नहीं रहता कि तबीयत को उनके दूर करने की ओर ध्यान हो। इसके अतिरिक्त दूसरा कारण वही क्षार की खुश्की है।

खारी पानी से रुधिर खराब हो जाता है और खुजली पैदा होती है, लेकिन नमकीन पानी में रहने से खुजली दूर हो जाती है और त्वचा के नीचे जमा हुआ रुधिर पच जाता है। दर्दों के लिये गुणकारी है, और पट्ठों के रोग यथा कंपकंपी, फ़ालिज और जमूद आदि में उपयोगी होता है। यदि किसी मनुष्य को कोई विषैला जानवर काटे तो समुद्र के पानी (गर्म किये हुये) में बैठने से पीड़ा और जलन दूर हो जाती है।

अधिकांश प्रकार के दर्दों में शीतोष्ण जल में रोगी को बिठाने से पीड़ा शांत हो जाती है।

नौशादरी जल–दस्त लाता है, चाहे उसे पियें, या उस में बैठें। वस्ति कर्म के लिये अत्यन्त उपयोगी है, विकृत मवादों को खूब अच्छी तरह साफ़ करता है यकृत रोग और प्लीहा के लिय बहुत ही लाभदायक है।

फिटकिरी दार जल–यह पानी क़ाबिज़ है, दस्तों को रोकता है समय से पूर्व जिस मनुष्य का शरीर ढीला और शिथिल हो जाय, उसको बल और दृढ़ता प्रदान करता है, क्योंकि उसका यह गुण है कि मांस को खुश्क करता है, इसी वास्ते शरीर को दुबला करने वाला है। आर्तवाधिक्य, रक्तार्श और रक्त वमन के लिये भी हितकर है। कभी २ मूत्राशय में कुर्ती पैदा करता है और क़ब्ज़ के कारण अंत्रियों में खुश्की पैदा कर देता है। वमन (क़ै) के लिये भी हितकर है, लेकिन फिटकरी के पानी से स्नान करने से एक प्रकार की पित्त हो जाती है, और पीने से ज्वर हो जाता है। यह सुद्दों के पैदा करने के कारण है, जो कि सड़ांद के कारण है, विशेषतया ऐसे मनुष्यों में जिन के शरीर में यह ज्वर पैदा करने के अंकुर हों और ऐसे पुरुष वे होते हैं जिन के मूत्राशय तंग हों और प्रकृति गर्म हो।

ज़फ्ती जल–यह एक खनिज वस्तु है, जो काले रंग की होती है। इसके तरल भेद को जिसे किश्तियों पर जल से सुरक्षित रखने के लिये लगाते हैं 'क़ैर' कहते हैं। इसका जल पीने से सुद्दे खुलते हैं, और शरीर मोटा होता है तथा शरीर का रंग लाल हो जाता है, परन्तु शिर में बोझ और चित्त में उद्वेग पैदा करता है। साधा-

रण घावों और फेफड़े के पुराने घावों को इस से लाभ पहुंचता है, परन्तु अंत्रियों में घाव करता है। गर्मी के दानों पर लगाने से उनको दूर करता है। इसका संशोधक गोंद कीकर और खरिया मिट्टी है।

नफ्ती जल—नफ्त एक प्रकार की रतूबत है जो ज़मीन से जोश खाकर स्वयं ही बाहर आ जाती है। इसके गुण जफ्ती जैसे हैं, मगर केवल इतना ही अंतर है कि नफ्ती उससे तीव्र होता है॥

कड़वा जल—यद्यपि यह उपरोक्त जल की क़िस्मों में शामिल नहीं किया जा सकता, लेकिन चूंकि इसमें भी अन्य पदार्थों के अंश मिले होते हैं जिससे पानी कड़वा हो जाता है, इसी लिये इसका वर्णन किया है। कड़वा जल सुद्दों को खोलता है, स्थूल दोषों को सूक्ष्म करता और रुधिर को बिगाड़ता है। इसका शोधक शक्कर और शहद है। इसके अतिरिक्त उबालने से भी इसका संशोधन हो जाता है।

समुद्र जल—के वही गुण हैं जो खारी जल के वर्णन किये गये हैं, बल्कि उससे अभिप्राय अधिकतर समुद्र जल से है लेकिन चूंकि खारी जल का नाम उन तमाम जलों पर लागू है जो खारी होते हैं इस लिये खारी जल लिखना उचित समझा गया। इसके अतिरिक्त खारी जल से तात्पर्य अधिकतर समुद्र जल से होता है॥

नई साइन्स के मत से जल में क्या २ सम्मिलित रहता है।

डाक्टरी विधि से जल का एनेलेसिस करके जो अंश ज्ञात करते हैं तो वह उस में देख सकते हैं कि गन्धक, नवशादर, आयोडीन, क्लोरीन, चूना इत्यादि के कितने २ अंश हैं। यदि उचित परिमाण में हों तो वह सेवन योग्य हैं, नहीं तो नहीं।

शुद्ध जल में हाइड्रोजन और आक्सीजन यही दो अंश अपने नियम परिमाण में मिलने चाहियें। परन्तु बात यह है कि इस के अतिरिक्त भी कुछ मिलावटें पानी में पाई जाती हैं और इसका कारण यह है कि प्रकृति में जो बहुत सा जल वर्तमान है सच्चे मानों में वह

शुद्ध नहीं है। "शुद्ध और अशुद्ध" जल का केवल सापेक्ष गुण है, नहीं तो शुद्ध जल संसार में नहीं है। जिसे हम लोग शुद्ध जल कहते हैं उससे तात्पर्य्य यही होता है कि इस में जो मिलावट है उसका परिमाण या गुण इतना अधिक या खराब नहीं है कि वह साधारण जनों के स्वास्थ्य को हानि पहुंचा सके। अशुद्ध जल इसके बिपरीत प्रभाव रखता है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि हर वह पानी जिस में अधिक मिलावट हो मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक ही हो। जल में जो विविध अंशों की मिलावट पाई जाती है इसके परिमाण का निर्भार इस पर है कि वह कहां से प्राप्त किया गया है। यह तो वर्णन हो चुका कि लगभग सारा जल जो हमारे सेवन में आता है सीधा या हेतु द्वारा समुद्र से प्राप्त होता है। सूर्य्य की उष्णता से समुद्र की लहरों से वाष्प उठती है और बादल के रूप में आकाश पर उड़ती है। यही वाष्प पहाड़ों या ठन्डे स्थानों की ठन्डी वायु से टकरा कर जम जाती है और मेघ कणों के आकार में भूमि पर गिरती है। यही वर्षा का जल नदियों, स्रोतों, झीलों इत्यादि में आजाता है। जब समुद्र का जल वाष्प बनता है तो उसके भीतर जो लवण होता है वह वहीं रहजाता है और जो भाप बनती है उस में लवण नहीं होता। परन्तु वायु में जो विविध गैसें और नवशादर के लवण होते हैं उनके कुछ अंश उनमें आजाते हैं। इसके अतरिक्त नगरों के आस पास जो कोयला जलाया जाता है उससे सलफ्यूरिक एसिड के अंश भी सम्मिलित होजाते हैं। झील का जल अपेक्षाकृत शुद्ध होता है विशेष कर पहाड़ी नगरों में ढोर डंगर, खेती बाड़ी और पुतली घरों के कारण से गन्दगी कम फैलती है फिर भी उनमें बहुत से लकड़ी के खनिज अंश सम्मिलित हो सकते हैं। नदी के जल में मिलावट पहले तो उस भूमि से प्राप्त होती है जिस पर वह बहते हैं, दूसरे खेतों और कारखानों इत्यादि के कूड़े कर्कट से। जिन कुंवों का जल भूमि से तनिक सा खोदने पर ही निकल आता है अर्थात् जो गहरे नहीं वरन् उथले होते हैं उनमें भी प्रथमोल्लेख दो हेतुओं से मिलावट होती है। स्रोतों और गहरे कुंवों का जल अवश्य अपेक्षाकृत बहुत स्वच्छ होता है और इस का कारण यह है कि जल भूमि तक जाते २ बहुत तहों से छन कर अच्छा हो जाता है और

उस में छूत और गन्दगी नहीं रहती। परन्तु इस प्रकार भूमि की भिन्न २ तहों में से गुज़रने पर उस में घुले हुये लवणों का पर्याप्त परिमाण मिल जाता है।

प्राकृतिक जल के भिन्न २ भेदों को ३ समूहों में विभाजित किया गया है (१) वर्षा का जल, (२) नदी का जल, (६) स्रोतों का जल जिस में समुद्र का जल और खनिज जल भी सम्मिलित है।

वर्षा के जल में अर्थात् उस पानी में जो वर्षा में भूमि पर गिरने से पहले एकत्रित कर लिया गया हो तेज़ाबों और घुलने वाले लवणों का बड़ा परिमाण पाया जाता है। इन मिलावटों से उस स्थान के वायु मण्डल की अवस्था ज्ञात हो सकती है जहां जल एकत्रित किया हो। यह लवण और तेज़ाब नगरों के आस पास के जलों में मिलते हैं। समुद्र के निकट यदि इस प्रकार वर्षा का जल एकत्रित किया जाये तो इस में क्लोराइड्ज़ (chlorides) की मात्रा अधिक होगी।

नदी के जल में जो मिलावट पाई जाती है उसकी मात्रा और क़िस्म भिन्न २ नदियों, भिन्न २ स्थानों, और भिन्न २ समय में भिन्न २ होती है। नदी के जल में प्रायः उन चटानों के महीन कण पाये जाते हैं जो नदी के मुख के पास होते हैं। जूं २ इस में दूसरी नदियों का जल मिलता है इन ठोस परमाणुओं की मात्रा कम होती जाती है। आज कल नदियों में अधिकतर नगरों की गन्दगी और कारख़ानों का कूड़ा ककंट मिला होता है।

स्रोत जल में घुले हुये परमाणु बहुत होते हैं। कई स्रोतों के जल में घुलने वाले ठोस परमाणुओं का परिमाण नाम को होता है और कई में यह इतना अधिक होता है कि प्रति गेलन जल में २०० ग्रेन तक पहुंच जाता है। स्रोतों के जल अपनी मिलावटों की अधिकता के विचार से १ या अधिक भेदों में विभक्त हैं। यह भेद निम्न-लिखित हैं :—

(क) कार्बोनेटेड—ऐसे जल में जो खनिज पदार्थ घुला होता है वह अधिकतर कार्बोनेट्स (Carbonates) होते हैं। इन में विशेष कर जो खनिज कार्बोनेट्स (Carbonates) सम्मिलित होते हैं उनके विचार से इस के चार भेद हैं (१) एलकेलाइन जिस में एलकेलीज़

के कार्बोनेट्स की प्रधानता होती है। मैगनेसीयन जिसमें मैगनेसियम के कार्बोनेट्स की अधिकता होती है, (३) कैलकेरियस जिस में कैलसियम कार्बोनेट्स की अधिकता होती है, (४) कैलपियट जिस में आइरन के कार्बोनेट्स की अधिकता होती है।

(ख) सल्फ़ेटिक—ऐसे जल में जो खनिज पदार्थ घुला होता है उस में विशेष कर सल्फ़ेट्स सम्मिलित होते हैं।

(ग) क्लोरिनेटेड—ऐसे जल में विशेष कर क्लोराइड्ज़ सम्मिलित होते हैं। ऐसे जल के भी ४ भेद होते हैं जैसे कि कार्बोनेटेड हैं।

(घ) सल्फ़यूरेटेड—ऐसे जल में सल्फ़ाइड्ज़ या सल्फ़यूरेटेड हाइड्रोजन का अधिक परिमाण होता है।

समुद्र का जल ऐलकेलाइन क्लोरिनेटेड होता है। भिन्न २ समुद्रों के जलों में भिन्न २ परिमाण में घुले हुये ठोस पदार्थ होते हैं। खुश्की के निकट या खुश्की से घिरे हुये समुद्रों में बड़े २ समुद्रों की अपेक्षा कम परिमाण में घुले हुये ठोस पदार्थ होते हैं। अनुमान किया गया है कि कृष्ण समुद्र में १७६० प्रति १० लाख बालटिक समुद्र के जल में १७७० प्रति १० लाख और ऐटलान्टिक समुद्र में ६६,००० प्रति १० लाख अंश की दर से ठोस पदार्थ पाये जाते हैं। समुद्र के जल में जो पदार्थ मिले हुये पाये जाते हैं विशेष कर सोडियम, मैगनेशियम, और पोटासियम् के क्लोराइड्स और सल्फ़ेट्स और पोटासियम और कैलसियम के ब्रोमाइड्ज़ और कार्बोनेट्स होते हैं।

यह ज्ञात करने के लिये कि जो पानी घरों में सेवन होता है सेवन योग्य है या नहीं चन्द विशेष बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है जो निम्नलिखित हैं :—

(१) पानी किस प्रकार और कहां से प्राप्त होता है।

(२) पानी में घुले हुये ठोस पदार्थों का परिमाण।

(३) आर्गैनिक पदार्थों की मिलावट, और

(४) बहाव अथवा जहां से पानी प्राप्त होता है उस स्थान का प्रभाव पानी पर।

प्रथमोक्त पर विचार करते समय यह देखना चाहिये कि मार्ग में गन्दगी इत्यादि तो उस में सम्मिलित नहीं हुई थी और आया

किसी प्रकार छूत तो नहीं लग गई। जिस भूमि पर पानी बहा है उसका गुण भी ज्ञात करना चाहिये। पानी में घुले हुये ठोस पदार्थ का परिमाण कितना है, इस का अनुमान इस प्रकार हो सकता है कि एक प्लाटीनम के कटोरे में तोल कर रक्खा जाये और उस को वाष्प से उष्ण करके उड़ा दिया जाये। वाष्प बन जाने के बाद जो वस्तु कटोरे के तले में बैठ आयेगी उस को तौलने से आवश्यक मात्रा ज्ञात हो जायेगी।

परन्तु केवल घुले हुये ठोस पदार्थ के परिमाण ही से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि पानी सेवन योग्य है या नहीं। इस के लिये दूसरी बातों के ज्ञान की भी आवश्यकता है। यह जानने के लिये आया पानी में आर्गैनिक पदार्थों के हानिकारक प्रभाव तो नहीं चले गये हैं निम्न लिखित बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये।

(१) क्लोरीन की मात्रा का अनुमान, चाहे वह हाइड्रोक्लोरिक एसिड के रूप में हो या क्लोराइड के रूप में।

(२) एमोनिया की मात्रा का अनुमान।

(३) नाइट्राइट्स की मात्रा का अनुमान और (४) यदि आवश्यक हो तो विषैली धातुओं की पहचान और उन का अनुमान।

क्लोरीन के बड़े परिमाण से यह ज्ञात होता है कि जल में पाशिवक पदार्थ की छूत घुल गई है।

शुद्ध जल के गैलन में ३ या ४ ग्रेन से अधिक क्लोरीन नहीं होता। इसलिये यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि जो पानी ऐसी भूमि पर बहता है जिस में क्लोराइड्ज़ की अधिकता होती है उस में क्लोरीन की मात्रा अधिक पाई जाती है। हां! जिस पानी में पहले क्लोरीन बहुत कम हो या बिल्कुल वर्तमान न हो और बाद में क्लोरीन मालूम हो उस के विषय में समझना चाहिये कि उस में पाशिवक छूत मिल गई है।

पानी में ज़रा सा सोडियम कार्बोनेट डाल कर उसे उष्ण कर के टपका लेने से एमोनिया प्राप्त हो सकता है। जब यह सब एमोनिया निकल आय तो इस के बाद पोटासियम परमैंगनेट का

एक हलका सा सुल्यूशन मिला कर पुनः उष्ण कर के बाष्प उड़ाने से और एमोनिया निकलता है। प्रथम बार जो एमोनिया निकलता है उस को फ्री एमोनिया और दूसरी बार के निकले हुये एमोनिया को एल्ब्यूमेनायड एमोनिया कहते हैं। एलब्यूमेनायड एमोनिया की थोड़ी सी मात्रा भी बुरी है क्योंकि यह तमाम खारी परमैंगनेट या पाशिवक और उद्भिद पदार्थ के प्रभावों को प्राप्त करता है। शुद्ध जल में अधिक से अधिक १० प्रति १० लाख दर से "फ्री एमोनिया" और ८ प्रति १० लाख की दर से एल्ब्यूमेनायड एमोनिया" के अंश हो सकते हैं, इस से अधिक नहीं। यदि नाइट्रोजीनस पदार्थ जल गये हों उस से नाइट्रिक और नाइट्रस एसिड पैदा होते हैं। इन तेज़ाबों अथवा इन के लबणों की बिद्यमानता इस से पहले किसी आर्गेनिक पदार्थ की छूत लग जाने को प्रगट करती है। परन्तु यह वस्तुयें स्वयं हानिकारक नहीं हैं इस लिये इनका अधिक होना भी जल को सेवन के अयोग्य नहीं बना देता।

किस ऋतु में कौनसा जल व्यवहार करना चाहिये

वैद्यक पुस्तकों में लिखा है कि हेमन्त ऋतु (पौष, माघ) में चश्मे और तालाब का पानी पीना उत्तम है। और यही पानी शिशिर ऋतु में भी लाभदायक है। बसंत ऋतु (फाल्गुण, चैत्र) और ग्रीष्म ऋतु (वैशाख, ज्येष्ठ) में कूयें बावली और झरने का पानी पीना चाहिये। बसंत और ग्रीष्म ऋतु में नदी का पानी न पीना चाहिये क्योंकि इस मौसम में पतझड़ होता और इन पत्तों के मिलने से नदी का पानी ख़राब हो जाता है। वर्षा ऋतु (आषाढ़, श्रावन) में चश्मा, वर्षा या कूयें का पानी पीना चाहिये। और शरद ऋतु (भाद्रपद, आश्विन) में नदी का पानी, और साफ़ किया हुआ पानी इस्तेमाल करना चाहिये। इसका मतलब यह है कि इस ऋतुके अन्दर अमुक प्रकार का जल अधिक उत्तम होता है, और जिस ऋतु में जो जल वर्जित है, अगर उसको पीना पड़े तो सावधानी से उबाल कर या साफ़ करके पीना चाहिये॥

किस मास में कौनसा जल व्यवहार करना चाहिये ।

पौष के महीने में सरोवर (चश्मे) का जल, माघ के महीने में तालाब का पानी, फाल्गुन के महीने में कूयें का, चैत्र के महीने में बावली का, वैशाख के महीने में झरने का, ज्येष्ठ के महीने में चश्मे का, आषाढ़ मास में कूयें का, श्रावण मास में वर्षा का जल गर्द और मिट्टी साफ होने के बाद पिया जावे । भाद्र मास में कूयें का, आश्विन के महीने में झील और कार्तिक तथा मार्गशीर्ष के महीने में तमाम पानी इस्तेमाल कर सकते हैं ।

पापोदक—वैद्यक पुस्तकों में रोग उत्पन्न करने वाले पानी को पापोदक कहा जाता है । जैसे—दुर्गंधित, कृमियुक्त, पत्ते, काई, कीचड़ आदि से बिगड़ा हुआ, बुरे रंग का, बुरे स्वाद का, घास तिनके आदि से ढका हुआ, खराब भूमि का जल जिस पर चन्द्रमा तथा सूर्य की किरणें न पड़ती हों, असमय की वर्षा का, तथा किसी गढ़े में पड़ा हुआ सड़ा पानी बरसना नहीं चाहिये । यह पानी सब शरीर को बिगाड़ देता है और खराब है । इस प्रकार के जल के पीने तथा स्नान करने से प्यास, पेट का फूलना, उदर रोग, ज्वर, खांसी, मन्दाग्नि, खुजली गलगंड आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं । प्राणियों को जल एक आवश्यक वस्तु है । इस को किसी अवस्था में रोकना योग्य नहीं । कई पशु ऊंट आदि कई दिन पानी बिना गुज़ारा कर सकते हैं । मनुष्य खाने के बिना रह सकता है परन्तु जल बिन नहीं रह सकता । चालीस २ दिन के लंघन में जल की कोई रुकावट नहीं कर सकता । सर्प इत्यादि कई प्राणी जल बिना रहते हैं । कहते हैं मेंडक को खेचरी मुद्रा आती है इस लिये वह गर्मियों में बिना अन्न जल के कितने ही दिनों तक रह सकता है । खेचरी मुद्रा भारतवर्ष में योगी लोग इस तरह करते हैं कि जीभ को उलटा कर गले में डाल देते हैं उस से मस्तिष्क से जो एक तरह का रस जीभ पर टपकता है जो भूख प्यास को बहुत समय तक नहीं उत्पन्न होने देता । ऐसा ही योग शास्त्र में लिखा है कि (कंठ कूप क्षत पिपासा निवृत्ति) अर्थात् कंठ में संयम करने से भूख प्यास नहीं लगती किन्तु यह असाधारण

है। कई पशु या योगियों को छोड़ कर और सब प्राणधारियों को जल की अत्यंत आवश्यकता रहती है और सुश्रुत में लिखा है वैद्य को किसी भी अवस्था में रोगी को पानी की मनाही नहीं करनी चाहिये। कई वैद्य किसी २ रोग में जल को रोक दिया करते हैं। यह ठीक नहीं इससे नुक़सान होता है। ज्यादा तृष्णा लगने पर बेहोशी अथवा मृत्यु तक नौबत पहुँच जाती है। जहां कहीं जल के वास्ते मना हो वहां किसी न किसी तरह से जल का थोड़ा शरीर में जाना आवश्यक है। कई जगह सामान्य जल के स्थान में औटाया ऊष्ण जल को उबाल षष्ठ या चतुर्थांश रहने पर काम में लाना चाहिये। शोथ जलोदरादि में जल के स्थान में सौंफ आदि का अर्क़ काम में लाना चाहिये। हैज़ा में पानी एक दम नहीं पिलाया जाता, थोड़ा २ उबाला हुआ या कोई अर्क़ पिलाया जाता है। भोजन के समय बहुत पानी पीना भी मना है। बहुत पानी पीने से अन्न देर तक कड़ा रहता है गलता नहीं। यदि बिल्कुल पानी नहीं पीवें तो भी खुश्क देर तक पड़ा रहता है। कई मनुष्यों को देखा है भोजन के समय पानी नहीं पीते और स्वस्थ हैं। इस से यह आशय नहीं कि भोजन में जल की ज़रूरत नहीं किन्तु वह भी शाक दाल द्वारा जल अन्दर पहुँचा ही लेते हैं। अतः भोजन के बीच में थोड़ा पानी अवश्य पीना चाहिये। हिन्दू शास्त्रों में भोजन के साथ पानी पीने की यह रीति बताई है कि भोजन के पहिले तीन आचमन लेवे अर्थात् आचमन लेने से गला आदि शुद्ध हो जाता है। ऐसे ही भोजन के पश्चात् तीन आचमन करे। भोजन मध्य में कुछ जल पियें। तथा भोजन जब पच जावे तब अर्थात् तीन घंटे बाद जल पियें। इस तरह जो मनुष्य करता है उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है तथा उसको उदर विकार कभी नहीं होता। भोजन के तीन घंटे बाद से भोजन के एक घंटे पहिले तक जितना जल चाहे पी सकते हो। केवल इतना याद रखना चाहिये कि जितना पानी पिया जावे धीरे २ बार २ पिया जावे। धीरे २ घूंट घूंट पानी पीने से जल ज्यादा नहीं पिया जाता किन्तु परिमाण से आवश्यकतानुसार ही पिया जायेगा। भोजन के मध्य में जल इस वास्ते पिया जाता है कि उस समय उष्णता (पित्त) ज्यादा रहता है। पित्त में ही जल ज्यादा

खपता है भोजन पूर्व जल पीने से भूख कमती लगती है अर्थात् मन्दाग्नि हो जाती है और अन्त में पीने वाला मोटा हो जाता है। रात्रि को जल पीना शास्त्रों में निषिद्ध है।

कहते हैं कि रात को पानी पीना बहुत बुरा है और वास्तव में स्वस्थ मनुष्य रात को पानी पीते भी कम हैं। कोई खास खराबी होने से ही रात को प्यास लगती है। यदि स्वस्थ मनुष्य रातको सोवे तो प्रातः काल ही निद्रा खुल जाती है। प्रातःकाल उठते ही रात को साफ़ कर रक्खे हुए बासी पानी को चंद घूंट पी लेने से पाखाना खुल कर आता है और कई रोगों से सुरक्षित रखता है।

एक स्थान पर लिखा है कि भोजन को पचाने के लिये थोड़ा थोड़ा पानी पिया जावे, तो वह दवा का काम देता है। भोजन पच जाने के पश्चात जो जल पिया जाता है वह बलदायक होता है। भोजन के मध्य बिल्कुल थोड़ा जल पिया जाये तो वह अमृत तुल्य है, और रात्रि के समय जल विष के समान है।

हर अमीर घर के लोग यदि ताम्रके बड़े पात्र रक्खें और पानी जब पिया जाये तो पहले दो घंटा उनमें भरकर फिर दूसरे बर्तन में डाल ले, परन्तु नीचे का थोड़ा सा जल छोड़दें, तो यह जल अमृत तुल्य है। तांबा जल के बहुत से दोषों और कीटाणुओं को मार देता है और नीचे खींच लेता है और फ़िल्टर का काम देता है। भारतवर्ष में जल के लिये ताम्र पात्र रखने की साधारण प्रथा थी, संभवतः महंगा होने से अब यह प्रथा कम होगई है यद्यपि पूजा पाठ के बर्त्तन अभी तक तांबे के होते हैं।

कोई समय था कि लोगों के घरों में सोने चांदी के बर्त्तन अधिकता से पाये जाते थे, अब ताम्र पात्र भी अधिक रखना कठिन है। यह समय का फेर है।

शुद्ध जल दुष्प्राप्य है

इससे भी बढ़कर खराबी यह है कि शुद्ध जल हर एक स्थान पर मिलना कठिन हो गया है। ऐसे स्थान भी हैं जहां पवित्र और निर्मल जल के झरने परमात्मा ने बना दिये हैं, और हम लोग ऐसे पवित्र झरणों के जल के लिये तरसते हैं॥

दूसरी तरफ़ उनके समीप ही रहने वालों को बहते नालों के पानी पीकर गलगंड आदि रोगों में ग्रस्त होना पड़ता है। कई बेचारों को जोहड़ों आदि का जल पीकर नार्वा आदि कई रोगों का शिकार होना पड़ता है और उनके अन्दर सुर्खी कभी आती ही नहीं है। कहते हैं अफ़रीका के जंगलों में मीलों पानी नहीं मिलता रेत के नीचे वहां ईश्वर ने ऐसे तरबूज़ पैदा किये हैं कि एक २ तरबूज़ दर्जनों मनुष्यों की प्यास को बुझाता है। कई केले की क़िस्म के ऐसे वृक्ष मार्ग में मिल जाते हैं जिनको चाकू से छेदने से पानी निकल आता है, और उसी को पीकर प्राणरक्षा करनी पड़ती है। अफ्रीक़ा की मरुभूमियों का नमूना यहां भी मौजूद है। बीकानेर आदि की ओर जाओ, वैसी ही अवस्था है। कई रेगस्तान में तरबूज़ ही यात्रियों की रक्षा करता है। बीकानेर का एक आदमी पहली बार पंजाब में आया और नहर चलती देखी तो चकित होगया क्या यह सब पानी ही है? ऐसे कुओं से जो १००-१०० गज़ गहरे होते हैं। मुश्किल से एक डोल पानी का निकालने वाले मनुष्य के लिये सचमुच यह एक आश्चर्यजनक दृश्य था कि इतनी लम्बी चौड़ी नहर रात्रि दिन बराबर जारी रहे।

बंगाल इत्यादि कई प्रान्तों, कई गावों में सिवाय बड़े २ तालाबों के और कुछ भी नहीं होता है। वर्षा का जल वहां जमा हो जाता है उसी से कपड़े साफ़ करते हैं उसी में स्नान करते हैं, उसी से पशु पानी पी जाते हैं, उसी से पीने के लिये जल लेते हैं। भारत जैसे गर्म देशों में, जहां पानी के बिना गर्मियों में दो दिन भी जीवित रहना कठिन है, जहां गर्मियों में पसीने के कारण दिन में कई बार ठण्डे जल से प्यास बुझाने की आवश्यकता होती है, ऐसे देश में कई जगह जल का अभाव परमेश्वर की लीला है या हमारे कर्मों का फल।

जल हमारे लिये जीवन की आवश्यकताओं में दूसरे दर्जे पर है। तमाम पशु पक्षियों वरन् बनस्पतियों को भी इसकी वैसी ही आवश्यकता है। जिस वर्ष देश में जल कम बरसता है, घास फूस कम होता है, अन्न भी कम होता है, माल मवेशी अधिक मरते हैं प्रत्येक वस्तु महंगी होजाती है। गर्मियों में जब समय पर बर्षा न हो,

हर एक वृक्ष, बेल बूटे के रूप रंग से यह प्रगट होता है कि जल एक नियामत है, जिसके बिना हम जीवित नहीं रह सकते हैं।

जल केवल पीने ही के काम नहीं आता है, बल्कि संसार की सारी शुद्धता इसी पर निर्भर है। पानी से हम कपड़े धोते हैं, अपने बर्तन साफ़ करते हैं। प्रकृति सारे संसार को वर्षा के जल से धोती है। भारत में तो करोड़ों ऐसे मनुष्य हैं जो बिना स्नान किये कुछ खाते ही नहीं हैं। वे इसको एक धार्मिक कृत्य समझते हैं। इन सब कार्यों के वास्ते भी शुद्ध जल चाहिये। ऐसे स्थानों के लोग, बड़े भाग्यशाली हैं जहां परमेश्वर ने यथेष्ट मात्रा में जल प्रदान दिया है।

जल ख़राब न करो।

निर्धनता भी बुराइयों की जड़ है, अतः स्वास्थ्यरक्षा के सम्पूर्ण नियमों का पालन बेचारे भारतबासी नहीं कर सकते हैं परन्तु निर्धनता को छोड़ कुछ लापरवाही भी अधिक है। पढ़े लिखे सज्जनों को चाहिये कि अपने अनजान भाइयों को हिदायत करते रहा करें, जिससे उन्हें भी प्रतीत होता रहे कि वह जानते हुए कितना दुःख व कष्ट अपने पास बुला रहे है, और दूसरों की व अपनी हानि करके पाप के भागी हो रहे हैं। जो लोग जानते हुए भी अशुद्धियां करते हैं उनको भी अधिक सावधान होना चाहिये। 'मेरा कार्य होना चाहिये चाहे अनुगामियों को कष्ट ही हो' यह अत्यन्त स्वार्थपूर्ण उक्ति है। सब का भला चाहना और सब की भलाई में अपनी भलाई समझना ही सच्ची मनुष्यता है। निम्नलिखित बातों का सब ध्यान रक्खें तो अत्यन्त लाभ होगा :—

(१) पीने वाले जल, तालाब बावली कूएं के पास मल मूत्र का कभी त्याग न करें। पशु आदि को ही वहां अधिक गन्दगी फैलाने दें। इन का भी असर होता है और कई बेर पानी के साथ या पृथिवी के रास्ते यह वस्तुएं पीने वाले जल में मिल जाती हैं। इनके अन्दर नहाना भी बुरा है। शरीर का मैल पसीना, यदि व्रण (ज़ख्म) हो तो उसकी पीप वा खून पानी में मिलकर इसको

अत्यन्त मलीन कर देते हैं। खाद आदि के ढेर भी ऐसे स्थानों पर नहीं होने चाहियें।

(२) पेय जल में या इसके समीप मैले कुचैले वस्त्र कदापि न धोवें। यदि कूप पर वस्त्र धोने पड़ें तो जल निकाल कर दूर बैठ कपड़े धोलें। इतनी दूर की मैले कपड़े की छीटें कूएं में न जावें।

(३) डोल निकालने वाली रस्सी को भूमि पर मिट्टी में लथ पथ न होने दें और न मैले पांव इसपर रक्खें।

(४) नदियों का पानी भी कई स्थानों पर पीने के काम आता है। जो सावधानियां पीछे कह आए हैं उसका ध्यान रक्खें। पर समीपवासियों का भी यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि इस जल को गन्दा न करें। नदी के तट समीप मलमूत्र त्याग करना अत्यन्त हानिकारक है। सदा जल खराब होता रहता है। कई पुरुष तो पानी के अन्दर भी मूत्र त्याग करते हैं जो कि धार्मिक पुस्तकों में भी पाप लिखा है। हमारे देश वासी दर्याओं को ऐसी हानि पहुंचाते हैं कि कहने में नहीं आसकता है। चम्बा (रियासत) पर्वत की ओर गये तो पता लगा कि वहां के सब निवासी रावी के किनारे ही पायखाने जाते हैं। और लाले लोग तो और बढ़कर हैं। वह बिलकुल पानी के किनारे ही पायखाना बैठ जाते हैं और फिर प्रक्षालन बिना ही उठकर घर चले आते हैं। वह शायद समझते हैं कि पानी की शक्ल देखने से ही सफ़ाई हो जाती है। श्रीनगर (काशमीर) के बीच से जेहलम बहता हुआ आता है। दोनों तरफ़ घरों से उठकर वहां के रहने वाले दर्या के किनारे गन्दगी फैला जाते हैं। सर्दियों में घर से निकल कर बाहिर गली में बैठ जाते हैं जो अन्त में दर्या में ही पहुंचती है गंगा जैसा शुद्ध पवित्र दर्या, और इसके अन्दर कितना मल जाता है इसका अनुमान करना भी कठिन है। इसके किनारे के सारे बड़े २ नगरों का सम्पूर्ण मलादि इस में पड़ता है, मुर्दे जलाकर वा वैसे ही इसके अन्दर धकेल दिए जाते हैं। प्रकृति कितनी दयालु है जो फिर भी इनको शुद्ध करती रहती है। वरना इसके किनारे वाले कभी स्वस्थ ही न हो सकते। प्रकृति सदा और सब जगह कार्य करती है। कूंओं का जल गया तो हमारे पास से ही है पर जाते २ पृथ्वी में से (फ़िल्टर) पुना जाता है

वहां देर तक अन्दर रहकर अपने अन्दर की ही शुद्ध वायु (Oxygen) से शुद्ध होता रहता है । दर्या मैदानों में से बहते हुये शुद्ध वायु (Oxygen) की बहुतायत के कारण शुद्ध होते जाते हैं । अशुद्ध वस्तुयें सब नीचे बैठती जाती हैं । कुछ मछलियां आदि भी पवित्र करती हैं। कुछ पवित्रता बहाव से भी होती है । ऐसे कई प्रकार से प्रकृति कार्य्य करती रहती है। परन्तु हम को भी ऐसी बुरी गन्दी आदत का परित्याग करना चाहिये ।

(५) जिन तालाबों वा छप्पड़ों का जल पीने के काम आता है इनके अन्दर न तो लकड़ियां डाल कर रखनी चाहियें न सन आदि गलन के लिये दबानी चाहिये ॥

(६) जिस घर में विशूचिका (हैज़ा) या चेचक या मुहरका इत्यादि संसर्गज रोग फैले हों वे अपने बर्त्तन कुयें में लाकर लटकावें यह ठीक नहीं ।

दूसरे वर्त्तन से पानी अपने वर्त्तन में डलवालें।

रोगी के कपड़े तो कदापि कुयें के ऊपर लाकर नहीं धोना चाहिये।

(७) पीने का जल घर में जिन वर्त्तनों में रक्खा जाता है उनको नित्य अच्छी तरह साफ़ रखना चाहिये ॥

बाहर से आकर धोये बिना उनको हाथ नहीं लगाना चाहिये। पानी पीने के वास्ते हाथ इत्यादि उनके बीच में नहीं डालना चाहिये, बल्कि झुकाकर पानी को लेना चाहिये और पानी को खुला नहीं छोड़ना चाहिये ॥

यदि जल खराब होने के कारण उबाला है गँदला होने के कारण फिटकिरी डाली है, तब उसको शीघ्र ही दूसरे बर्त्तन में निथार लेना चाहिये, उसमें रहने से नीचे बैठी मैल के कीटाणु बढ़ने शुरू हो सकते हैं ॥

भोजन का वर्णन ।

जल और वायु का वर्णन हो चुका, जीवन की आवश्यकताओं में तीसरे दर्जे पर भोजन है। उपनिषदों में कथा आती है कि एक ऋषि ने अपने शिष्यों का तन मन और आत्मा का सम्बन्ध दिखाने के लिये कहा कि भूखे रहो। पहले तो धीरे २ निर्बलता आने लगी।

फिर जब मन निर्बल होने लगा तो सब बातें भी विस्मरण होगई। तन मन दोनों कार्य करने में असमर्थ हो गये। आत्मा भी जाने के लिये तैयार हो गई। वह भी करना नहीं चाहती।

इस वास्ते कृष्ण जी महाराज ने कहा है कि तमाम प्राणी अन्न से पैदा होते हैं। हवा जो नैसर्गिक रूप से हर जगह बिनामूल्य हमको प्राप्त होती है, पानी जो निसर्गतः हर जगह थोड़ी सी मेहनत से मिलता है, यह तो बहुत ज़रूरी है। भोजन जिसके लिये कुछ मूल्य की आवश्यकता है यह तीसरे दर्जे पर है, परन्तु जीवन की आवश्यकताओं में यह भी एक बहुत ही आवश्यक वस्तु है।

भोजन के बिना

मनुष्य जीवित नहीं रह सकता है। यथार्थ में कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। वृक्ष तक भी यदि वायु से, और पृथ्वी से अपनी खुराक न लें, तो न वे बढ़ सकते हैं न हरे भरे रह सकते हैं। छोटे से छोटे अदृश्य पदार्थ से लेकर हाथी और व्हेल मछली तक सबको आहार की आवश्यकता होती है॥

भोजन के बिना मनुष्य कितने समय जीवित रह सकता है।

सामान्य विचार को लिया जाय तो एक आदमी बिना भोजन के तीस या चालीस दिन रह सकता है, मगर आयरलैंड के मेकस बिनी साहब का हाल सबने अखबारों में पढ़ा होगा कि वह जेलखाने में ७५ दिन के बाद मरे। फ्रांस में एक आदमी ६२ दिन तक जीवित रह चुके हैं। अमेरिका के एक डाक्टर ने जो उपवास चिकित्सा करते हैं, उन्होंने स्वयं एक बार २६ दिन का उपवास किया है। अमेरिका का क़ैदी ८८ दिन बिना भोजन जीवित रहा था। पिछले दिनों आयरलैंड के कुछ जवानों और लड़कों ने तजरुबा शुरू किया था। वे भी ७० दिन तक केवल जल पर जीवन निर्वाह कर सके। विलायत में कई लोगों ने परीक्षा की है कि वे कितने दिन तक बिना भोजन के रह सकते हैं।

डाक्टर टर्नर ने ४० दिन का उपवास किया। सजी (Succi) ने कई बार ३०—४० या ४१ दिन तक उपवास किया। जेंकिस साहब

(Jacquis) ३०—४० और एक बार ५० दिन तक निराहार रहे, गेयर (Gayer) ३० दिन तक और मरलाटी (Merlatti) ५० दिन तक ॥

फ़ील्ड साहब ने अपने कुत्ते पर अनुभव किया और ६० दिन तक भूखा रखा। एक दूसरे कुत्ते पर ११७ दिन तक यह तजरुबा होचुका है। अकाल पीड़ा के समय प्रायः लोग महीने के भीतर ही मर जाते हैं। वे चलने फिरने के योग्य नहीं रहते, जब कि तजरुबा करने वाले लोग अन्तिम दिन तक अपना काम करते रहते हैं। इसका कारण केवल मन की शक्ति है। एक को मालूम है कि उसको भोजन नहीं मिलता वह मर रहा है, दूसरे को मालूम है कि भोजन उसके पास है किन्तु वह खाना नहीं चाहता, उसके बिना जीवित रहना चाहता है ॥

उपवास करने में मोटे पतले का भी प्रश्न है। यह प्रभावित हो चुका है कि निराहार मरने से पहले मनुष्य अपने वज़न का आधा से ज़्यादा खा चुकता है। दो मन जिसका वज़न है वह एक मन हो जाने तक उपवास करता जावे तो उसकी मृत्यु नहीं होती है। टर्नर इत्यादि के अनुभवों से यह भी ज्ञात हुआ है कि ३० दिन में उनका लगभग ३० पौण्ड (१५ सेर) वज़न कम हुआ था, इस हिसाब से ४० सेर वज़न घट जाने के लिए लगभग ८० दिन लग सकते हैं। इससे मोटा आदमी सम्भवतः इस से अधिक दिन जीवित रह सके ॥

कुत्तों की दशा में तो पता लगा कि ६५ से ७५ फ़ी सदी तक वज़न कम हुआ तब उनका प्राण निकला। इन तमाम बातों पर बिचार करने से ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य ४० दिन से १०० दिन तक अधिक से अधिक निराहार जीवित रह सकता है लेकिन साथ ही पानी उसको मिलता जावे। जानवर भी लग भग इतने समय तक जीवित रह सकते हैं ॥

नियम का अपवाद।

इस नियम के अपवाद भी होते हैं। कहते हैं सृष्टि के अन्दर भी ऐसे प्राणी हैं जो आवश्यकतानुसार चिरकाल तक जीविल रह

सकते हैं। बर्फ़ानी देशों का रीछ जब बहुत सरदी पड़ती है, कई मास तक बर्फ़ों के नीचे अपनी गुफा में बन्द रहता है। कुछ लोगों का ख्याल है कि बंदरों और रीछों को बूटियां बहुत अच्छी मालुम होती हैं। वह भी कुछ बूटी खाकर भूख से निश्चिन्त रहता है। ऐसेही मेंढकों के विषय में प्रसिद्ध है कि वह ज़मीनों के नीचे मुद्दतों जीवित रहते हैं, और वर्षा होते ही टें टें करने लग जाते हैं॥

कहते हैं मेंडक को खींचरी निद्रा आती है। सांप को बोतल में बन्द करके लोगों ने मुद्दतों रखा है। इन प्राणियों के अतिरिक्त भारतवर्ष के योगियों ने अपने कमाल से ही ऐसा करके दिखाया है।

महाराज रणजीतसिंह के समय में एक महात्मा हरीदास को लाहौर में क़िले के पास ४२ दिन तक एक संदूक़ में बन्द कर के क़ब्र में गाड़ दिया गया था जो बिना जल वायु और भोजन के ही रहे थे। इसकी कहानी तो विलायत तक प्रसिद्ध है। किन्तु योगी लोगों का क्या कहना है, वर्षों इसी तरह रह सकते हैं॥

राजा जयचंद ने जब एक चट्टान को गोली से गिराया था, उसके अंदर से योगी न जाने कितने वर्षों से समाधि लगाए हुए बैठा था। योग शास्त्र में लिखा है कि जब अपान वायु को मनुष्य वश में कर लेता है तो उसको भूख प्यास नहीं लगती है। पिछले दिनों जब मैं अनूप शहर गया तो वहां सुना कि कुछ दूर एक गांव में एक साधु संभवतः सात वर्ष से समाधि लगाये बैठा है। आज तक उसकी समाधि खुली नहीं है। लोगों ने इर्द गिर्द जंगला बना दिया है। एक तख्ते पर उसे बिठाया है और वह एक ही स्थिति में आज तक है॥

एक योगीराज जी ने हमको बतलाया है कि इसी प्रकार सैंकड़ों वर्ष तक समाधि लगाई जा सकती है।

इसका कारण तो स्पष्ट है कि हमको भोजन की आवश्यकता इस वास्ते है कि हम हर समय कार्य्य संलग्न रहें। हम सोच विचार में, सांस के आने जाने आदि में घिसते रहते हैं। हमारी कुछ न कुछ क्षति होती रहती है। योगी लोग इस क्षति को रोक देते हैं, न इन्द्रियां चलायमान होती हैं न सांस चलती है न मन चलता है। वे अपने स्वामी की गोद में आनन्द से बैठ जाते हैं। अब शरीर

न तो निष्प्राण है क्योंकि आत्मा भीतर मौजूद है, और न जीवित है, क्योंकि उसके भीतर कोई प्रगति नहीं है। हृदय आदि आन्तरिक अवयव चुप चाप बैठे हैं। शरीर की गरमी भी प्राणों के साथ मस्तिष्क के एक कोने में छिपी हुई है। जब किसी प्रकार की क्षति नहीं है, फिर भोजन की आवश्यकता से हो सकती है। जो अन्यान्य प्राणधारी भी निराहार चिरकाल तक रहते हैं वे भी लगभग इसी रूप में रहते हैं। उनका प्रश्वास सूक्ष्म हो जाता है, काम काज बंद कर देते हैं। लगभग अचेतनावस्था में रहते हैं, किन्तु रहते किसी बंद और सुरक्षित स्थान में हैं, जहां कि बाह्य गरमी पहुंचती रहे। कहते हैं शरीर को यदि गरम रक्खा जाय तब भी भोजन की कम ज़रूरत होती है।

निराहार रहने वाले लोग प्रायः गरम कमरों में रहते हैं कारण यह है कि ठण्डी जगह में गरमी जल्दी २ निकलती रहती है और ९७—९८ दर्जे के गर्म कमरे में उष्णता अंदर बंद रहती है। एक डाक्टर का कथन है कि कभी २ भोजन करने की अपेक्षा एक गरम वास्कट पहनने से अधिक लाभ होता है किन्तु खेद है कि यह बात ठीक मालूम नहीं हुई।

चिकित्सकों ने प्रायः और अन्य लोगों ने भी कभी संन्यास की अवस्था देखी होगी। संन्यास वह बेहोशी है जिसमें स्वांस भी मालूम नहीं होता है। आदमी देखने में मुर्दा मालूम होता है। इस अवस्था में कई २ दिन पड़े रहे और फिर उनको होश आई है।

जल में डूबे हुए मनुष्य के भी प्राण निकलते नहीं, मस्तिष्क में चढ़ जाते हैं। इस वास्ते कई २ घण्टे मुर्दा रहने के पश्चात भी ज़िंदा होना संभव है। ऐसे ही सर्प का काटा हुआ २४ से २८ घण्टे तक देखने में मुर्दा पर वास्तव में ज़िंदा रहता है। यदि ठीक इलाज हो जावे तो ज़िंदा हो जाता है। इन अवस्थाओं में स्वांस भी नहीं आती है। योगी इस अवस्था को अपनी इच्छा से प्राप्त होता है और अपनी इच्छानुसार चिरकाल तक इस अवस्था में रह सकता

है। भारत वर्ष के योगियों ने कई

ऐसी बूटियां

भी मालूम की हैं जिन के खाने से बहुत समय तक भूख नहीं लगती है। अभ्यास में कभी २ उनको एक ही स्थान पर बैठ कर महीना २ दो दो महीना अभ्यास करना पड़ता है, इस वास्ते वे ऐसी चीज़ खा लेते हैं जिससे वे अपना कार्य एकान्त में कर सकें और उनको क्षुधा निवारण के लिए चिन्तित न होना पड़े।

मुझे एक मनुष्य ने एक कहानी सुनाई कि व्यास नदी के तट पर बाढ़ आकर उतर चुकी थी, एक मनुष्य ने चावल पकाये। एक लकड़ी वहीं से लेकर उसने चावलों में फेर दी। चांवल खाकर उसे एक मास तक भूख न लगी। वह हरिद्वार साधुओं के पास गया। एक साधु ने उसको दवाई दी, जिससे कै (वमन) हुई, और वही चावल उसके मुंह से निकले। उस साधु ने वही चावल पानी में धोकर खालिए और जंगल को भाग गया।

कहते हैं उत्तर काशी की ओर एक योगी महाराज हमेशा बर्फ़ में ही रहते हैं। उन्हों ने एक रीछ को कोई बूटी खाते देखा वही बूटी स्वयम् खाली थी। उन्हें ६ मास तक भूख ही नहीं लगी। गरमी शरीर में इतनी बढ़ गई कि वह कहते हैं कि यदि नीचे देश में आवें तो जीवित ही नहीं रह सकते हैं, इस लिए सदा बर्फ ही में रहते हैं।

यह तो सब को विदित ही है कि यदि पुठकंडे के चावल की खीर पकाकर खाई जावे तो १५ से ३० दिन तक भूख नहीं लगती।

साधारण सफेद घास के अंदर यह गुण है कि नित्य उसको दो चार काली मिरच डाल कर करीब ३॥ तोला, पानी के साथ घोट छान कर पी ले तो खाने की आवश्यकता नहीं होती है। मुझे माधव तीर्थ नामी एक मद्रासी साधु ने बतलाया कि उसने ४० दिन तक एक बार इस पर निर्वाह किया है इस बीच में उसकी शक्ति कम नहीं हुई है बल्कि बढ़ी थी ऐसी और भी कई बूटियां होंगी जो कि हमको ज्ञात नहीं हैं।

सिद्धआश्रम में रहने वाले योगी जो सालों समाधि लगाये बैठ रहते हैं वे ही ऐसे पदार्थों को जानते हैं।

उपवास के गुण

उपवास द्वारा चिकित्सा सदा से होती आई है। वैद्यक पुस्तकों में लंघन का वर्णन आया है और लगभग प्रत्येक रोग में जिस में कुपित दोष अधिक हों लंघन आवश्यक समझा जाता है। ज्वरादि में प्रथम चिकित्सा लंघन ही थी और इस समय तक भारत वर्ष के उन भागों में जहां डाक्टरी का बहुत प्रचार नहीं हुआ है एक व्यक्ति जिस को ज्वर हो प्रथम लंघन करता है कई जगह सप्ताह दो सप्ताह तक भी वैद्य उपवास करवाते हैं और प्रायः रोग उपवास ही से दूर हो जाते हैं। डाक्टरों ने यह विचार फैला दिया है कि आहार मनुष्य को अवश्य मिलना चाहिये इस लिये समय असमय दूध शोरबे, अंडे मांस रस इत्यादि बना२ कर देते हैं और रोगों को संकीर्ण बनाते जाते हैं। अब अमेरिका के एक डाक्टर सिंकलेयर निकले हैं जिन्हों ने बड़ी २ पुस्तकें लिख कर यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि उपवास से लग भग सारे रोग दूर हो जाते हैं। डाक्टर साहिब पर कई बार आक्षेप भी हुये हैं जिनका उन्होंने एक पत्र में उत्तर दिया था।

और कुछ लिखने से पूर्व हम डाक्टर साहिब का उत्तर अंकित करना चाहते हैं जो कई बातों पर प्रकाश डालता है।

उपवास द्वारा चिकित्सा

(चन्द आक्षेपों का उत्तर)

डाक्टर सिंकलेयर की लेखनी से

कुछ समय व्यतीत हुआ कि मैंने पूर्ण स्वास्थ्य लाभ करने के सम्बन्ध में अपनी खोज (Discovery) का वर्णन समाचार पत्रों में किया था। उस विषय में मेरे पास दर्जनों पत्र आरहे हैं। यह पत्र मुझे संसार के प्रत्येक भाग से प्राप्त हुये हैं जैसे एक स्पेन से, एक हिन्दुस्थान से, एक और अर्जेनटाइन से। बाज़ लोगों ने लिखा है कि हमें आज्ञा दी जाये कि आप के पास आकर रहें और आप की देख रेख में उपवास करें। एक स्त्री ने लिखा कि एक व्यक्ति को श्लीपद का रोग है। यूरोप के सारे चिकित्सक उसे चिकित्सा के अयोग्य बताचुके हैं। आप लिखिये कि उसकी चिकित्सा के लिये क्या फ़ीस चार्ज करेंगे। और एक व्यक्ति ने पूछा है 'उपवास से आप का तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य

कुछ भी न खाये या यह कि केवल फल और गिरयां खाता रहे"।

विचित्र बात यह है कि इन दो सौ पत्रों में से एक पत्र भी किसी डाक्टर की ओर से नहीं आया। थोड़े दिन हुये मेरी बात चीत एक डाक्टर से हुई थी जो एक सफल चिकित्सक है। मैं उसके मुंह से यह बात सुन कर अचंभे में आगया कि उसके विचार में कोई व्यक्ति बिना भोजन किये ५ दिन से अधिक जीवित नहीं रह सकता। उसने कहा इस प्रश्न पर वाद विवाद करना भी व्यर्थ है क्योंकि ऐसा होना फ़िज़ियालोजी की दृष्टि से असम्भव है। मैंने उसे सैंकड़ों व्यक्तियों के नाम बताये जिन्हों ने इस प्रकार के अनुभव किये थे और वह इस में कृतकार्य्य हुये थे, परन्तु इस पर भी उसे तसल्ली न हुई।

उपवास चिकित्सा नई नहीं

वास्तव में उपवास चिकित्सा कोई नई नहीं है। भारत वर्ष के योगियों ने सैंकड़ों वर्षों तक उस पर कार्य्य किया है और स्वर्गीय डाक्टर डेवी मेरे जन्म से पहले इसे प्रयोग में ला चुके थे। इस देश में कई सैनीटोरियम ऐसे हैं जिन में लोग वीस २ तीस २ दिन तक उपवास करते हैं मगर फिर भी कोई इस पर आश्चर्य्य नहीं करता। एक वर्ष व्यतीत हुआ कि एक व्यक्ति ने ५ दिन तक उपवास किया था। उपवास के चिन्ह प्रगट होते हैं। कोई सुस्त व्यक्ति यह बहाना करे कि मुझे निद्रा रोग है तो डाक्टर उसका निदान तुरन्त कर लेते हैं। ऐसे ही यदि कोई उपवास न करता हुआ मनुष्य यह वहाना करे कि मैं उपवास कर रहा हू तो ताड़ने ताले शीघ्र जान जाते हैं। मैं अभी बालक ही था कि न्यूयार्क के डाक्टर टेन्ज़ ने ४० दिन उपवास किया था। लोग कहा करते थे कि यह सब बनावट है' वास्तव में वह छुप कर कुछ खा लेता होगा।

परन्तु बड़ा प्रश्न वज़न का होता है। एक व्यक्ति का बज़न १५० पौंड के लगभग है परन्तु दिन प्रति दिन वह कम होने लगता है क्यों कि यह सम्भव है कि उसे कोई रोग न हो और फिर भी खाते पीते उस का वज़न कम होता चला जाये। वज़न कम होने की बाज़ सूरतें और भी हैं जैसे शारीरिक व्यायम करना या उष्ण स्नान लेना इत्यादि। परन्तु वज़न में इतनी कमी उस दशा के अतिरिक्त कभी नहीं होती कि मनुष्य उपवास कर रहा हो। इस के अतिरिक्त

उपवास करने का एक और बड़ा चिन्ह यह है कि ऐसी दशा में जिह्वा बहुत मैली होती है, इतनी मैली कि यदि तुम चाहो तो उसे चाकू से खुरच लो। इस बीच में यदि तुम खा लो तो २४ घंटे के भीतर वह पुनः स्वच्छ हो जायेगी और जब तक फिर कई दिन उपवास न किया जाये तो वह मैली न होगी। क्या इन बातों से सिद्ध नहीं होता कि वास्तविक उपवास और दिखावे के उपवास का भेद शीघ्र ज्ञात होजाता है।

उपवास सम्बन्धी अनुचित विचार

लोगों में उपवास के सम्बंध में नाना प्रकार के अनुचित विचार फैले हुये हैं। बाज़ कहते हैं कि उपवास करने वालों को दिन रात अच्छे २ भोजनों के स्वप्न आते हैं परन्तु सचाई इस से भिन्न है। उपवास वस्तुतः एक दुःख नहीं वरन् एक प्रकार का सुख है। बहुत से लोगों को इन दिनों में खाने से इतनी अरुचि हो जाती हैं मानों उन्हों ने कभी कुछ खाया ही न हो। एक देवी का वर्णन करते हैं कि उसने बड़े दिन से ३ दिन पहले उपवास आरंभ किया और नव वर्ष के ३ दिन पीछे तक उपवास किया। इस बीच में उसने अपने बालकों को अच्छे से अच्छे भोजन स्वयम् पका कर खिलाये परन्तु स्वयम् इन भोजनों के खाने की इच्छा उसे न हुई।

मैंने स्वयम् एक अवसर पर १२ दिन उपवास किया था। उस समय मैं और मेरा छोटा लड़का हम दोनों ही रहा करते थे और दिन भर में तीन बार मैं स्वयम् उस को भोजन परोसा करता था परंतु भोजन देख कर मेरा जी कभी नहीं ललचाया।

सब से बड़ा उपवास जिस की कथा मैंने सुनी थी ७८ दिन का था परंतु इस के पीछे रिचर्ड फ़ासिल नामक एक और व्यक्ति ने इस से भी बड़ा उपकार किया। इस व्यक्ति का वज़न ३८५ पौंड हो गया था। अन्त में उस ने एक सैनीटोरियम में जा कर ४० दिन उपवास किया और उसका वज़न १३० पौंड घट गया परंतु जब वह लौटा तो फिर उसका वज़न दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा। अंतिम उसने एक ६० दिन का व्रत रक्खा। यह सब से बड़ा उपवास व्रत है जो किसी मनुष्य ने रक्खा हो।

तीन मास तक निहार रहना वास्तव में बड़ा विचित्र होगा। प्राकृतिक रूप से इस समय आमाशय और पाचक अंग अपने २ कार्य्य को भूल जाते होंगे। ऐसी दशा में भय केवल इस बात का होता है कि जब उपवास समाप्त किया जाये तो भूक बड़े ज़ोर की लगती है और आमाशय पाचन के लिये किंचित तैयार नहीं होता। बस ऐसे अवसर पर यदि तुम ने बहुत पेट भर लिया तो विषैले पदार्थ फिर एकत्रित हो जायेंगे और सारी चिकित्सा का प्रभाव धूलि में मिल जायेगा। परंतु यदि तुम ने धैर्य्य से काम लिया और धीरे २ भोजन की मात्रा बढ़ाई तो चिकित्सा अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगी। ऐसे अवसर पर यदि तुम्हें किसी ऐसे व्यक्ति से सहायता मिल सके जो स्वयम् पहले चिकित्सा कर चुका हो तो बहुत गुणकारी सिद्ध होता है।

उपवास की दशा में मृत्यु का भय।

उपवास के सम्बंध में सब से बड़ा प्रश्न यह है कि क्या उपवास की दशा में मृत्यु का भय है। इस विषय में निम्न लिखित बातें वर्णन योग्य हैं:—

सब से पहली बात तो यह है कि रोगी प्रायः सदा मरते रहते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी डाक्टर की चिकित्सा कराते हुये मर जाये तो यह नहीं कहा जाता कि उस डाक्टर ने उसे मार दिया। यही बात उपवास पर घटती है।

द्वितीय बात यह है कि उपवास का अनुभव प्रायः ऐसी अवस्थाओं में किया जाता है जब कि रोगी सब प्रकार की चिकित्सा करा कर निराश हो जाता है और अपने रोग को चिकित्सा के अयोग्य समझता है। यदि कोई डाक्टर केवल ऐसे रोगियों की चिकित्सा ही करता हो जिसको शेष सब डाक्टर चिकित्सा के अयोग्य बता चुके हों तो यदि वह १०० प्रतिशत रोगियों को अच्छा न कर सके तो इसके यह अर्थ नहीं होते कि वह डाक्टर निकम्मा है।

तृतीय वर्णन योग्य बात यह है कि कोई व्यक्ति आज तक उपवास के कारण नहीं मरा। उपवास चिकित्सा की विशेषता यह है कि दो तीन दिन में भूख की इच्छा ही मिट जाती है और प्रकट

है कि जब रुचि ही न हो तो उपवास से मनुष्य की मृत्यु किस प्रकार हो सकती है। प्रकृति का यह नियम नहीं। यदि मनुष्य भूक से मरने लगे तो सब से प्रथम उसे भूक बड़े ज़ोर से लगेगी। यह विचार वास्तव में इस ग़लत विचार से मिलता जुलता है जो एक स्त्री ने मुझ पर प्रगट किया था कि मैं उस कमरे में कभी नहीं सोती जिस में चूहा हो क्योंकि मुझे भय रहता है कि कहीं सोते में चूहा मेरे कान न कतर ले और मेरी आंख ही न खुलने पाये।

एक प्रश्न यह भी उपस्थित होता है क्या उपवास करने वाला चंद दिन के भीतर मर सकता है जब कि आरंभ में उसे भूक लगती हो। इस का उत्तर नहीं है। जो लोग उन दिनों में मरे हैं वह भूक से नहीं भय से मरे हैं। इस का प्रमाण उन लोगों के पत्रों से मिलता है जो कई कई दिन उपवास कर के देख चुके हैं और जो लिखते हैं कि भूक के आरंभिक दिनों में मरना असंभव है।

उपवास करनेवाला किन २ दशाओं में मृत्यु को प्राप्त होता है।

सत्य यह है कि मानव शरीर की कई दशायें ऐसी होती हैं जिन में मनुष्य का मर जाना निश्चित होता है और जब ऐसी दशाओं में उपवास किया जाये तो वह मनुष्य को मृत्यु से बचा सकता है। कल्पना करो कि कोई व्यक्ति ज़ोर २ से दौड़े और उसकी रग फट जाये जिस के प्रभाव से उसकी मृत्यु हो जाये तो यह आवश्यक नहीं होता कि किसी को दौड़ना ही न चाहिये।

यह बात विशेषतया स्मरण रखने योग्य है कि उपवास करने वाला केवल उन ही दशाओं में मरता है जब कि उस के मन में इस चिकित्सा विधि के संबन्ध में ग़लत ख्यालात बैठ गये हों या किसी ने उसके मन में अनुचित भय उत्पन्न कर दिये हों। एक स्त्री के विषय में कहते हैं कि उसने बाज़ जीर्ण रोगों से बचने के लिये उपवास आरंभ किया। वह अच्छी स्वस्थ स्त्री थी और उस का स्वास्थ्य पूर्णतया तसल्ली देनेवाला था। परंतु एक दिन उस के पति ने कह दिया "तुम ने भी क्या मूढ़ता मोल ले ली है। बस उसी दिन से

उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और विवश हो कर उसे उपवास छोड़ना पड़ा।

जहां तक मैं अनुसंधान कर चुका हूं मैं इस परिणाम पर पहुंचा हूं कि उपवास करने वालों में जिस व्यक्ति की दशा भी बिगड़ी है वह केवल नाड़ी-विकार अथवा उपवास करते समय आगा पीछा न देखने के कारण बिगड़ी है।

उपवास से अध्यात्मिक शक्ति बढ़ती है।

इस समय तक मैंने उपवास के प्रश्न पर केवल भौतिक और शारीरिक दृष्टि से लिखा है परंतु अध्यात्मिक विचार से देखा जाये तो यह संयम का भी बहुत अच्छा हेतु है। एक व्यक्ति का जिस ने ४० दिन उपवास किया था ब्यान है कि इस से मेरी श्रद्धा बहुत बढ़ गई। उपवास से मनुष्य अपने आप को इतना वश में कर सकता है कि आश्चर्य्य होता है। एक स्त्री के संबन्ध में कहते हैं कि वह बहुत खाने वाली थी और अच्छी प्रकार पेट भरे बिना न रह सकती थी परंतु केवल ८ दिन के उपवास से यह हुआ कि अब वह अपनी भूक को क़ाबू में रख सकती है और कभी अधिक खाने की ओर उस की रुचि ही नहीं होती।

उपवास से कार्य्य अधिक होता है।

उपवास से अध्यात्मिकता को जितनी सहायता मिलती है उस का अनुमान प्राचीन काल के योगियों की कथाओं से हो सकता है। परंतु मैं केवल भौतिक विचार से ही कह सकता हूं कि उपवास का एक विशेष लाभ यह भी होता है कि मनुष्य कार्य्य भली भांति कर सकता है। एक बार मैंने उपवास की दशा में एक नाटक लिखना आरंभ किया था। उस में मुझे इतनी सफलता हुई कि मैंने उपवास करते हुये ही एक और नाविल लिखना आरम्भ कर दिया। इस कार्य्य में मेरा मन इतना लगता था कि मैं दिन भर में १६-१६ घण्टे लगातार कार्य्य करता रहता था और खाना इस विचार से न खाता था कि उस के पचाने के लिये बहुत सा समय लगेगा। १३ मास तक यह क्रम चलता रहा। इस समय में मैंने सहस्रों पन्ने काले कर डाले परंतु इसका परिणाम यह हुआ कि मेरा आमाशय

उस समय ज़रा सा उष्ण दूध भी न पचा सकता था। अतः मेरा विश्वास यह है कि मनुष्य को इस अवस्था में किसी सुखप्रद स्थान या धूप में लेट कर कहानियों की पुस्तकें पढ़नी चाहियें और शरीर से कार्य्य लेना चाहिये, ज्ञानतंतुओं और मस्तिष्क से कार्य्य लेना बन्द कर देना चाहिये। उच्चकोटि के कवि प्रायः भूके देखे गये हैं। स्यात वह उपवास के कारण अपनी कविता में उत्तमता पैदा कर लेते हैं। उपवास की सब से बड़ी अच्छाई यह है कि इस से साहस का नया आदर्श स्थिर होता है। कुछ सामान्य लाभ जो लोगों ने इस के द्वारा प्राप्त किये हैं वह मद्य और तरमाल सेवन को छोड़ने गन्दे जीवन को त्यागने और अधिक खाना खाने के व्यसन से छुटकारा पाना हैं"।

मेरा ग्यारह दिन का उपवास।

उपवास चिकित्सा के विषय में मैं "देशोपकारक" में कई बार लिख चुका हूं। ज्ञानात्मिक बातें बहुत लिखी जा चुकी थीं, क्रियात्मिक रूप से नहीं लिखा जा सकता था जब तक कि स्वयम् अपने आप पर अनुभव न किया जाता। अतः मैंने स्वयम् उपवास चिकित्सा का अनुभव करना चाहा और १२ नवम्बर १९२५ ई० से उपवास आरम्भ कर दिया। इस उपवास के समय में दैनिक पत्रों में मैंने जो चिट्ठियां छपने को भेजीं वह सब नीचे अंकित की जाती हैं इन से सब बातें सविस्तर ज्ञात हो जायेंगी।

पत्र नं० १

मैंने उपवास क्यों आरम्भ किया ?

(पं०ठाकुरदत्त शर्म्मा वैद्य अमृतधारा आविष्कारक लाहौर की लेखनी से)

श्री स्वामी कृष्णानंद जी से मैंने एक हठ योग की क्रिया सीखने के लिये प्राथना की। उन्हों ने कहा कि आप का पेट बड़ा है, जब तक यह कम न हो यह क्रिया नहीं हो सकती है। मुझे खेद हुआ कि मैंने अपने पेट को बहुत तो बढ़ने नहीं दिया फिर भी यह एक क्रिया के योग्य नहीं है। मैं प्राणायाम द्वारा तो इस को कम कर सकता हूं परन्तु इस के लिये तो बहुत समय चाहिये। चिरकाल से मेरा विचार

उपवास चिकित्सा का अनुभव करने का है। अमेरिका में कई अवस्था-ग्रह उपवास चिकित्सा के लिये हैं। मैं वहां की पुस्तकें और पत्रिकायें पढ़ता रहता हूं। आश्चर्य्य में हूं कि वह इस की कैसी प्रशंसा करते हैं। वह इसको केवल सर्व रोगों की चिकित्सा बताते हैं प्रत्युत उन का कथन है कि इस से बूढ़ा भी युवा बन सकता है। उन की अमृतधारा उपवास ही है। उपवास चिकित्सा के डाक्टर मैकफेडन ने ७ दिन का उपवास किया परन्तु एक सज्जन सिंकलेयर साहब तो इस को ९६ दिन तक बढ़ा चुके हैं। ११, २१,४० दिन के उपवास तो कइयों ने किये और उन सब के ब्यान छपे हैं कि उनको नया जन्म मिला रोग दूर हुये। इन सब को पढ़ कर मैं चाहता था कि इस का पूरा अनुभव करूं और हो सके तो अपने रोगियों पर भी इस को वर्तूं। मेरे पुत्र ने पहिले १४ दिन का उपवास किया। उसका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है और वह स्यात ही कभी बीमार होता है। इस के पीछे दूसरे पुत्र ने ५ दिन का उपवास किया परन्तु कोई विशेष लाभ न हुआ। इनको देख कर मैं यही समझता था कि मैं अभी इस के गुण दोष को नहीं जानता।

लाहौर में डाक्टर अंबा प्रसाद साहिब ने बड़ा लम्बा ५६ दिन का उपवास किया। मैं ने उन से कहा कि आप सब विवर्ण लिखवाद परंतु उन की राय कुछ इस के हक़ में न मालूम हुई। उन्हों ने कहा कि मुझे तो कुछ पता नहीं लगता, मैं क्या लिखूं। उन को कुछ मांसिक रोग था। मैंने समझा सम्भव है इस रोग में कुछ प्रभाव न होता हो।

महात्मा गांधी ने जब पिछला इक्कीस दिन का उपवास किया उस के पीछे मैंने देखा कि यद्यपि उन का शरीर दुबला था परंतु उन का मुख तेज से परिपूर्ण था। उस समय मेरी इच्छा और भी बढ़ी। आज कल कहते वर्ष व्यतीत हो गये। जो लोग सारी आयु दिन में दो तीन समय खाते पीते हैं उन को खाना छोड़ना पहिले कठिन ही दिखाई देता है। किसी से कहो तो बड़ा भयभीत होता है। स्वामी कृष्णानंद जी की बात ने मेरी चिरकाल की इच्छा को फिर हरा कर दिया और मैं ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि अब उपवास अवश्य करूंगा। शरीर तो इस से ठीक हो ही जायगा और मैं इस के

वर्णन से दूसरों को भी लाभ पहुंचा सकूंगा। सब मज़हबों में मन की शुद्धि के लिये ही उपवास को बड़ा आवश्यक समझा गया है। मुसलमानों में फ़क़ीर बड़ा उपवास करते हैं। जैन बड़े २ लम्बे व्रत रखते हैं। हिन्दूओं में कितने व्रत हैं और कितने ही पापों के प्रायश्चित कई प्रकार के व्रत से हैं। पादड़ियों में रोज़े हैं। यदि यह लाभ भी हो जाये तो सब कुछ पा लिया। इस विचार से व्रत ही से पेट को ठीक करने का निश्चय किया। मेरे साथी मेरे घर के मेम्बर और स्वामी जी भी सम्मिलित होगये (यद्यपि वह अधिक समय तक नहीं चले जिस का वर्णन फिर आवेगा) और १२ नवम्बर वीरवार प्रातः काल के खाने में खिचड़ी खा कर उपवास आरंभ कर दिया। अब उपवास का कुछ वर्णन और अपने अनुभव मैं आगे लिखता रहूंगा। इस पत्र में केवल यही बताना था कि मैंने उपवास क्यों आरम्भ किया जिससे मैं ने उपवास क्यों आरम्भ किया यह बात ठीक २ पाठकों को ज्ञात होजाये।

उपवास से मनुष्य निर्बल नहीं होता।

लोगों में यह एक ग़लत ख्याल फैला हुआ है कि यदि मनुष्य खायेगा कुछ नहीं तो जियेगा कैसे ? लोग मेरे उपवास के विषय में सुनते हैं तो पूछते हैं कि क्या पण्डित जी लेटे रहते हैं या चलते फिरते भी हैं। एक साहिब से जब दूसरे ने कहा कि पण्डित जी ने उपवास किया तो वह कहते हैं मैंने तो कल उनको बाज़ार में लाला दुनीचन्द जी के साथ देखा है। उन के विचार से उपवास करने से मुर्दों की भांति पड़ा रहना चाहिये। यह विचार ग़लत है। मेरे उपवास को आज (१९ नवम्बर को) आठवां दिन है। यद्यपि मेरा वज़न १० सेर कम हो गया है परन्तु मुझे कोई भी निर्बलता नहीं अनुभव होती है। मैं नियम पूर्वक प्रातः ४-५ बजे के बीच उठ कर अपना भजन पाठ कर के आसनों के दूसरे व्यायाम करता हूं। इस के पीछे स्नानादि से निवृत हो कर मोटर पर बाग़ में चला जाता हूं और दो चार मील जितना समय मिले पैदल घूम कर घर लौट आ जाता हूं और आते ही १० से ४ बजे तक दफ्तर का कार्य्य करता हूं। मांसिक कार्य्य में खूब मन लगता है। सायम् को रोगियों

को उसी प्रकार देखता हूं। सायम् को कभी टेनिस खेलता हूं कभी व्यायाम कर लेता हूं। इधर उधर की पुस्तकें और पत्रादि देख पढ़ कर ९ और १० बजे के बीच में सो जाता हूं। दैनिक जो परिवर्तन हुये हैं या जो अवस्थायें प्रकट हुई हैं उनका फिर वर्णन करूंगा। यह मैंने संक्षिप्त में वर्णन किया कि आठ दिन के भीतर यद्यपि मैं दुबला हूं परन्तु निर्बल अधिक नहीं प्रतीत होता। मांसिक कार्य्य करने में तो थकावट होती ही नहीं। इस लिये लोगों को यह विचार निकाल देना चाहिये कि अब मैं चारपाई पर पड़ा रहूंगा। उपवास करना कोई कठिन कार्य्य नहीं है। मन को दबाव में रखना पड़ता है और बस।

परन्तु प्रश्न उपस्थित होता है

कि फिर क्या कारण है कि एक दो दिन भूके रहने पर भी लोग निर्बलता अनुभव करते हैं। इसका कारण विचारों का प्रभाव है। हमारे चारों ओर यही विचार आज कल चल रहे हैं कि खाना अवश्य चाहिये। मनुष्य रोग ग्रस्त होता है प्रकृति उसकी चिकित्सा करना चाहती है और भूक बंद हो जाती है। हमारे प्राचीन लोग उस समय उपवास कराते थे। इस समय बीकानेर इत्यादि की ओर ७-१४ और २९ दिन का उपवास वैद्य कराते हैं। परंतु अब डाक्टरी ने एक वहुत गलत और लचर ख्याल उत्पन्न कर दिया है कि रोगी को खिलाओ, आहार अवश्य दो। यदि वह मुख से न भी खावे तो गुदा द्वारा आहार भीतर भेज दो। यही बिचार सब लोगों के भीतर है। बस सब को चिन्ता हो जाती है। हमारे पास बहुत से रोगी आते हैं जो कहते हैं भूक नहीं है। हम कहते हैं जब तक भूक न लगे कुछ मत खाना परंतु मानता कौन है। संबन्धी कहते हैं फिर भी महाराज भीतर तो कुछ जाना चाहिये। क्या वस्तु दें। ऐसे बिचारों का प्रभाव है कि जब तक किसी व्यक्ति को किसी अवस्था में एक दिन भी भूका रहना पड़े वह हाल से बेहाल हो जायेगा। यदि दो तीन दिन तक भूका रखना पड़े तो बस चारपाई पर रहता है। यह सब उसके विचारों का प्रभाव है। यदि वह अपने काम काज में पहिले की भांति लगा रहे, यदि वह सैर व्यायाम करता रहे तो उस का शरीर यद्यपि दुबला होता जावे परन्तु शक्ति कम न होगी। अब

निर्बलता अनुभव हो कुछ फुरती का काम करो। शीघ्र निर्बलता दूर हो जाती है।

परन्तु प्रश्न फिर भी रहता है

कि इस की सीमा भी है? जब अकाल पड़ते हैं तो लोग इतने अधिक क्यों मरते हैं। अकाल में निर्धनों के मरने के कई कारण हैं। कोई तो रोगी है। सप्ताह दो सप्ताह भूका रहने के कारण पश्चात यदि खाना मिल जाये तो उसको इतना खा जाते हैं कि निर्बल आमाशय पचा नहीं सकता और इस खाने से उसकी मृत्यु हो जाती है। निर्बल शीघ्र तो केवल चिन्ता और रोष के कारण होते हैं परंतु मरते तब तक नहीं कि उन का शरीर पंजर नहीं रह जाता है। उपवास की भी एक सीमा होती है। जब मनुष्य खाना छोड़ देता है तो उस की जठराग्नि उसके भीतर जो विकृत श्लेष्म और व्यर्थ पदार्थ एकत्रित होते हैं उनको खाना और जलाना आरम्भ करती है। जब तक वह समाप्त न हों तब तक उपवास में कोई भय नहीं है। चाहे कितने ही समय तक हो। इसके पीछे जब शरीर के वास्तविक और आवश्यक अंश खाये जाने लगते हैं तब खराबी आरम्भ होती है और भूक के मारे हड्डियां ही हड्डियां रह जाती हैं तब मृत्यु होती है। इस को भी प्रकृति बनाती है कि कब वास्तविक शरीर खाया जाना आरंभ हुआ है। इस का वर्णन हम आगे करेंगे।

अब यह विचार कीजिये कि यदि यह बात सब की समझ में शीघ्र आजाये तो देश को कितना लाभ हो, कितने रोग जो जीर्ण होजाते हैं दूर होजाया करें।

पत्र नं० ३

दस दिन का सविस्तर वर्णन

मैं अपने दो पत्रों में यह बता चुका हूं कि मैंने उपवास क्यों आरम्भ किया और उपवास से निर्बलता का बहुत भय नहीं है जो एक विशेष सीमा से गुज़रने के पीछे आरम्भ होती है। आज (२१ नबम्बर) जब कि मैं लेख लिख रहा हूं मेरे उपवास का दशम् दिवस है।

आज मेरी तबीयत इतनी साफ़ है और मेरे शरीर के और मस्तिष्क के भीतर कार्य्य करने की इतनी शक्ति अनुभव होती है कि मुझे यह खेद हो रहा है कि मैं ने पहिले इसे क्यों न किया और इस से भी अधिक इस बात का खेद है कि लोग लम्बे उपवास क्यों नहीं करते हैं। मेरी तो यह इच्छा है कि लोग एक सप्ताह का उपवास कर के ही उस सुख और आनन्द का अनुभव करें जो मैं कर रहा हूं। मैंने अनुभव के लिये ही उपवास चिकित्सा आरम्भ की थी और आज दश दिन के भीतर ही मुझे बहुत कुछ इसका पता लग गया है और मैं दिन प्रति दिन इस के गुणों को मानता जाता हूं। किसी डाक्टर ने सच कहा है कि संसार में मनुष्य भूकों कम मरते हैं। बहुत लोग अधिक खाने से ही मर रहे हैं। प्रति दिन आवश्यकता से अधिक खा कर लोग बुरे माद्दे अपने भीतर भरते हैं और फिर किसी न किसी रोग का आखेट रहते हैं। उपवास के दिनों में यही मवाद खाया जाता है। शरीर के मल का नाश हो जाता है, रक्त विषों से रहित हो जाता है शरीर और मस्तिष्क हलका होता जाता है, मन की एकाग्रता बढ़ती जाती है। विचार तो करो कि मनुष्य ने कितना बुरा माद्दा अपने भीतर एकत्र कर रक्खा है कि दो तीन मास भी भूका रह कर मरता नहीं है, इसी पर गुज़ारा करता है। आइलैंण्ड के हीरो मैक्सविनी ने जेल में उपवास किया था। वह ७२ दिन तक जीवित रहा। अमेरिका के डाक्टर टैनर ने ८० दिवस का उपवास कर के अपने शरीर को नया बना लिया। एक पादड़ी का समाचार पत्र में समाचार पढ़ा कि उस की स्त्री का देहान्त हो गया। वह उस के ग्रह में मरने के विचार से खाना छोड़ कर पहाड़ की चोटी पर चढ़ गया। ४० दिन के बाद न केवल उस की दशा स्वास्थ्य में परिवर्तित होगई बरन् हृदय में भी परिवर्तन होगया और वह पहले से अच्छा मनुष्य बन कर उतर आया। महात्मा गांधी जी का तो शरीर भी भारी नहीं फिर भी २१ दिन तक उन्हों ने उपवास कर लिया जो कि उन के शरीर के लिये बहुत प्रतीत होता है। मैंने दस दिन से कुछ नहीं खाया, फिर भी अभी तक यह उपवास हो जाता है। कफ प्रातः समय कुछ कंठ और नाक से निकलती ही है और मैं जब प्रातः काल उठता हूं ऐसा ही प्रतीत होता

है जैसे रात कुछ खा कर सोये थे। कहिये यह सब कुछ फ़ालतू था या नहीं जो खर्च हो रहा है।

मनुष्य के मन में यह ग़लत विचार बैठा हुआ है कि भूका रहने से मर जायेगा। रीछ जब हिम गिरता है ४-४ मास तक गढ़ों में भोजन बिना छिपे रहते हैं। सांप चिरकाल तक वायु पर जीवन व्यतीत करते हैं। मेंडक दबे दबाये वर्षा ऋतु आते ही न जाने किधर से उठ आते हैं। सर्व पशु पक्षी जब रोगी होते हैं खाना छोड़ देते हैं। यही बात प्राचीन काल में भारत के लोग करते थे और योगी तो अब तक भूके रहते हैं। अब भूखों मरने का विचार कैसे बढ़ सकता है?

मित्रो मैं कोई वीरता जतलाना नहीं चाहता कि मैं इतना लम्बा उपवास कर रहा हूं। वीरता हो चुकी। अब मैं आप को यह कहता हूं कि कष्ट थोड़ा है। साहस करो और तुम भी कर के देख लो। मन और शरीर की शुद्धि होती है।

सुनिये प्रति दिन का सविस्तर वर्णन

१२ नवम्बर—प्रातः नियमानुकूल दूध पिया और दोपहर को खिचड़ी खाई। उस समय यह विचार हुआ कि लम्बा उपवास करना है। मैंने कहा कि अब रात्रि को क्या खाना है अभी से उपवास आरम्भ है। रात्रि की भूक समय व्यतीत होने पर हट गई और प्रातः ऐसा ही प्रतीत हुआ मानो रात्रि को खा कर सोये हों।

१३ नवम्बर—प्रातः उठ कर व्यायाम, प्राणायाम इत्यादि नियमपूर्वक किये। विचित्र बात यह हुई कि पदम आसन में जहां पहिले पौन घन्टा बैठता था आज यकबार्गी एक घन्टा बैठा रहा। आज भूक समय पर लगती रही और २ घंटे पीछे तक रही। जब भूक प्रबल हुई तो पानी पीते रहे। काम बराबर सारे दिन किया। ४ बजे शिर भारी हुआ छाती में जलन हुई। रात्रि को जैसे निद्रा आती थी आई मगर मूत्र दो बार हुआ।

१४ नवम्बर—आज प्रातः जिह्वा पर मैल था और स्वाद बहुत बुरा था। भूक विशेष न थी। वायु निकली, मल थोड़ा आया। इस के पीछे एनिमा भी किया। प्रातः का व्यायाम इत्यादि बिना थकावट

किया। ८ बजे के बाद से भूक लगनी आरम्भ हुई और सारे दिन थोड़ी २ रही। काम बराबर किया। शिर भारी रहा। नाड़ी की गति तीव्र थी। माथा गरम था परन्तु उसका कोई उपाय नहीं किया। सोगये। प्रातः ठीक था।

१५ नवम्बर—स्वाद उठने पर और भी बुरा था। प्रातःकाल के सारे दैनिक कार्य्यों और व्यायाम इत्यादि के पीछे ३ मील सैर की। ८ बजे से आज मुख से पानी आना आरम्भ हुआ और दिन भर आता रहा और भूख तीव्र होगई, ऐसा कि जी घबराता है, कुछ बेईमान हो रहा है कि खाओ, किस मुसीबत में पड़ गये। पानी बार बार पिया परन्तु भूक बन्द नहीं हुई। सायम् को टेनिस खेला और फिर भी २ मील तक सैर की।

शरीर को तौलने से ज्ञात हुआ कि वज़न ६ सेर कम हो गया है। १० बजे सोकर ४½ बजे पहिले की भांति उठे। तब भूख न थी।

१६ नवम्बर—स्वाद बहुत बुरा, मल थोड़ा सा, पानी मुख से वैसे ही जारी जैसे कि वमन से पहिले हुआ करता है। प्रातः दैनिक कार्य्य सब वैसे ही किये। पृथ्वी पर शिर टेक कर ऊपर टांगें कर के खड़े रहने से व्यायाय में मुझे मुख खोलना पड़ता था वह खोलना नहीं पड़ा। नथुने स्वच्छ हैं। ५ मील सैर कर के फिर लौट कर आने पर भूक तीव्र होगई। अगले उपवास करने वालों का अनुभव यह पढ़ा जाता है कि ३ दिन के पीछे भूक बन्द होजाती है, जिह्वा पर मैल जम जाता है, कुछ खाने को जी भी नहीं चाहता। मेरे मुख का स्वाद तो बुरा है परन्तु जिह्वा मैली नहीं। भूक आज तक भी बन्द नहीं हुई, हर समय सताती है। परन्तु कुछ भी तो इस की सीमा देखनी ही है। काम बराबर किया।

सयम् को अपने आप पेट में गड़ बड़ हुई। एक दम थोड़ा काली रंगत का विरेचन हुआ और ऐसे ही आधी रात्रि को काला विरेचन हुआ।

१७ नवम्बर—प्रातः भी विरेचन हुआ। मरोड़ था, आम थी रक्त की लाग भी प्रतीत होती थी। तब एनिमा कर लिया। इस में आंव और पीला पानी निकला परन्तु गड़बड़ी जाती रही।

आज प्रतीत हुआ कि मन की एकाग्रता कम है, चंचलता अधिक है। नियमानुकूल सब कार्य्यों और व्यायाम से निवृत्त हो कर २ मील सैर की। आज सारे दिन भूक नहीं रही। परन्तु कभी २ वैसी तीव्र लगती रही। केवल चन्द ग्लास पानी ही पहिले की भांति पिया। पकौड़े तलते हुये देख कर उस की सुगंधि से जी लुभाया। ज्ञात हुआ कि खाने से अरुचि नहीं हुई है। कार्य्य इत्यादि था किया। काम में अब जी अधिक लगता है। थकावट नहीं होती है। सयम् को थोड़ा व्यायाम आरम्भ कर दिया है।

१८ नवम्बर—टट्टी नहीं आई। शेष सब बातें पूर्व की भांति परन्तु भूक आज फिर तीव्र है, बार २ लगती है। पानी ताज़ा पीता हूं। आज विचार हुआ कि ताज़े से उबाला हुआ पानी उत्तम है। इस लिये उबाल कर आधा रहने पर ठन्डा रखता हूं और उस को पीना आरम्भ किया है। आज जिह्वा पर श्वेतता की तह आगई है।

सायम् को पेट चलाने का व्याआम करते हुये वायु उठी और थोड़ा सा विरेचन काले और लाल रंग का हुवा। वज़न आज तक १० सेर कम होगया है।

२० नवम्बर-थोड़ा विरेचन हुआ, आंव और काला मैल। मुख का स्वाद बुरा, पानी कम निकला। जिह्वा पूर्व की भांति। शेष सब कार्य पहिले की तरह किये निर्बलता विशेष नहीं अनुभव होती, काम काज भली भांति वैसे ही होते हैं। भूक तीसरे पहर से कुछ सताती है। सायम् को ज़रा शिर भारी हुआ परन्तु शीघ्र ठीक हो गया।

२१ नवम्बर-आज तो प्रातः उठते ही शरीर में विचित्र ताज़गी और फुरती अनुभव होती है। स्वाद बहुत बुरा और जिह्वा मैली थी परन्तु ब्रश करने से बहुत बुरी नहीं रही। सैर से लौटने पर भी भूक न थी। ऐसा भी अनुभव होता था कि जैसे रात्रि को खा कर प्रातः समय सैर कर के आने पर थोड़ी २ भूक होती है। चित प्रसन्न है, मस्तिष्क स्वच्छ है, शरीर हलका है, वज़न केवल १ सेर और कम हुआ है। आज तो यही मन की इच्छा है कि सब लोग उपवास करने लग जायें।

पत्र नं० ४

उपवास में हानि का भय

इस से पहिले मैं ने अपने उपवास के दस दिन का वृतान्त लिख दिया था। ग्यारहवें दिन से एक विचित्र अवस्था उत्पन्न हुई जिस ने उपवास के सम्बन्ध में मेरे विचारों को पलटा दिया। मुझे उपवास से लाभ ही लाभ हो रहा था कि मेरे लड़के लड़कियों ने उपवास चौथे दिन के पीछे छोड़ दिया था इन में से एक को चौथे दिन वमन हुआ था।

मेरी धर्मपत्नी जब मैं ने उपवास आरंभ किया उस समय अपने मैके गई हुई थीं। मुझ को छटा दिन था जब वह आईं। उन का आते ही उपवास आरम्भ हो गया क्योंकि उन्होंने कहा कि यदि आप नहीं खाते तो मैं कैसे खा सकती हूं पांचवें दिन उन को कभी कभी वमन हो जाता है। पहिले भी कई बार वमन से कष्ट उठा चुकी हैं। मैं ने बहुतेरा समझाया, लड़कों ने भी कहा कि आप उपवास तोड़ दें परन्तु कोई युक्ति कृतकार्य न हुई। मैं ने सोचा कि स्यात वमन एक दिन में बन्द हो जायेगी परन्तु यह मेरी भूल थी। वमन अधिक से अधिक कष्टदायक होता गया और २३ नवम्बर प्रातः काल मैंने बुरी दशा देख कर संतरे का रस ले लिया और उन्हें भी दिया। परन्तु अब तो वमन ने बड़ा भयानक रुप धारण कर लिया और उन के जीवन से निराशा हो गई। उपवास के भयजनक प्रभावों से सब घबराने लगे। परन्तु परमात्मा ने कृपा की जो उस ने जीवन प्रदान किया।

अतः पाठकों को समझ लेना चाहिये कि उपवास हानि से रहित नहीं है। डाक्टर टरनर का लिखना मेरी समझ में आ गया। उसने लिखा है कि यदि दौड़ लगाते हुये किसी व्यक्ति की कोई रग फट जाये और वह मर जाये तो दौड़ लगाना बुरा नहीं हो सकता है। ऐसे ही उपवास से मृत्यु भी हो जाये तो उपवास को बुरा कभी नहीं कह सकते। जब तक लाभ ही होता जाता है तब तक जारी रखना चाहिये परन्तु यदि किसी को वमन आने लगें या किसी भी रोग का आरंभ हो नाड़ी ६० से कम या ९० से अधिक

चलने लगे तो शीघ्र उपवास को तोड़ देना चाहिये । अपने सम्बन्ध में मैं कह सकता हूं कि मुझे लाभ ही हो रहा था और कदाचित मैं उसे देर तक जारी रखता, यदि १२ वें दिन विवश हो कर मुझे छोड़ना न पड़ता । चौथवें दिन मैंने आहार थोड़ा आरम्भ कर दिया । इस बीच में जो लाभ मुझे हुये वह संक्षिप्त में यह हैं:—

२२ नवम्बर—को मेरे शरीर पर छपाकी सी निकल आई थी परन्तु जिन्होंने हैनीमेन की पुस्तक पढ़ी है उनको ज्ञात होना चाहिये कि यह शरीर के अच्छे होने का चिन्ह था । वह मेरे शरीर पर ८ दिन तक रही । छोटी आयु में निकल कर गुम होने वाली छपाकी का निकल आना उपवास की अच्छाई को प्रगट करता है । यद्यपि मैंने उपवास पूरा नहीं किया परन्तु मेरा शरीर और मस्तिष्क पहले से हलका और शुद्ध है और जिस आशय से मैंने इस को आरम्भ किया था वह पूरा होगया है और मुझे इस का पर्याप्त अनुभव भी होगया है । किसी भी व्यक्ति को जो उपवास करना चाहे मैं अब परामर्श देने के योग्य होगया हूं । दो तीन महाशयों ने मेरी आज्ञा के अनुसार आरंभ भी किया है । यदि कोई बाहिर के भाई उपवास चिकित्सा से लाभ उठाना चाहें तो वह मुझे लिख दें । एक दिन नियम करके उन सब को यहां बुला कर अपनी देख रेख में उपवास करा सकता हूं । उपबास चिकित्सा के विषय पर एक अलग पुस्तक लिखने का विचार हो रहा है ।

यहां हम ने इतना वर्णन कर दिया कि मानव शरीर को आहार की आवश्यकता कहां तक है । इस विचार ने जगत को बहुत हानि पहुंचाई है । लोगों ने भोजन को भी जल और वायु के समान आवश्यक समझा और यह सोचा कि जितना खाया जाये उत्तम है । इस में कोई सन्देह नहीं कि आहार न मिलने के कारण भी कंगाल मनुष्य संसार में मरते होंगे परन्तु संख्या से पता यह लगता है और अनुवेषकों का कथन है कि

अल्प आहार से इतनी मृत्युयें नहीं होतीं जितनी कि बहुभक्षण से ।

मनुष्य कई प्राकृतिक रीतियों से अपनी भूख बढ़ाता है और खूब खाता है । सभ्य कहे जाने वाले देशों में दिन में ६-६ बार खाते हैं ।

यदि मनुष्य का बस चले तो यह खाता ही रहे। एक राजा के विषय में कहते हैं कि वह पेट भर कर खा लेता था फिर वमन कराकर आमाशय को खाली कर के फिर खाना आरम्भ कर देता था। पेट भर जाता परन्तु जी न भरता। बहुभक्षण से मानव शरीर भिन्न २ दूषित पदार्थों से भर जाता है जो कि रोग का कारण बनते हैं। इस से भी बढ़ कर जब फ़ारेन मैटर और वसा बढ़ने लगती है तब मनुष्य आवश्यकता से अधिक मोटा होता जाता है। यह ठीक है कि कतिपय मनुष्यों की प्रवृत्ति मोटाई की ओर होती है परन्तु यदि यह आहार में सावधानता न रक्खें तो उनका शरीर बहुत ही बेडौल, शिथिल और भद्दा होकर स्वास्थ्य को बिगाड़ देता है, आयु को घटाता है। यतः प्रत्येक मनुष्य कुछ न कुछ अधिक खा जाता है अतः बुद्धिमानों ने नियम बना रक्खा है कि सप्ताः या पखवाड़े में एक व्रत या उपवास कर लिया करें। परन्तु यहां भी हम ग़लती करते हैं। हम व्रत के दिनों में नियत समय से आगे पीछे दैनिक मात्रा से अधिक खा जाते हैं। अब ऊपर लिखित वर्णन से पाठकों को यह विदित हो जायगा कि उपवास कैसे करना चाहिये और इस से किस प्रकार पूर्ण लाभ उठाना चहिये। हर एक मनुष्य को लम्बे उपवासों की आवश्यकता नहीं। यदि कोई सप्ताह में या १५ दिवस में एक बार पूर्ण उपवास करता है और दैनिक आवश्यकता से अधिक नहीं खाता है तो उसको लम्ब उपवासों की आवश्यकता न होगी। उपवास तो दण्ड है उन लोगों के लिये जो कि आहार के नियमों का पूर्ण रूप से पालन नहीं करते हैं

अब हमें आप को यह बतलाना है कि मनुष्य को कितना आहार खाना चाहिये, क्या खाना चाहिये, कितनी बार खाना चाहिये, कैसे खाना चाहिये। इन सब बातों का पूर्ण वर्णन अपनी पुस्तक "खुराक" में जो उर्दू में छप चुकी है कर चुके हैं। अतः पाठक गण इस से आगे सारे विषय को समझने के लिये उस पुस्तक को पढ़ें। यहां इस पुस्तक में पुनः लिखना अधिक लाभदायक न होगा।

निद्रा तथा जाग्रति

जीवन की आवश्यकताओं में सोना और जागना चौथे दर्जे पर वर्णन किये जाते हैं। मनुष्य यदि सदैव जागता ही रहे तो भी जीना

दुर्लभ है और यदि सोता ही रहे तो भी जीवन स्थिर नहीं रह सकता है। मनुष्य सोये या जागे बिना कहां तक जीवित रह सकता है। इस की कोई सीमा नियत नहीं की जा सकती है। ऐसे उदाहरण वर्तमान हैं कि कई पागल किसी समय भी नहीं सोते हैं और फिर भी बहुत वर्षों तक जीवित रहते हैं। विलायत के समाचार पत्रों में एक लड़की का वृतान्त छपा था जो कि ५ वर्ष की थी और इसी आयु में सो गई थी और उस समय उठी थी जब कि १० वर्ष की हो चुकी थी। आहार उसे मुख द्वारा पहुंचाया जाता रहा परन्तु वह कभी उठी नहीं और डाक्टर लोग जब देखते थे तो भीतर के सब अवयव कार्य्य करते दिखाई देते थे। हमारे अपने चिकित्सा कार्य्य में ऐसे कई मनुष्य हमारे सामने आये जिनके इतनी रुक्षता बढ़ गई थी कि महीनों से उन को १ मिनट भी निद्रा नहीं आई थी। यह सब कुछ होते हुये यदि किसी साधारण मनुष्य को सोने से रोक दें तो उसकी दशा बहुत बिगड़ जाती है। कतिपय समय पुलिस क़ैदियों को नहीं सोने देती जिससे वह तंग आकर अभियोग को स्वीकार करलें। वह लोग कहते हैं कि वास्तव में निद्रा तलवार की धार पर भी आजाती है। इधर जगाया उधर आंख बंद होने लगती हैं शिर पीड़ा आरम्भ होजाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यदि हठात् इस क्रम को जारी रक्खा जाये या तो गहरी निद्रा आयेगी जो कि खोलने से न खुलेगी या मनुष्य की मृत्यु होजायेगी। ऐसे ही किसी मनुष्य को कहें कि तुम सदैव सोये रहो तो यह बात भी असम्भव होजाती है। उस को जागना भी होगा। और यदि वह सोया रहे अप्राकृतिक निद्रा है जैसा कि वर्णन हुआ तो वह रोग है और कहां तक उसके होते हुये जीवन स्थिर रहता है इस का ठीक अनुमान नहीं हुआ है।

सोना मनुष्य के लिये क्यों आवश्यक है? सोने और जागने से क्या २ होता है? सोने में संयम क्या है? संयम से आगे बढ़ें तो क्या चिकित्सा है? सोना कब चाहिये? किस करवट सोना चाहिये? भोजन के पीछे किस प्रकर सोना चाहिये? दिन को कब सो सकते हैं? स्वप्न क्यों दिखाई देत हैं? स्वप्न के फलों की गुत्थी क्या है और क्या स्वप्न के फल हैं? इन सब बातों के अब लिखने की आवश्यकता है किन्तु हम यह सारी की सारी बातें एक पृथक पुस्तक "मीठी नींद

और फ़ल्सफ़ये ख्वाब" में लिख चुके हैं इस लिये उनको यहां पुनः न लिखकर पाठकों से इस के पढ़ने का अनुरोध करते हैं"।

५-रोकना और छोड़ना

जिस प्रकार मनुष्य के जीवन के लिये वायु, जल आहार और सोना जागना आवश्यक हैं इसी प्रकार रोकना और छोड़ना जिन्हें यूनानी परिभाषा में एहतबास और इस्तिफ़राग कहते हैं आवश्यक हैं। जब तक यह संयम दशा में रहते हैं मनुष्य का शरीर बहुत से कष्टों और रोगों से सुरक्षित रहता है। एहतबास के शब्दार्थ हैं बन्द होना या रोकना और इस्तिफ़राग़ के अर्थ हैं निकलना। हम लोग जो आहार शरीर की टूट फूट से उत्पन्न होती कमी को पूरा करने के लिये खाते हैं उसका पचना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि जब तक आहार पचेगा नहीं उसका जौहर न बन सकेगा और शरीर की टूट फूट की मरम्मत न हो सकेगी। इसलिये आवश्यक है कि जो आहार हम खाते हैं वह उस समय तक शरीर के भीतर रुका रहे जब तक कि पच कर उसका जौहर शरीर न निकाल लेवे। पचने तक आहार के शरीर के भीतर रुके रहने ही को यूनानी परिभाषा में एहतबास कहते हैं। अब यह प्रगट है कि एहतबास जीवन को स्थिर रखने के लिये कितना आवश्यक है। यदि इधर हम खावें उधर निकल जावे तो आहार शरीर का अंश ही न बनसके। फिर पच जाने के पीछे भी यदि मल को रोकने की शक्ति न हो तो जीवन दूभर हो जाये। मूत्राशय में यदि रोकने की शक्ति न हो तो मूत्र बिन्दु २ हर समय आता रहे। अंतड़ियों में यदि रोकने की शक्ति न हो तो मल हर समय निकलता रहे। वीर्य्य कोष में यदि रोकने की शक्ति न हो तो वह भी हर समय गिरता रहे।

अब जो आहार पचता है वह सब का सब जौहर ही नहीं बन जाता। उसका बहुत सा अंश अधिक होता है और मल के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यही मल मूत्र, और पसीने के रूप में हमारे शरीर से निकलता रहता है। इसका नाम इस्तिफ़राग़ है। यदि मनुष्य स्वास्थ्य रक्षा के नियमों के अनुसार ठीक प्रकार जीवन व्यतीत करे अर्थात् स्वच्छ, ताज़ा और खुली वायु में रहे, अच्छा और स्वास्थ्यदायक जल पिये, लाभदायक और उचित आहार खाये और पर्याप्त गति और

व्यायाम से कार्य्य ले तो यह सब मल भली प्रकार उसके शरीर से निकलते रहते हैं और उसका मुख सुन्दर, शरीर स्वस्थ मस्तिष्क उज्जल और प्रसन्न रखता है। संसार में जितने रोग हैं उन सब की जड़ कोष्ठ बद्धता है अर्थात् इस्तिफ़राग़ का बन्द होना या शरीर का उन मलों को अपने भीतर रखना जो कि उसको निकालने चाहियें। पसीना बन्द हो जाये तो तत्क्षण शरीर भारी होजायें और भिन्न २ प्रकार के रोग आ जायें। मूत्र बन्द हो जाये तो उसका विष समस्त शरीर में फैल कर मस्तिष्क का विगाड़ कर दे और संभव है कि अति शीघ्र मृत्यु का कारण बने। मल बन्द रहे तो समस्त शारीरिक मण्डल बिगड़ जाये। ऐसे ही नेत्रों और नासिका को, कान को अपने २ मल निकालने होंगे और उचित समय पर शरीर को अपने जीवन के सार को भी छोड़ कर एक नये जीवन की नीव रखनी होगी। इसमें इतना अपवाद है कि इस में एहतबास यदि बुद्धिमानी के साथ जारी रहे तो हानिकारक नहीं होता है नहीं तो उसका एहतबास भी कई रोगों का कारण बनता है। अतः यह बात ठीक है कि यदि कोष्ठबद्धता न हो तो अनेक रोग दूर होजायें और लोग सुख शांति से आयु व्यतीत करें। मुफ़र्रेह उल कुलूब में लिखा है कि "जब निकलने के योग मल शरीर में बन्द होता है और रुकने की क्रिया वर्तमान होती है तो उसका आवश्यक परिणाम यह होता है कि वह स्वयं विकृत होता है और जो नया आहार खाया जाता है उस को भी विकृत करता रहता है जिस से वह भली प्रकार पच कर शरीर का अंश बनने की जगह अनेक प्रकार के रोग यथा अंगशिथिलता कंपकंपी इत्यादि उत्पन्न करता है। अतः जानना चाहिये कि एहतबास की भांति इस्तिफ़राग़ भी जीवन को स्थिर रखने के लिये आवश्यक है और स्वास्थ्य के लिये अनिवार्य्य है।

रोकने और छोड़ने की क्रियायों का संयम अवस्था में रहना मानो मनुष्य का स्वस्थ रहना है। यदि एहतबास अधिक हो तो उस से विकृत मल के शरीर के भीतर रुक कर रोग उत्पन्न करने का सन्देह है और यदि कम हो तो उससे रुकने योग्य आहार के शरीर से निकल जाने से शरीर के निर्बल हो जाने का भय है। इसलिये वैद्यक पुस्तकों में मल, दोष, धातु तीनों को शरीर की नीव कहा है। मल भी शरीर में रहने आवश्यक हैं। यदि किसी मनुष्य को कठिन जुल्लाब दे कर

उस के सारे मल को बिल्कुल निकाल दिया जाये तो उसकी मृत्यु हो सकती है। प्रत्येक स्थान पर उसका अपना २ मल थोड़ा सा स्थिर रहता है। इस लिये भी यदि इस्तिफ़राग़ की अधिकता हो तो अच्छी आर्द्रताओं के निकल जाने का भय है और यदि कम हो तो मलों के इकट्ठ होने से रोगी हो जाना संभव है।

पहलबास और इस्तिफ़राग़ मनुष्य के जीवन में दैनिक होता है और उस के अनेक रूप हैं। मल, मूत्र, पसीना, रेंट, थूक, कान, आंख इत्यादि इन्द्रियों के मैल यह सब इस्तिफ़राग़ के हेतु हैं। जिस व्यक्ति के शरीर से मल मूत्र पसीना रेंट थूक मैल इत्यादि उचित मात्रा में निकलते रहें जिससे उसका मन प्रफुल्लित रहे समझना चाहिये कि उसके शरीर की मलीन आर्द्रतायें भली प्रकार निकल रही हैं। परन्तु यदि मल मूत्र पसीना इत्यादि निकलने की दशा में भी उसका चित प्रसन्न नहीं रहता और जी उदास है तो उसका अर्थ यह है कि इस्तिफ़राग़ और पहलबास में संयम नहीं है। इसका पता लगा कर इस को दूर करना चाहिये।

सब से अधिक ध्यान आहार की नाली का रखना होता है और यदि वह स्वच्छ रहे, मल बड़ी आंत में एकत्रित न रहे तो मनुष्य रोगों से सुरक्षित रहता है।

अमेरिका के डाक्टरों ने सर्व चिकित्सायें छोड़ कर प्रत्येक रोग में हुक़ना (वस्ति कर्म) करना आरम्भ किया था और अब भी इस विधि पर कई कार्य्य करते हैं। कहते हैं दैनिक वस्ति करने से अधिक मल निकल जाता है और रोग कोई नहीं होता। इसका सविस्तर वर्णन हम अपनी पुस्तक 'कोष्टबद्धता" में कर चुके हैं। पाठक वहां से देख लें। डाक्टर लुई कोहनी की चिकित्सा विधि अब भारत वर्ष में भली भांति प्रचलित है। वह वस्ति नहीं देता। उसके ४ प्रकार के स्नान हैं। स्टीम बाथ से पसीना द्वारा मल निकलते हैं, हिप बाथ से आंतों में बल आकर कोष्टबद्धता अपने आप जाती रहती है। सन बाथ से विकृत दोष जलते हैं और सिट्ज़ बाथ से अभ्यन्तरिक अंगों के मल विचित्र रीति से निकलते हैं। इन का सविस्तर वर्णन भी "डाक्टर लुई कोहनी के ४ स्नान" नाम की पुस्तक में कर चुके हैं।

वैद्य, हकीम, डाक्टर बराबर इस बात का विचार रखते हैं और कतिपय अवस्थाओं में किसी भी चिकित्सा करने से पूर्व रेचक औषधियां देते हैं। यही नहीं वरन् काल्पनिक रोगों में वैद्यक में सब से पहले पंच कर्म करते थे या वैसे ही कभी २ या ३ वर्ष में एक बार पञ्च कर्म किया जाता था कि शरीर नितान्त स्वच्छ हो जावे। आगे पंच कर्म का थोड़ा सा वर्णन करेंगे।

यूनानी हकीमों का मत है कि स्वस्थ से स्वस्थ मनुष्यों के जीवन में भी प्रायः ऐसे कारण उत्पन्न हो जाते हैं जिन से रोकने और छोड़ने के कर्म संयम अवस्था में नहीं रहते। इस लिये विरेचन अवश्य लेना चाहिये। अतः पुराने हकीमों में कइयों ने लिखा है कि मास में १ बार विरेचन लिया जाये और वर्ष में २ बार लेने की आज्ञा तो साधारण है जिस से बहार और ख़रीफ़ की फ़सलों में मल शरीर से निकल कर शरीर स्वस्थ हो जाये। प्राकृतिक चिकित्सा करने वालों ने यह विचार प्रगट किया है कि विरेचन नहीं लेना चाहिये और यह है भी ठीक। औषधि बिना ही यदि आंत स्वच्छ रक्खी जासके तो यह उत्तम है और यदि स्वास्थ्य की दशा में इस्तिफ़राग़ और एहतबास को ठीक रक्खा जाये तो फिर रोगी हो कर इस्तिफ़राग़ की विविध विधियों पर कार्य्य करने की आवश्यकता ही क्या है? हिन्दू योगी और ऋषि मुनि अब भी आवश्यकता पर औषधि के बिना इस्तिफ़राग़ कर लेते हैं। तात्पर्य्य तो प्रत्येक दशा में यह है कि शरीर स्वच्छ रहे। वैद्यक पुस्तकों में इस पर बहुत बल दिया गया है। चरक सूत्र स्थान में लिखा है:—

"शरीर के निचले भाग में दो छिद्र हैं, एक मल का और दूसरा मूत्र का। चेहरे में ७ छिद्र हैं, एक मुख, दो मैथुन, दो चक्षु और दो कान।" शरीर में जितने रोम हैं सब पसीना निकलने के रस्ते कहलाते हैं और इन सब को शरीर के मल निकलने के रस्ते कहते हैं। यह रस्ते मल के बिगड़ने अथवा मात्रा से अधिक मल के इकट्ठा होने के कारण विकृत हो जाते हैं। इन रस्तों के भारी होने से मैल की अधिकता और उनके हलके होने से मैल की कमी होती है। इस के अतिरिक्त इन रस्तों के चिन्ह या खुले होने से भी मैल की कमी अधिकता होती है। कमी या अधिकता के कुछ चिन्ह वागभट्ट में यह लिखे हैं।

वागभट्ट ने यह लिखा है:—

"मल के कम हो जाने से वायु अन्तड़ियों में गुड़ गुड़ करती है और इधर उधर घूमती है और ऐसा प्रगट होता है जैसे अंतड़ियां लिपटी जा रही हैं, पहलुओं में चक्कर लगती है कभी नीचे जाती है कभी ऊपर आती है। पसलियों और आमाशय में बड़ा शूल होता है।

"मूत्र के कम हो जाने से मूत्र पीड़ा के साथ निकलता है। इसका वर्ण बिगड़ जाता है या रक्त से मिला हुआ मूत्र निकलता है और फिर मूत्र का विष शरीर में फैल जाता है"।

"पसीने के कम हो जाने से रोम गिरने लगते हैं कठोर हो जाते हैं और चमड़ा फट जाता है"।

"दिखाई न देने वाले महीन मलों के कम हो जाने से उनके स्रोत सूख जाते हैं, उनमें पीड़ा होने लगती है और वह खाली और हल्के होजाते हैं"।

इसी प्रकार मलों के बढ़ जाने के सम्बन्ध में वागभट्ट ने लिखा है:—

"मल के बढ़ जाने से अफारा, भारीपन, और पीड़ा होजाती है, पीड़ा के बढ़ जाने से मूत्राशय में चुभन होती है और मूत्र करने से ऐसा प्रतीत होता है जैसे मूत्र निकला ही नहीं। पसीने के बढ़ जाने से पसीना बहुत आता है, दुर्गन्धि आने लगती है और कण्डु होजातो है। इसी प्रकार मलों के बढ़ जाने से नेत्रों से चीपड़ इत्यादि निकलती है और भारी पन होजाता है"।

मल निकलने के विषय में एक कहावत है कि योगी दिन में १ बार, भोगी दिन में २ बार और रोगी दिन में २ बार से अधिक शौच को जाता है। योगी खाते भी कम हैं इस लिये एक बार ही वह अपनी अन्तड़ियों को स्वच्छ कर लेते हैं। भोगी अर्थात साधारण लोग दो बार जाते हैं परन्तु अमेरिका के डाक्टर केलाग का कथन है कि जितनी बार मनुष्य खाये उतनी बार उसे टट्टी जाना चाहिये। स्वास्थ्य यह कि खाया हुआ पच कर ५ घन्टे के पीछे निकल जाये। मल जब गुदा तक पहुंच जाता है तो हम उसको स्वभावतः बन्द रखते हैं। अनुभव यह है कि एक बार भी खुल कर जिसे टट्टी आजाये तो मनुष्य सामान्यतः स्वस्थ रखता है और २–४ बार जाने की आवश्यकता नहीं है। जिन जिनको दो समय जाने का स्वभाव है वह दो समय जायें। ऐसे लोग

जो कई २ बार जाने की आवश्यकता समझते हैं और टट्टी जाते हैं फिर भी उनकी तसल्ली नहीं होती वह रोगी हैं।

महाराष्ट्र के एक स्वामी जी जो ब्रह्मचर्य्य का उपदेश करते हैं और जिन्होंने मरहटी और हिन्दी में एक पुस्तक "ब्रह्मचर्य्य ही जीवन है" लिखी है लिखते हैं कि मनुष्य को दिन में २ बार शौच को जाना चाहिये। इस से स्वास्थ्य ठीक रहता है और बीर्य्य के सम्बन्ध में रोग बहुत कम उत्पन्न होते हैं ।

परन्तु जो एक बार टट्टी जाने का पहले ही से स्वभाव रखते हैं और जिन्हें किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता उन्हें अपना स्वभाव बदलने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है । जो लोग बार २ टट्टी जाते हैं उनको किसी योग्य वैद्य से रोग निदान करा कर उचित चिकित्सा करानी चाहिये ।

मलों का रोकना

एक बात मलों के सम्बन्ध में अवश्य स्मरण रखनी चाहिये । जब प्राकृतिक वेग हो तो शरीर के किसी मल को हठात् न रोकना चाहिये। किसी भी शारीरिक वेग को रोकने से उदावर्त नाम का रोग होता है। इस से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं जो जीवन को दूभर बना देते है। संक्षिप्त में मल मूत्र को जान बूझ कर रोकने से भी वही सब कष्ट बल्कि इससे भी अधिक होते हैं जो विविध कारणों से मलों के रुकने से उत्पन्न होते हैं। विस्तार से वेग रोकने की बुराइयां निम्न लिखित हैं।

प्राकृतिक बहाओं का रोकना

भूक, प्यास, नींद, सांस, वमन, जम्हाई, छींक, डकार, आंखों का जल, वीर्य्य, मूत्र, मल, पाद इन १३ में से किसी १ को भी रोकें तो निर्बलता तो एक ओर, बहुत से रोग उत्पन्न हो जाते हैं ।

भूक को रोकने से

ऊंघना, शरीर के अंगों का टूटना, खाने से घृणा और दृष्टि निर्बलता इत्यादि रोग होते हैं। जिस समय भूक लगे उसी समय खा लेना स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है। जिस समय शरीर और उसके सारे

अङ्गों को आवश्यकता होती है वह अपनी इच्छा को आमाशय पर प्रगट करते हैं और आमाशय फिर खाने को मांगता है जिससे प्रत्येक अङ्ग को उसका आहार पहुंचा दें। उस समय आमाशय को आहार न देना आमाशय और सारे शरीर को निर्बल करता है। जब आमाशय की इच्छा अथवा आवश्यकता पूरी नहीं की जाती तो वह मांग २ कर थक कर बैठ जाता है और पीछे जब खाने को दो तो घृणा सी प्रतीत होती है। भूक को रोकने से रक्त कम अनुभव होता है।

प्यास को रोकने से

कण्ठ और जिह्वा का सूखना, कम सुनाई देना, हृदयशूल इत्यादि रोग होजाते हैं। मानव शरीर के भीतर जठराग्नि प्रत्येक समय उत्पन्न होती रहती है। हिलने जुलने चलने फिरने कार्य्य करने से बहुत बल खर्च होता है और वह अंगों में शुष्की पैदा करती और आर्द्रता को सोख लेती है। पानी खुशकी को दूर करता है। जो लोग प्यास को रोकते हैं उनकी मलीन आर्द्रतायें शरीर में प्रविष्ट होकर भांति २ के रोग उत्पन्न करती हैं। बल कम होजाता है मस्तिष्क में खुश्की होजाती है, मन में काहिली, बेचैनी इत्यादि बहुत से विकार तुरन्त आरम्भ हो जाते हैं।

निद्रा के वेग को रोकने से

माधव ऋषि लिखते हैं:—

जम्हाई, शरीर का टूटना, नेत्रों का कठोर और शुष्क होजाना माथे का कठोर होना, ऊंघना इत्यादि रोग होते हैं।

श्वास के वेग को रोकने से

उदाहरण के लिये एक मनुष्य दौड़ता हुआ आया है। अब उसे स्वांस चढ़ रहा है। यदि हठात् उसे रोकने की इच्छा करे और रोके और स्वतंत्र रुप से न लेवे तो उसको सांस का रोकना कहते हैं। सांस के रोकने से हृदय रोग, वायुगुल्म और बेहोशी इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं।

आते हुये वमन को रोकने से

खुजली, धप्पड़, आहार से घृणा, छाईं, सूजन, पाण्डु रोग, ज्वर, कुष्ठ, मलीन, विसर्प इत्यादि रोग उत्पन्न होते हैं। जो वस्तुयें हम

खाते हैं वह आमाशय में जाकर पचती हैं। यदि कोई ऐसी वस्तु खाई जाये जो हमारे शरीर के लिये हानिकारक है और हमें खानी चाहिये थी तो आमाशय स्वभावतः उसे ग्रहण नहीं करता और उसे बाहर निकालने का यत्न करता है। यदि उस विकृत पदार्थ को बाहर निकालने दें और निकल जावे तो कोई बुराई नहीं होती परन्तु हठात या यत्न से जो वमन को रोका गया तो वह स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने वाला भीतर ही रहेगा अवश्य भिन्न २ प्रकार के रोग उत्पन्न करेगा। कोई वस्तु ऐसी होती है कि रोटी में खाई जाती है, यद्यपि हमें उसका ज्ञान नहीं होता, परन्तु आमाशय उसे स्वीकार नहीं करता क्योंकि स्वास्थ्य का शत्रु है। उस समय आमाशय की सहायता करनी चाहिये न कि उस बुरी वस्तु की।

आती हुई छींक को रोकने से

शिर पीड़ा, मुख का टेढ़ा हो जाना अधरङ्ग निर्बलता, शरीर का जकड़ जाना इत्यादि रोग हो जाते हैं।

जाती हुई जम्हाई को रोकने से

नेत्र, नासा, मुख, कान के रोग, बादी के रोग, गले इत्यादि का जकड़ना आदि रोग होने का भय है।

आते हुये डकार को रोकने से

बहुधा वातज रोग उत्पन्न होते हैं जैसे कण्ठ और मुख का भारीपन, नोचने की सी बहुत पीड़ा होना और जो समझ में न आवे ऐसी बात मनुष्य का आरंभ कर देना।

वीर्य्य के वेग को रोकने से

माधव ऋषि लिखते हैं कि वीर्य्य के वेग को रोकने से मूत्राशय में सूजन हो, गुदा और अण्डकोषों में पीड़ा हो और मूत्र बहुत कष्ट से आवे, शुक्रमेह और इसी प्रकार के और बीसियों रोग उत्पन्न हो जावें।

मूत्र को रोकने से

मूत्राशय और लिङ्गेन्द्रिय में पीड़ा हो, प्रमेह हो, मूत्र कष्ट से उतरे शिरःशूल हो, पेट में अफारा हो जाये और शरीर सीधा न हो।

मल को रोकने से

गुड़गुड़ाहट हो, शूल हो, गुदा में कतरने की सी पीड़ा हो, बुरी प्रकार की कोष्ठबद्धता हो, डकारें आयें और यह भी संभव है कि टट्टी मुख द्वारा हो ।

पाद के रोकने से

मल रुक जावे, पेट फूल जावे, पेट में पीड़ा हो, सुई चुभने का सा कष्ट हो और कई वातज रोग उत्पन्न हों, शूल आरंभ हो जावे।

एहतबास के कारण

शैख़ बू अली सीना ने एहतबास (मल के रुकने) के ८ कारण लिखे हैं जो निम्न लिखित हैं ।

(१) क़ुव्वते दाफ़ेआ का निर्बल होना जिस से वह मलों को निकालने के अयोग्य हो ।

(२) क़ुव्वते मासिका का बलवान होना जिस से कि वह उन माद्दों को जिनका इस्तिफ़राग़ आवश्यक हो रोके रक्खे ।

(३) क़ुव्वते हाज़िमा का निर्बल होना जिससे जब तक आहार पच न जाये मल निकल न सके ।

(४) मजारी में तंगी होना या सुद्दे पड़ जाना जिस से मलों के निकलने में कठिनाई हो ।

(५) माद्दे का गाढ़ा हो जाना ।

(६) माद्दे का इतना अधिक होना कि कुव्वते दाफ़ेआ उस को निकालने के अयोग्य हो ।

(७) क़ुव्वते इरादिया को इस माद्दे के एहतबास का अनुभव न होना । परिणामशूल, कामला, पण्डुरोग इत्यादि में ऐसा होता है ।

(८) मन का किसी और स्थान पर केन्द्रित होना । एहतबास जिस कारण से हो उसी के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये । इकट्ठे हुये मलों को आप इस्तिफ़राग़ से निकाल सकते हैं । परन्तु आगे के वास्ते न हों इस के लिये उचित चिकित्सा करनी होगी । इस के लिये किसी योग्य चिकित्सक से मिलना चाहिये ।

पञ्च कर्म्म

हम ने ऊपर वर्णन किया कि शरीर को मलों से शुद्ध करके स्वच्छ बनाने के लिये पञ्च कर्म्म लिखे हैं। वह यह हैं :—

(१) स्नेहन (चिकना करना), (२) स्वेदन (पसीना लाना) (३) वमन (४) विरेचन और (५) वस्ति कर्म (हुक्ना)। पूर्ण शुद्धि के वास्ते यह पांचों इकट्ठे भी किये जाते हैं और आवश्यकतानुसार अलग अलग भी।

(१) स्नेहन—इस कर्म को कहते हैं जिससे शरीर को चिकना किया जाता है। इस से सब रोम और स्रोत चिकने होते जाते हैं, सब खुश्की दूर हो जाती है, वात में विकार नहीं रहता है। इस में कोई चिकनाई घृत तैल इत्यादि अधिक सेवन कराई जाती है।

(२) स्वेदन—पसीना निकालने को कहते हैं जो स्नेहन के पश्चात् भली प्रकार होता है और समस्त शरीर को शुद्ध करता है।

(३) वमन—का अर्थ कै कराना है।
(४) विरेचन—का अर्थ जुल्लाब कराना। } इन दोनों से वास की नाली और अंतड़ियों के मल साफ़ हो जाते हैं।

(५) वास्तिकर्म—या हुक्ना या एनीमा अर्थात् औषधियों के काढ़े को गुदा द्वारा बड़ी आंत में चढ़ाना (वही यदि गर्भाशय या लिंग की नाली में की जाये तो उस को उत्तर वस्ति कहते हैं) आज कल केवल जुल्लाब के स्थान में आता है। वैद्यक में ऐसा नहीं है। हुक्ना का तात्पर्य्य शरीर के भीतर बल पहुंचा कर कई रोगों को दूर कर के दोषों को ठीक करना है। इन का सविस्तर वर्णन करने के लिये पृथक एक पुस्तक की आवश्यकता है। हम यहां इस पुस्तक के बढ़ जाने के डर से उस को संक्षिप्त में वर्णन करते हैं। यदि पाठकों ने रुचि प्रगट की तो पञ्चकर्म पर सविस्तर पुस्तक पृथक लिख दी जाएगी।

स्नेहन

स्नेह अर्थात चिकनाई २ प्रकार होती है (१) स्थावर (अजीव) और (२) जंगम में (सजीव)। स्थावर स्नेह में औद्भिद और जंगम में पाशविक चिकनाई काम आती है। स्थावर स्नेहों में तिलों के तैल और जंगम में घी को उत्तम माना गया है। जब घृत और तैल

दोनों को मिलाकर स्नेहन किया जाता है तो उसका नाम यमक हो जाता है और घी तेल और चर्बी के मिलाने से त्रिवृत नाम पड़ता है।

शार्ङ्गधर में लिखा है कि स्नेहों के सेवन से मनुष्य की जठराग्नि प्रज्वलित होती है, कोठा स्वच्छ होता है, शरीर के रस इत्यादि धातु पुष्ट होते हैं। जो व्यक्ति स्नेहन करता रहता है वह बहुत बलवान रहता है, मुख कान्तिमय रहता है और बुढ़ापा उसे नहीं सताता। हमारे घरों में कभी बालकों तक को घृत पिलाने की प्रथा थी परन्तु आज यह पञ्चकर्म क्रिया ही नष्ट हो चली है।

परन्तु ऐसे मनुष्यों को जिन्हों ने औषधियां बहुत खाई हों जिन के शरीर से बहुत पसीना निकलता हो, जुल्लाब लिये हों, या जो मदिरा पीते हों स्त्रियों पर आसक्त हों, श्रम करने के पीछे बहुत थके हों, सांसारिक चिन्ताओं से व्यथित हों और बूढ़ों और बालकों को स्नेह का सेवन नहीं कराना चाहिये। इस से उन्हें हानि पहुंचने का भय है। जब स्नेहन किया जाता है तो पर्याप्त परिमाण में घृत ही पिलाया जाता है। इस के पीछे आहार नहीं दिया जाता। उष्ण जल पी सकते हैं। घृत की मात्रा इतनी रखनी चाहिये जो ६ से २४ घन्टे में पच जाये।

स्नेहपान की ३ मात्रायें हैं। पहली मात्रा जिसे महती मात्रा कहते हैं वह है जो २४ घन्टों में पचे। जो मात्रा १ दिन (१२ घन्टों में पचे उसे मध्यम कहते हैं और जो मात्रा २ प्रहर (६ घन्टों) में पचे उसे अल्प मात्रा कहते हैं। घृत यदि ४ तोला (पाचन शक्ति का विचार करके) दिया जाये ६ घन्टों में पच जाता है। ४ से ८ तोले तक १२ घंटों में पच जाता है और ८ से १६ तक प्रायः २४ घन्टे ले लेता है। साधारणतया ३ दिन पिलाना पर्याप्त है। ७ दिन से अधिक नहीं पिलाया जाता है। ऐसा भी लिखा है कि घृत ३ दिन तैल ४ दिन चर्बी ५ दिन और हड्डी का तैल ६ दिन पिलाना चाहिये। परन्तु घृत का सेवन प्रायः होता ही है। शेष पञ्चकर्मी वैद्य समझ कर किसी रोग के विचार से पिलाता है। जब गर्मी की अधिकता हो केवल घी, जब वात हो लवण मिश्रित घी और जब कफ अधिक हो तो शुन्ठी, मरिच, पीपल यवक्षार मिलाकर घी पिलाते हैं। जो वैसे घी न खा सकें उन को चावल (भात या खिचड़ी) में मिला

कर घी दिया जा सकता है। इन में अल्प मात्रा जठराग्नि को भड़काती और काम शक्ति को बढ़ाती है और वातादि के छोटे रोगों को दूर करती है। मध्यम मात्रा शरीर को पुष्ट करती और वीर्य्य को बढ़ाती है और महती अर्थात् बड़ी मात्रा कुष्ट विष के विकार उन्माद मृगी इत्यादि रोगों को लाभदायक है।

स्नेह पान करने वाले मनुष्य को श्रम करना अधिक शीतल पदार्थ खाना, मल मूत्र इत्यादि के वेग को रोकना, जागना दिन में सोना कफ उत्पादक और रुक्ष अन्न खाना वर्जित है।

स्वेदन

इस के पीछे स्वेदन करना चाहिये। इस से शरीर के बहुत से मल निकल जाते हैं। स्वेदन ४ प्रकार का होता है (१) ताप (२) ऊष्म (३) उपनाह और (४) द्रव। रेत इत्यादि की पोटली से शरीर को तपा कर पसीना निकालने को ताप कहते हैं। यह कफ विकार का नाश करता है। काढ़े इत्यादि का भपारा दे कर पसीना निकालने को ऊष्ण कहते हैं। यह भी कफ का नाश करता है। किसी विशेष अङ्ग पर औषधियों की पिण्डी बांध कर पसीना निकालने को द्रव कहते हैं। यह कफ और पित्त के विकारों का नाश करता है। इन ४ प्रकार के अतिरिक्त १ और प्रकार भी है जिस को ताप संज्ञक कहते हैं। इस में घृत इत्यादि चिकनी और रेत इत्यादि रुक्ष वस्तुओं को मिला कर पोटली बना कर अंग सेंकते हैं जिस से पसीना निकलता है। आज कल पसीना निकालने की ताप अथवा उपनाह प्रायः २ ही विधियां हैं। अब ऐसी रेत इत्यादि भी निकाली गई हैं जिन में थोड़ा सा पानी पिलाने से गर्मी पैदा हो जाती है परन्तु वह प्रायः सेंक के काम आती है। पसीने के लिये पानी की गर्म भाप शरीर पर पहुंचाई जाती है। हम्माम चाहे वह उष्ण कमरे के भीतर हो या काष्ठ की बनाई एक आलमारी के भीतर हो जिसमें से शिर बाहर रक्खा जाता है यह द्रव विधि है। दूसरी विधि साधारण प्रचलित बिजली के लैमपों की ऊष्मा पहुंचाना है। यह ताप ही है।

डाक्टर लुई कोहनी जिसने सर्व रोगों के लिये ४ स्नान निकाले हैं वह स्टीम बाथ अथवा वाष्प स्नान को आवश्यक समझता

है। इससे पसीना शरीर से निकल कर सारा विकृत मल निकल जाता है। डाक्टर लुई कोहनी ने पसीने के लिये केवल उष्ण वाष्प ही सेवन की है। यह बारीकियां केवल वैद्यों ही के भाग्य में थीं कि वह दोषों का विचार कर के विधियों को बदल देते थे।

स्वेदन क्रिया उस अवस्था में करनी चाहिये जब खाना भली भांति पच चुका हो और जिस स्थान पर की जाये वहां वायु बहुत कम आ जा सके। जो लोग, अजीर्ण, तृषा, पित्तज रोग यथा कामला और उदर रोग में ग्रसित हों उन्हें स्वेदन क्रिया न करनी चाहिये और यदि स्वेद क्रिया आवश्यक ही हो तो हल्की विधियों से बहुत कम पसीना निकलाना चाहिये। हृदरोग, अण्डकोष और नेत्रों के रोगियों के शरीर से बहुत कम पसीना निकालना चाहिये। यदि अधिक पसीना निकल गया तो हानि पहुंच जायेगी। शरीर से बहुत सा पसीना निकालने से जोड़ों में पीड़ा होने लगती है, तृषा जाती है और पित्तज रोग उत्पन्न हो जाते हैं, शरीर में फुन्सियां भी निकल आती हैं।

वमन

पसीने के पश्चात तीसरा काम कै कराना है। वसंत और शरद ऋतु में कै और जुल्लाब कर देने से इकट्ठे हुये दोष निकल जाते हैं। वर्षा ऋतु के आरंभ में भी करवा सकते हैं। इससे कफ निकल जाता है और आमाशय की नाली स्वच्छ होजाती है। पाचक शक्ति की निर्बलता, हृदरोग, चर्म रोग, कण्ठमाला, कास, श्वास, पीनस, श्लीपद, अण्डकोष बृद्धि, अतिसार, पित्त और कफ के रोगों में और विषों के निकालने के लिये वमन विशेष रूप से लाभदायक है। परन्तु बहुत निर्बल, बहुत मोटे, बच्चों बूढ़ों तथा गर्भवती स्त्रियों को वमन नहीं करना चाहिये। ऐसे ही भूके, वस्ति किये और रुक्षता बढ़े हुये अथवा जिस को रक्त वमन द्वारा हों या कास के साथ रक्त आता हो या नकसीर बहती हो, जो कष्ट न सहन कर सकता हो ऐसे लोगों को भी वमन कराना चाहिये।

जिस व्यक्ति को वमन करना हो उसको पहले पेट भर कर यवागू (चावलों को कूट कर उस में ६ गुना पानी मिला कर जोश दें। जब

आपस में मिल जायें तो उतार लें। इसी को यवागू कहते हैं) दूध छाछ और दही पीने को दें। जो वस्तुयें प्रकृति अनुसार न हों और कफ उत्पादक वस्तुयें खिला कर फिर वमन करायें तो कै भली प्रकार होती है। जिस व्यक्ति ने घी पिया है उसको एक दिन का सावकाश दे कर कै कराना अच्छा है। पीपल, मैनफल और सैंधव लवण का चूर्ण उष्ण जल से पिला कर कै कराने से कफ निकल जाता है। पटोल पत्र, अड़ूसा और निम्ब पत्र का चूर्ण ठन्डे पानी से पिलाने से पित्त निकल जाता है। मैनफल चूर्ण दूध में डाल कर पीने से कफ़ वात का विकार जाता रहता है।

अजीर्ण में केवल सैंधव लवण उष्ण जल से पिलाते हैं।

वमन के वास्ते भर पेट यह वस्तुयें खिला कर फिर कण्ठ को किसी पर या अंगुली या एरण्ड की छाल इत्यादि से हिलाना चाहिये। ठीक प्रकार कै न होने से मनुष्य के मुख से राल टपकने लगती है, हृदय में पीड़ा होती है और शरीर पर मधुमक्षिका के काटने की भांति लाल चिन्ह होजाते हैं और उनमें खुजली होती है। अधिक कै होने से तृष्णा बहुत लगती है, हिचकी आती है डकार आती हैं दर्द होता है मुख से रक्त गिरता है, बार २ मनुष्य थूकता है और कण्ठ में कष्ट होता है।

ठीक प्रकार से कै होने से हृदय, मस्तिष्क और कण्ठ स्वच्छ होता है, जठराग्नि भड़कती है, शरीर हलका होता है और तीनों दोषों के विकार दूर होते हैं।

विरेचन

जिस प्रकार वमनकारी औषधियों के सेवन से कफ़ पित्त और वात पी हुई औषधि के साथ मुख द्वारा निकल जाते हैं इसी प्रकार विरेचन लेने से औषधि के साथ मल और पित्त इत्यादि गुदा द्वारा बाहर आते है। शार्ङ्गधर में जुलाब के विषय में लिखा है कि पहले स्नेह, फिर स्वेदन इसके पीछे वमन और अन्त में विरेचन करना चाहिये। इसका कारण यह बताया है कि कै कराये बिना विरेचन कराने से शरीर में भारीपन रहता है। भेड, चरक, सुश्रुत और वाग्भट्ट ने ऐसा भी लिखा है कि वमन देकर ६ दिन व्यतीत होजाने के पश्चात

तीन दिन स्नेह करें, तीन दिन शरीर से पसीने निकालें, फिर तीन दिन मृदु आहार (खिचड़ी इत्यादि) देकर २६ वें दिन विरेचन दें। विरेचन यदि आवश्यक हो तो प्रथम क्रियाओं के बिना भी हो सकता है।

स्वास्थ्य में असोज कार्तिक और चैत्र वैशाख में विरेचन कराया जा सकता है परन्तु यदि कोई रोग हो तो वैद्य के परामर्श से दूसरी ऋतुओं में भी विरेचन करा सकते हैं। बालकों, बूढ़ों, बहुत स्नेहन क्रिया करने वालों, दुबले, पतलों, थके, प्यासे, मोटे मनुष्यों, गर्भवती स्त्रियों, नवीन ज्वर ग्रस्त रोगियों, बालक जन कर उठने वाली स्त्रियों, मन्दाग्नि के रोगियों, अधिक मदिरा पीने वालों को विरेचन न करना चाहिये।

विरेचन की ३ मात्रायें लिखी है। एक वह जिस से ३० बार विरेचन होते हैं, दूसरी वह जिस से २० बार विरेचन होते हैं और तीसरी वह जिससे १० बार विरेचन होते हैं। इन तीनों को यथा क्रम उत्तम, मध्यम और हीन मात्रा कहते हैं। विरेचन के लिये प्रकृतियां भिन्न २ होती हैं। कतिपय मनुष्यों को साधारण सी औषधि से कितने ही विरेचन आजाते हैं और कइयों को जमालगोटे से भी कठिनता से आते हैं।

कोमल प्रकृति वालों को मुनक्का, दूध और एरण्ड के तैल से अच्छा विरेचन हो जाता है। मध्यम कोठे वलों को निशोत, कुटकी और अमलतास के गूदे से विरेचन करा दें परन्तु कठोर पेट वालों को थूहर का दूध, जमालगोटे की मींग, इन्द्रायण, संखिया का तैल इत्यादि तीव्र औषधियां भी दी जा सकती हैं। फिर हर दोष के निकालने के लिये भी ध्यान रखना पड़ता है।

विरेचन औषधियां देने के पीछे नेत्रों पर शीतल जल के छींटे देने पड़ते और इतर पुष्प इत्यादि सुगन्धियां और पान का बीड़ा खिलाने से उत्तम प्रकार के विरेचन आते हैं। रेचक औषधि के सेवन के बाद खुली वायु में न बैठना चाहिये, मूत्र इत्यादि के वेग को रोकना नहीं चाहिये, सोना और शीतल जल का स्पर्श तक वर्जित है। बार २ उष्ण जल पीने से उत्तम विरेचन होते हैं।

पर्याप्त विरेचन न होने से नाभि जकड़ जाती है, पसलियों में पीड़ा होने लगती है, मल रुक जाते हैं, वायु नहीं निकलती, शरीर में खुजली होती है और चकत्ते पड़ जाते हैं, शरीर भारी हो जाता है, जलन होती है, खाने को मन नहीं होता, पेट फूल जाता है, शिर चकराता है और वमन होता है। इस के विरुद्ध विरेचन साफ़ हो जाने पर इन्द्रियों में बल आ जाता है, बुद्धि तीव्र हो जाती है, चित प्रसन्न होता है, जठराग्नि भड़कती है। अच्छा विरेचन होने से वायु अपने स्थान पर घूमती है।

विरेचन के पश्चात वायु सेवन नहीं करना चाहिये। ठन्डा पानी तैल की मालिश और देर में पचने वाली वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिये। श्रम और मैथुन भी वर्जित है।

वस्ति (हुक़ना)

वस्ति (हुक़ना) को ठीक प्रकार करने से शरीर की अभिवृद्धि होती है, मुख पर कान्ति आती है स्वास्थ्य और बल बढ़ता है और आयु दीर्घ होती है।

हुक़ना या एनीमा आज कल बहुत प्रचलित है। सामान्यतः शुद्ध जल या उस में साबुन घोल कर कभी ग्लीसरीन मिला कर किया जाता है परन्तु वैद्यक में उस की बारीकियां बहुत वर्णन की हैं। औषधियों के काढ़े में कोई तेल इत्यादि मिला कर जो पिचकारी की जाये निरूह वस्ति कहलाती है और केवल घृत इत्यादि की पिचकारी अनुवासन वस्ति कहलाती है। स्त्री के गर्भाशय को शुद्ध करने के लिये जो पिचकारी की जाती है उस को उत्तर वस्ति कहते हैं। ऐसे ही मूत्राशय की शुद्धि के वास्ते मूत्र नाली से पिचकारी की जाती है। निरूह वस्ति में काढ़े की औषधियां शरीर की अवस्था के अनुसार होती हैं, कोई शरीर को मोटा करने वाली कोई पतला करने वाली, कोई किसी दोष को दूर करने वाली कोई किसी दोष को।

हुक़ना एक ऐसी वस्तु है जिस को प्राकृतिक चिकित्सा करने वालों ने भी लाभदायक माना है और उन का कथन है कि इसे करते रहने से शारीरिक मोरी स्वच्छ रहती है और कोई रोग नहीं होता है। "कोष्टबद्धता" पुस्तक में हम ने इस का कुछ वर्णन किया है।

वसंत ऋतु में अनुवासन वस्ति सायम् को और ग्रीष्म ऋतु वर्षा ऋतु और शरद ऋतु में रात्रि को देनी चाहिये। अनुवासन वस्ति से पहिले बहुत चिकनी वस्तुओं का सेवन न करना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से मूर्छा आती है। बहुत रुक्ष पदार्थों के खाने के पीछे वस्ति कर्म से बल और कान्ति कम होती है।

विरेचन करने के पीछे जब एक सप्ताह व्यतीत हो जाये और शरीर में बल आ जाये तो उस को आहार खिला कर अनुवासन वस्ति देना चाहिये। इसकी विधि यह है कि अंग पर तैल लगाकर हल्का पसीना निकाले और विधि अनुसार खाना खिला कर इधर उधर फिराये। और यदि मल मूत्र करने की आवश्यकता हो तो उसे करके वस्ति कर्म करे। बाईं करवट लिटा कर बायां पैर फैला दे दायें को सकोड़ कर फिर गुदा को स्निग्ध कर के वस्ति की नाली वस्ति के मुख पर डोरे से बांध कर उस नली को गुदा के ऊपर रक्खे और योग्य वैद्य उस नली को बायें हाथ में रख कर दायें हाथ से थोड़ा बल देकर उस में पिचकारी लगाये। वस्ति के समय जम्हाई लेना, छींकना खांसना इत्यादि वर्जित है।

वस्ति कर्म में खराबी हो जाने से ७६ प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं और अच्छा होने से सब रोग दूर हो कर शरीर बहुत ही बलवान हो जाता है।

निरूह वस्ति का दूसरा नाम आस्थापन है। इस की भिन्न २ विधियां हैं जिन के नाम उत्क्लेशन वस्ति, दोषहर वस्ति, दोषशमन वस्ति इत्यादि हैं। इस वस्ति से दोष और रस इत्यादि अपने २ स्थान पर स्थिर रहते हैं, इस लिये इस को आस्थापन कहते हैं और वात इत्यादि दोष और रोगों का नाश करती है इस लिये इस को निरूह कहते हैं।

इन वस्तियों का सविस्तर वर्णन करने से पुस्तक के लम्बे हो जाने का भय है इस लिये थोड़ा सा वर्णन कर दिया है। इन पञ्च कर्मों के अतिरिक्त नस्य, रक्त स्राव, जोंक सिंगी इत्यादि लगाना भी सब हस्तिफ़राग़ ही की विधियां हैं और आवश्यकतानुसार इन को ज्ञानी वैद्य कार्य में लाते हैं।

यूनानी चिकित्सा प्रणाली के अनुसार इस्तिफ़राग़

स्वास्थ्य में इस्फ़िराग़ प्रायः रोमछिद्रों मल मूत्र की इन्द्रियों द्वारा होता है परन्तु कभी मुख के द्वारा भी कराया जाता है। लिखा है कि स्वास्थ्य रक्षा के विचार से मनुष्य को वर्ष में दो बार जुल्लाब लेना चाहिये, एक तो चैत्र और वैशाख अर्थात बहार के मौसम में और कार्तिक अर्थात शरद ऋतु या खिज़ां में। इस का लाभ यह है कि शरद ऋतु में जो उष्ण और गाढ़े पदार्थ खाये जाते हैं उन से एक अधिक मल शरीर में उत्पन्न हो जाता है और बहार में जुल्लाब लेनेसे वह निकल जाता है जिससे गर्मियों में किसी रोग का भय नहीं रहता। इसी प्रकार गर्मी के मौसम में जो वस्तुयें खाई जाती हैं उन के सेवन से जो विकृत दोष उत्पन्न होते हैं वह दूसरे जुल्लाब में निकल जाते हैं और जाड़ों का मौसम चैन से व्यतीत होता है।

यूनानी चिकित्सा शास्त्र में इस्तिफ़राग़ की जो विधियां बताई गई हैं निम्न लिखित हैं:—

(१) पसीना लाना (२) जुल्लाब लेना (३) क़ै कराना (४) फ़स्द इत्यादि इस के अतिरिक्त जिमाअ अर्थात मैथुन को भी इस्तिफ़राग़ के कारणों में सम्मिलित किया गया है क्योंकि यूनानी चिकित्सा में मनी (वीर्य) को चौथे हज़्म (पाचन) का मल ही माना है। यद्यपि इस को न निकालने योग्य मल ही कहा है परन्तु इस को बिलकुल न निकालना भी रोग का कारण मानते हैं। हम्माम तो पसीना लाने ही में सम्मिलित हो जाता है। पसीना लाने की भिन्न २ विधियां हैं जिन में सब से अच्छा हम्माम है।

हम्माम

सब से अच्छा हम्माम वह है जो बहुत देर का बना हुआ हो खुला हुआ हो उष्मा इसकी न बहुत अधिक हो न बहुत कम। पानी उस का मीठा हो। इस के अतिरिक्त हम्माम की वायु स्वच्छ हो। उस में अंधेरा न हो।

उत्तम हम्माम में ३ दर्जे होते हैं और यथाक्रम एक दर्जा दूसरे से उष्ण होता है। पहले दर्जे में कपड़े उतारे जाते हैं, दूसरा दर्जा तीसरे और पहले दर्जे के बीच में होता है और तीसरे दर्जे में जो

पहले दर्जे से दूर होता है अग्नि जलाई जाती है। पहले दर्जे में बड़ा प्रभाव पानी का होता है। इस दर्जे की वायु अग्नि से दूर होने के कारण कम उष्ण होती है। अतः इसकी उष्णता अस्थिर होती है और शीघ्र जाती रहती है। इसी कारण यह दर्जा सर्दी और तरी पैदा करता है जो पानी का अपना गुण है। दूसरे दर्जे की वायु पहले दर्जे की वायु से बहुत अधिक उष्ण होती है इस लिये पानी की तरी का प्रभाव नष्ट हो जाता है और उष्णता और रूक्षता शेष रहती है।

गर्म दर्जे में जाने और बाहिर आने में शीघ्रता से कार्य्य न लेना चाहिये। दर्जे से दूसरे दर्जे में आना आवश्यक है। विशेष कर बाहिर आने में तो विशेष सावधानी की आश्यकता है। अचानक बाहिर निकल आने से सर्दी के कारण रोमछिद्र बन्द हो जाते हैं और मल त्वचा के भीतर जम जाता है और उससे जीर्ण ज्वर उत्पन्न हो जाते हैं। इसी प्रकार उष्ण दर्जे में बहुत देर तक ठहरना उचित नहीं है क्योंकि उष्ण वायु श्वास द्वारा भीतर जाकर दिल और रूह को गर्म कर देती है और मूर्छा, बेचैनी, खुश्की और खफ़क़ान इत्यादि रोग पैदा हो जाते हैं। जब तक त्वचा हम्माम में फूलती जाये उस समय तक घबराने की कोई बात नहीं लेकिन जब शरीर दुबला होने लगे और बेचैनी बढ़ जाये तो उस समय अधिक सावधानी चाहिये।

हम्माम से निकलने के पश्चात साधारणतया भारी वस्त्र ओढ़ लेने चाहियें जिससे बाहिर की शीतल वायु हानि न पहुंचाये। हम्माम से बाहिर आने के पश्चात तत्काल आहार खाना भी वर्जित है क्योंकि उस समय हरारते ग़रीज़ी निर्बल होती है और हरारते ग़रीबी बलवान्। यदि उस समय खाया गया तो आहार विकृत हो जायेगा उचित यह है कि हम्माम से आने के पीछे कुछ देर सो लिया जाये जिससे हरारते ग़रीजी शरीर के भीतर लौट आये।

जुल्लाब

जुल्लाब लेने की ६ विधियां हैं जिनका वर्णन निम्न लिखित है:—

(१) ऐसी औषधि सेवन करना जो शरीर के सम्पूर्ण अङ्गों से मल बाहर खेंच कर अंतड़ियों की ओर लाये और रगों

से बलपूर्वक खींच कर गुदा द्वारा बाहर निकाल दे । ऐसी औषधि को मुसहिल कहते हैं।

(२) ऐसी औषधि सेवन करना जो सब अंगों से विकृत मल निकालने के बदले आमाशाय और अंतड़ियों से दोष बहा दे। ऐसी औषधि को मुलैय्यन कहते हैं।

(३) प्रकृति को कोमल करने वाली औषधियों की बत्ती बना कर गुदा में रखना। इस को शयाफ़ कहते हैं। यह गोल और ४ से ६ अंगुल तक लम्बा होता है। एक ओर इस की मोटाई अंगूठे के समान होती है।

(४) औषधि को औटा कर चर्म इत्यादि की थैली में वन्द कर के और उसके मुख में नलकी लगा कर पिचकारी की भांति गुदा के भीतर प्रविष्ट किया जाता है। इसको हुक़ना कहते हैं। विलायती प्रकार से जो पिचकारी की जाती है उसको एनीमा कहते हैं। हुक़ने की प्रथा अब बहुत कम है। उसके स्थान एनीमा की प्रथा बढ़ती जाती है।

(५) ऐसी औषधियों का पेट पर लेप करना जिन से विरेचन हो जाये। इसको "ज़िमाद" कहते हैं।

(६) औषधि को हाथ में पकड़ कर नख पर लगा कर या सूंघ कर जुल्लाब लेना।

जुल्लाब लेते समय बहुत सी बातों का ध्यान रखना पड़ता है और यदि उनको ध्यान में न रक्खा जाये तो लाभ की जगह उलटी हानि हो सकती है। अल्लामा जमालुद्दीन अक़सरानी की शरह मोजिज़ उलक़ानून में लिखा है कि हर इस्तिफ़राग़ में दस बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। (१) इस्तिफ़राग़ के समय शरीर का भरा होना आवश्यक है। अतः जब शरीर खाली हो तो जुल्लाब न लेना चाहिये। (२) जुल्लाब लेने वाले में बल होना चाहिये। जब निर्बल हो जुल्लाब न लेना चाहिये। (३) प्रकृति का विचार करना आवश्यक है क्योंकि उष्णता, रुक्षता, शीतलता आधिक्य और रक्त क्षीणता में जुल्लाब लेने से हानि होती है। (४) शरीर के बहुत मोटे या बहुत पतले होने की दशा में जुल्लाब नहीं लेना चाहिये। (५) आंतों में खराश या घाव होने की अवस्था में जुलाब से बचना चाहिये। (६) जब बहुत गर्मी या बहुत जाड़ा पड़ता हो उस समय में जुल्लाब

नहीं लेना चाहिये। (७) बचपन और बुढ़ापे में जुल्लाब बहुत कम लेना चाहिये। (८) जिस नगर में गर्मी या सर्दी बहुत अधिक पड़ती हो वहां जुल्लाब लेना भयहेतुक है। (९) जिस व्यवसाय में मल बहुत निकल जाते हों उसमें भी जुल्लाब न दिया जाये तो उत्तम है। (१०) जो व्यक्ति जुल्लाब लेने का अभ्यासी न हो उसे जुल्लाव लेने से कष्ट होता है।

ऊपर लिखे १० निर्देशों से तात्पर्य्य यह है कि मनुष्य को ऐसी अवस्था में जुल्लाब न लेना चाहिये जब कि उसके शरीर में दोष या मलीन आर्द्रतायें कम हों और शक्तियां निर्बल हों जिससे उत्तम आर्द्रतायें न निकल जायें और निर्बलता बढ़ जाये।

परन्तु कई अवस्थाओं में जब कि जुल्लाब न लेने से बहुत खराबी पैदा होने का भय हो और निर्बलता दूसरी प्रकार दूर करना संभव हो तो जुल्लाब लेने में कोई हानि नहीं है। हां इस अवस्था में यह देखना आवश्यक है कि किस विधि से जुल्लाव लिया जाये। बालकों को मुसहिल देना उचित नहीं क्योंकि इससे उनकी बढ़वार कम हो जाती है। इस लिये उनको मुसहिल औषधियों की जगह मुलैयन औषधियां दी जायें। भारत वर्ष में प्रायः घरों में बालकों को जो घुट्टी दी जाती है उसमें अमलतास इत्यादि द्रव्य होते हैं।

कै

कै (वमन) करने से आमाशाय शुद्ध और बलवान् होता है दृष्टि तीव्र होती है और शिर का भारीपन जाता रहता है। भिन्न २ रोगों यथा मूत्राशय के घाव, कुष्ट, जलोदर, पक्षाघात, कंपकंपी और कामला इत्यादि में भी यह लाभदायक है। अल्लामा क़र्शी "शरह मोजिज़ उल क़ानून" में लिखते हैं कि "स्वस्थ मनुष्य प्रति मास दौरे के दिनों को नियत किये बिना बराबर दो बार कै करे जिससे पहली बार जो कमी रह गई हो दूसरी बार पूरी हो जाय।

"कै करने का उचित समय गर्मी का मौसम और बहार की फ़स्ल है। जाड़े की ऋतु और खिज़ां के दिनों में क़ै नहीं करना चाहिये। क़ै करते समय आंखों पर पट्टी बांध देना चाहिये और पेट पर कपड़ा कस कर लपेटना चाहिये और जब कै से निबट जायें तो ठन्डे

पानी में सिर्का मिला कर मुख धो लें जिससे शिर में भारीपन न रहे और सेब के शर्बत के समान कोई वस्तु थोड़ी सी मस्तगी और गुलाब के साथ पी लें।

"कै करते समय परिमितता का ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है। कतिपय मनुष्य लालच के मारे अच्छे २ खाने बहुत खा लेते हैं और जब आमाशय बहुत भर जाता है और कष्ट होता है तो उसे कै कराना चाहते हैं परन्तु यह स्वभाव बहुत बुरा है। इससे आमाशय को बहुत हानि पहुंचती है और आमाशय मलों को ग्रहण करने लगता है। दांत पीले हो जाते हैं, दृष्टि मांद्य और बहरापन उत्पन्न हो जाता है और कभी २ कोई रग टूट कर बहुत ही कष्ट होता है।

"जब शरीर मलों से खाली हो, मल खुश्क आता हो, पेट के अवयव निर्बल हों और मिज़ाज पतला हो तो क़ै से बचना चाहिये। जिन लोगों के गले में सूजन हो या जिनकी छाती निर्बल हो या जिन की गर्दन पतली हो या जिन्हें टट्टी कष्ट से आती हो उसके लिये भी क़ै कराना वर्जित है।"

फ़स्द इत्यादि

फ़स्द खुलवाना, पछने और जोंकें लगवाना, इन्हें भी इस्तिफ़राग़ के कारणों में सम्मिलित किया जाता है। वास्तव में बात यह है कि यूनानी और वैद्यक चिकित्सा में दोषों को इतना महत्व प्राप्त है कि साधारण और बड़े से बड़े रोग या कष्ट में इन का ध्यान रक्खा जाता है। यूनानी में जो ४ इख़लात सौदा, सफ़रा ख़ून और बलग़म माने गये हैं इस्तिफ़राग़ के लिये इन चारों पर ध्यान देकर चिकित्सक बताता है। जिन लोगों के मिज़ाज दम्वी (प्रकृति जिस में रक्त का आधिक्य हो) होते हैं जिन में रक्त की अधिकता होती है या रक्त का कोई विकार उत्पन्न हो जाता है फ़स्द खुलवाना या जोंकें लगवाना उनके लिये लाभदायक है।

वर्तमान समय में प्रथम तो दम्वी मिज़ाज के मनुष्य ही कम होते हैं जिन्हें रक्त अधिक होने के कारण फ़स्द खुलवाने की अवश्यकता हो। फिर भी भिन्न २ रोगों से बचने के लिये अब तक कुछ लोग फ़स्द खुलवाते हैं। फ़स्द वरीद अर्थात् रगों की खोली जाती है।

लिखा है कि बासलीक़ की फ़स्द शरीर के तनूर अर्थात उदर को शुद्ध करती है और क़ीफ़ाल और हब्लउलज़िराग्र (कलाई की डोरी) की फ़स्द गर्दन और उस के ऊपर के अवयवों के लिये लाभदायक है। दाहिनी असलीम की फ़स्द यकृत की पीड़ाओं को और बाईं की फ़स्द इरक़उन्नसा के लिये बहुत लाभदायक है। यह दवाली और निक़रस (गंठिया) में भी लाभ देती है। साफ़िन की फ़स्द आर्तव के जारी करने में गुणकारी है।

फ़स्द को इस्तिफ़राग़ि कुल्ली भी कहते हैं क्योंकि यह प्रत्येक खिल्त को निकालती है ऐक खिल्त को नहीं।

पछने लगवाने से भी लगभग वही लाभ होते हैं जो फ़स्द के हैं। इस से एक तो अंग का तनक़िया (शुद्धि) होजाता है, दूसरे इसमें जौहरे रूह कम निकलता है। सब से बड़ा लाभ इस में यह है कि इस से प्रधान अवयवों को कोई हानि नहीं पहुंचती।

पिण्डलियों में पछने लगवाने से आर्तव जारी होता है, रक्त शुद्ध होता है और गुद्दी पर पछने से आंखें दुखना, मुख में दुर्गन्धि मुंह आना शिर पीड़ा इत्यादि रोग नष्ट होते हैं। परन्तु इस में विस्मृति रोग उत्पन्न हो जाने का भय है।

जिमाअ

जिमाअ को भी इस्तफ़राग़ की विधियों में सम्मिलित कर लिया गया है। अतः थोड़ा सा वर्णन इस का भी किया जाता है। लिखा है कि मर्यादापूर्ण जिमाअ हरारते ग़रीज़ी (जठराग्नि) को भड़काता है, शरीर को आहार प्राप्त करने के लिये उकसाता है, हर्ष और आल्हाद उत्पन्न करता है, क्रोध को शान्त और बुरी चिन्ताओं और वात जनित विचारों को नष्ट करता है और कई वातज और कफज रोगों को लाभ देता है।

मोतदिल जिमाअ का अर्थ यह है कि जिमाअ करने वाले के मिज़ाज के अनुकूल हो, न कम न अधिक। जिस की इच्छा आप ही हो और जिस के करने के पश्चात चित में प्रसन्नता और शरीर में फुरती आये। अतः प्रत्येक व्यक्ति के लिये मोतदिल जिमाअ भिन्न २

हो सकता है। जो लोग मर्यादा का ध्यान नहीं रखते उन्हें अन्त में हानि उठानी पड़ती है। जिमाअ़ के आधिक्य से पट्ठों को हानि पहुंचती है, कंपकपी, पक्षाघात और अकड़ाव उत्पन्न होता है दृष्टि निर्बल हो जाती है। इसी प्रकार जो लोग जिमाअ़ से पूर्णतया बचते हैं अर्थात् हठात कामवेग को रोके रहते हैं उन्हें बहुधा शिर चकराने, कम दिखाई देने, शरीर के भारीपन, अण्डकोषों का शोथ या जंगासे का शोथ हो जाता है और जब जिमाअ़ आरंभ करते हैं तो इन रोगों से शीघ्र छुटकारा मिल जाता है। जो लोग जिमाअ़ से बचना चाहें उन को विचार शुद्ध रख कर व्यायाम अधिक करना चाहिये जिस से काम वेग उत्पन्न ही न हो।

अफ़ज़ल जिमाअ़ (उत्तम मैथुन) उस को कहते हैं जो निम्न लिखित नियमों को पूर्ण करता हो।

(१) आहार अच्छी प्रकार पच चुका हो, नहीं तो पाचन से पूर्व जिमाअ़ करने से पट्ठों में ढिढलापन, सुद्दे, परिणामशूल, कंपकंपी इत्यादि रोग उत्पन्न होंगे।

(२) शरीर पर गर्मी, सर्दी या खुश्की इन में से कोई अधिक न हो, नहीं तो युब्स जफ़्फ़ाफ़ ख़फ़क़ान और ज़बूल होने शक्ति नष्ट होने और हरारते ग़रीज़ी ठन्डी पड़ जाने का भय है।

(३) आमाशय न तो खाली हो न बहुत भरा हुआ हो नहीं तो शक्ति नष्ट हो कर मूर्छा आने और क्षय रोग उत्पन्न हो जाने का भय रहता है और वह रोग उत्पन्न हो जाते हैं जिन का वर्णन (१) में किया गया है।

(४) जिमाअ़ की इच्छा प्राकृतिक हो अर्थात किसी उत्तेजना से न हो। इस विषय पर कुछ अधिक देखना हो तो "भारतवासियों की शारीरिक निर्बलता और उस के कारण" नाम की पुस्तक में देख लें।

(६) गति और विश्राम

जीवन की आवश्यकताओं में यूनानी चिकित्सकों ने छटा दर्जा गति और विश्राम को दिया है। शरीर को देखने से पता लगता है कि इस की रचना ही ऐसी है कि इस में गति और विश्राम सदैव जारी रहता है। श्वास आता है जाता है परन्तु बीच में एक क्षण विश्राम का भी होता है। हृदय सुकड़ता और फैलता है तो भी

विश्राम उस के भीतर रहता है। आमाशय में आहार जाता है। आमाशय कार्य्य करता है फिर आहार को भींच कर थोड़ी देर विश्राम करता है। यदि उस को विश्राम का अवसर न दिया जाये तो मनुष्य शीघ्र रोगी हो जाये।

नेत्र देखते हुये भी अनैच्छिक रूप से बीच में बन्द हो कर विश्राम कर लेते हैं। पूर्ण रूप से भी मनुष्य का शरीर ऐसा बना है कि जब तक यह जीवित है गति और विश्राम जारी रहता है। निद्रा विश्राम की ही अन्तिम अवस्था है।

कोई मनुष्य नितान्त कार्य्य रहित बैठा रहे तो उस का शरीर बिल्कुल निकम्मा हो जायेगा। जो योगी लोग बहुत देर तक एक आसन में बैठते हैं। वह प्रथम तो कुछ खाते नहीं जिस से गति की आवश्यकता नहीं रह जाती दूसरे वह पूर्ण स्थिरता की अवस्था में विश्राम पाते हैं। गति से दैनिक इस्तिफ़राग़ भी उचित रहता है और बहुत से मल श्वांस पसीना इत्यादि के मार्ग से निकल जाते हैं, कुछ घुल जाते सड़ जाते हैं।

गति को जो ठीक जारी रखते हैं या यों कहो कि बराबर व्यायाम करते हैं उनको कृत्रिम रूप से इस्तिफ़राग़ की आवश्यकता ही नहीं रहती क्योंकि विकृत मलों को वमन विरेचन द्वारा निकालने से वास्तविक आर्द्रताएं भी शरीर से निकलती हैं परन्तु यदि गति द्वारा उन को निकाला जाये तो इस से उत्तम कोई विधि नहीं।

गति का स्थूल रूप व्यायाम ही है। इस में यह ध्यान रखना चाहिये कि जिन अङ्गों की साधारणतया गति नहीं होती उन को गति दी जाये या जिस रूप मे गति नहीं हुई उस रूप में गति दी जाये। ऐसे ही दांत का कठोर वस्तुओं के चबाने से, नेत्र का प्रत्येक दिशा की ओर देखने से, कण्ठ का ऊंचा शब्द निकालने से व्यायाम होता है।

गति का सूक्ष्म रूप यह है कि सम्पूर्ण इन्द्रियों तक का भी ध्यान रक्खा जाये। छयो स्वादों के मुख में जाने से स्वाद की सारी ग्रन्थियां गति में आयें। ऐसे ही प्रत्येक रंग को देखने से, प्रत्येक दिशा की ओर देखने से नेत्र का पूर्ण व्यायाम होगा। सारे अवयवों से खिचावट पैदा करके शारीरिक आर्द्रताओं के आमाशय को बढ़ाना होगा।

खिचावट का सविस्तर वर्णन हमारी पुस्तक "जीवन शक्ति" में कर दिया गया है जो उर्दू में छप चुकी है।

व्यायाम के लाभ

का सविस्तर वर्णन हम ने अपनी निम्न लिखित पुस्तकों में कर दिया है।

"भारतवासियों की शारीरिक निर्बलता और उसकी चिकित्सा", "क्या मैं स्वस्थ हूं?—स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य का रहस्य"।

इस लिये हम इस को यहां विस्तार से नहीं लिखते हैं। हां इतना अवश्य बल पूर्वक लिखना चाहते हैं कि गति (व्यायाम) के साथ

विश्राम

की बड़ी आवश्यकता है। निद्रा में निःसंदेह विश्राम मिलता है परन्तु जागते हुये जो विश्राम करना सीख जायें वह स्वास्थ्य के लिये बहुत लाभदायक है।

भारतवर्ष के योगी इस को भली प्रकार जानते थे। उन्हों ने आसनों में सब से अन्तिम शव आसन रक्खा है अर्थात् शरीर को ऐसे ढीले छोड़ देना कि मानो वह जीवित नहीं बल्कि मृत है। इस प्रकार शरीर को ढीला करना शरीर को पूर्ण विश्रम पहुंचाना है। इस से रग और पेठ्ठे ढीले हो कर रक्त भ्रमण सब में एक सा हो कर दूर दूर एकत्रित मल सब बह जाते हैं, थकान हर कोने से दूर होती है, शरीर तरोताज़ा रहता है। यह स्वभाव प्रत्येक को डालना चाहिये। व्यायाम के पीछे शरीर को अवश्य ढीला छोड़ दें। विधि इस की यह है कि लेट जायें और प्रथम विचार करें कि एक टांग से प्राण खींचे जा रहे हैं, वह पांव बिल्कुल ढीला या मृत होता जाता है फिर दूसरी। फिर एक बाहु, दूसरा बाहु, अब धड़ से भी प्राण इकट्ठे होकर हृदय में आ रहे हैं, हृदय से मस्तिष्क में जा रहे हैं और सम्पूर्ण शरीर मृत पड़ा रहे। इस अवस्था में निद्रा आ जाये परन्तु सोने का समय नहीं तो कुछ समय पीछे फिर जीवन की लहर को हृदय में धड़ में, बाहुओं और टांगों में उतरती हुई अनुभव कर के पुनः शरीर में लायें।

जो लोग व्यायाम का प्राकृतिक जीवन व्यतीत करते हैं आहार इत्यादि प्राकृतिक खाते हैं उन को गति और विश्राम भी बराबर होते रहते हैं। परन्तु अधिकतर हम लोगों के रहन सहन ऐसे हो गये हैं कि हम को कृत्रिम रूप से जैसे गति करने के लिये दैनिक व्यायाम सैर की आवश्यकता है ऐसे ही कृत्रिम रूप से शरीर को ढीला करने की भी आवश्यकता है क्यों कि निद्रा में भी आज कल लोगों के शरीर पूर्ण रूप से ढीले नहीं होते हैं। मस्तिष्क कार्य्य करता रहता है और शरीर स्वप्नों में अकड़ा रहता है।

मुफ़रेह उल कुलूब में हरकत और सुकून के संबन्ध में जो कुछ लिखा है उस का सार साधारण शब्दों में नीचे लिखा जाता है:—

हरकत और सुकून भी जीवन के लिये इसी प्रकार आवश्यक हैं जैसे कि जल, वायु इत्यादि। इस का कारण यह है कि जो कुछ हम खाते पीते हैं वह सब का सब पच कर शरीर का अंश नहीं बन जाता। बहुत सा अतिरिक्त भाग शेष रह जाता है। हरकत उसके शरीर से बाहर निकलने में सहायता करती है। यदि हरकत विधि पूर्वक और मर्यादापूर्ण न हो तो यह मल एकत्रित होते रहते हैं और फिर उन को औषधियों द्वारा निकालना पड़ता है। औषधियों द्वारा निकालने से शरीर के भिन्न २ अंगों को हानि पहुंचती है, इस लिये उचित परिमाण में हरकत आवश्यक है। हरकत की भांति सुकून भी मानव जीवन के लिये आवश्यक है। जिस प्रकार किसी मशीन को दिन रात बराबर चलाते रहने से वह शीघ्र बिगड़ जाती है उसी प्रकार यदि मानव शरीर की मशीन भी प्रत्येक समय हरकत करती रहे और उसे सुकून मिले तो उस के शीघ्र बिगड़ जाने का भय है।

हरकत का प्रभाव उष्ण है और सुकून का शीतल परन्तु इन दोनों की अधिकता शीतलता उत्पन्न करती है। हरकत की अधिकता इसलिये शीतलता उत्पन्न करती है कि उससे जठराग्नि कम होती है और जठराग्नि कम होने पर शरीर पर ठन्डक चढ़ती है और सुकून की अधिकता इस लिये ठन्डक उत्पन्न करती है कि इस से शरीर में मल इकट्ठे हो कर जठराग्नि को ठन्डा कर देते हैं जिस का परिणाम यह होता है कि शरीर पर ठन्डक का प्रभाव होता है।

यूनानी हकीमों ने हरकत के ६ भेद लिखे हैं (१) हरकते क़वी या हरकते शदीद (२) हरकते ज़ईफ़ (३) हरकते कसीर (४) हरकते क़लील (५) हरकते सरीअ़ और (६) हरकते बती। यह भेद अवस्था और परिमाण के विचार से हैं।

हरकते क़वी का गुण यह है कि वह अतिरिक्त मल को जो रुकाव उत्पन्न करता है छांट देती है और उस से स्वयम् प्रभावित होती है और हरकते सरीअ़ वह है जो दूसरी हरकत से शीघ्र मार्ग से गुज़र जाये। हरकते ज़ईफ़ हरकते क़वी के और हरकते बती हरकते सरीअ़ के विरुद्ध है।

तहलील का कारण उष्णकता की अधिकता होती है परन्तु तहलील होने वाली वस्तु में प्रभावित होने का गुण भी आवश्यक है। केवल उष्णता की अधिकता से आर्द्रता नहीं तहलील हो सकती क्योंकि उस में तहलील होने की योग्यता तो है परन्तु तहलील होने के लिये अधिक समय की आवश्यकता है। इस लिये शरीर को सामान्यता ऐसी हरकत की आवश्यकता है जो बती ज़ईफ़ और क़लील हो। जो हरकत कवी सरीअ़ और कम होती है उस से उष्णता अधिक पहुंचती है परन्तु मल कम तहलील होते हैं।

मल को तहलील होने के लिये अधिक समय की इस लिये आवश्यकता होती है कि उनका क़िवाम पतला हो कर तंग रस्ते खुल सकें और फिर सूक्ष्म और उनके पीछे स्थूल मलों की तबख़ीर हो। यदि केवल उष्णता पहुंचाने की आवश्यकता हो तो उसके लिये हरकते क़वी उचित हो सकती है।

यदि हरकत और रियाज़त मर्यादा सहित की जाये, उचित समय लगाया जाये और सावधानी बरती जाये तो उससे विकृत आर्द्रतायें निकल कर शरीर हलका हो जाता है, चित् प्रसन्न होता है, आहार पचता है, जोड़ कठोर होते हैं पठ्ठे बलवान् होते हैं।

रियाज़त करने के लिये उचित समय वह है जब कि आहार आमाशय से उतर कर भली प्रकार पच गया हो। यह उस समय समझना चाहिये जब कि मूत्र का वर्ण और क़िवाम पका हुआ हो और दूसरे आहार को जी चाहे। परन्तु याद रक्खो कि उस समय भूख अधिक न हो क्योंकि खाना अच्छी प्रकार न पचे होने या तीव्र

भूख की अवस्था में रियाज़त करने से हानि पहुंच सकती है। आहार पचने से पहले यदि रियाज़त की जायेगी तो इसका परिणाम यह होगा कि पचे बिना आहार शरीर में प्रविष्ट हो जायेगा और उससे सुद्दे पड़ जायेंगे। और यदि बहुत भूख में रियाज़त की जाये तो उससे शरीर में शुष्की और दुबलापन हो जायेगा।

रियाज़त में मर्यादा का ध्यान रखना आवश्यक है। मर्यादा पूर्ण रियाज़त का चिन्ह यह है कि खाल पर लालिमा दिखाई दे पट्ठे फूलें और पसीना आरम्भ हो जाये परन्तु पसीना बहुत अधिक न निकलना चाहिये। बहुत पसीना निकलना यह प्रगट करता है कि रियाज़त मर्यादा से अधिक हुई है। इस अवस्था में तहलील अधिक होती है और चर्म का वर्ण पीत हो जाता है।

रियाज़त २ प्रकार की होती है एक सारे शरीर की और दूसरी किसी विशेष अङ्ग की। घोड़े की सवारी झूला झूलना, नौका की सवारी इत्यादि सब शरीर के व्यायाम हैं क्योंकि यह सब शरीर के मलों और आर्द्रताओं को तहलील करते हैं। छाती का व्यायाम, पढ़ना श्रवण शक्ति का व्यायाम मधुर गीतों का सुनना, और दृष्ट शक्ति का व्यायाम कभी २ महीन अक्षरों का पढ़ना और सुन्दर वस्तुओं का देखना है।

मिस्टर केलकर ने अंगरेज़ी में एक पुस्तक (Never get ill) लिखी है। इसमें एक परिच्छेद गति और विश्रम पर दिया है और इस विषय को वैज्ञानिक रीति से थोड़े शब्दों में सुन्दर वर्णन किया है। वह हम यहां पाठकों के सामने रखते हैं।

गति और विश्राम

स्वास्थ्य के लिये व्यायाम करना भी लाभ दायक होता है परन्तु बहुत कम लोग समझ बूझ कर व्यायाम करते हैं। व्यायाम करने से पूर्व हमें यह जानने की आवश्यकता है कि इससे क्या परिणाम निकलेंगे और उनका हमारे शरीर पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

यह पहले ही जान चुके हैं कि स्वास्थ्य हमारे शारीरिक अङ्गों के ठीक कार्य्य करने पर निर्भर है। हमारे शरीर के बहुत से भाग हमारे दैनिक कामों में लगे रहते हैं। इसके साथ ही साथ ऐसे भाग

भी होते हैं जिन्हें कर्मरहित रहना पड़ता है। व्यायाम का विशेष उद्देश्य यह है कि वह भाग जो निरुद्योग रहते हैं उनको गति दी जाये जिससे शरीर के सारे भाग एक समान कार्य्य कर सकें और इस प्रकार हमारा स्वास्थ्य बना रहे।

परन्तु साधारणतया व्यायाम के अर्थ खेल कूद, भार उठाने या डण्ड पेलने के समझे जाते हैं। यह भी व्यायाम है किन्तु व्यायाम केवल इन ही थोड़ी सी वातों तक परिमित नहीं है। इस के और बहुत से कार्य्य भी हैं। यथा मुखलार की ग्रन्थियों का काम मुख में लार उत्पन्न करना है परन्तु यह लार उस समय तक न निकलेगी जब तक कि इन का व्यायाम न होगा। इसी प्रकार दूसरे अङ्गों के विषय में समझिये। जब तक हम खाना न खायेंगे हमारे विशेष २ अङ्ग निष्क्रिय पड़े रहेंगे।

हमें यह देखने की आवश्कता है कि हमारे सारे शारीरिक अङ्ग अपने कार्य्य पूर्ण रूप से करते हैं या नहीं। कोई अङ्ग अधिक या कोई कम तो नहीं करता। हमारे शरीर के पाचक अङ्गों के कार्य्य ठीक रखने के लिये रासायनिक प्रोत्साह की अवश्यकता होती है। इसी प्रकार भिन्न २ स्नायु भिन्न २ प्रोत्साहनों से प्रभावित होते हैं। अर्थात् भिन्न २ बोधों और स्वादों को स्थिर रखने के लिये ऐसे कार्य्यों और आहारों की आवश्यकता है जो इन से सम्बन्ध रखते हैं। केवल एक ही प्रकार का स्वाद कारण है दूसरे बोधों और स्वादों को निर्बल करने का और इस से सामान्य स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

ऐसा व्यायाम करने से जो शरीर के एक अङ्ग को गति में लाता हो दूसरे अङ्ग के निरुद्योग रहने का बदला नहीं हो सकता। हम व्यायाम इस लिये करते हैं कि शारीरिक रंध्र ने जो आहार ग्रहण किया है उसे सेवन में लाया जाये जिस से जब हम और खाना खायें तो वह उस के जलने में न निकल आये। ऐसा करने के लिये हर रंध्र को अपना कार्य्य उचित रीति पर करना चाहिये नहीं तो परिणाम यह होगा कि शरीर स्थूल होता जायेगा और निर्जीव पदार्थ का बोझ रोगों को बुलायेगा।

ऐसा देखा गया है कि लोग किसी विशेष शारीरिक अङ्ग के व्यायाम पर अधिक बल देते हैं और परस्पर समता का ध्यान नहीं रखते। यह अनुचित है क्योंकि जब कोई शारीरिक अङ्ग अधिक कार्य्य करेगा तो उस से अङ्गों की क्रियाओं पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और स्वास्थ्य बिगड़ जायेगा। व्यायाम में सब से बड़ा विचार इस बात का होना चाहिये कि शरीर का प्रत्येक अङ्ग एक समान कार्य्य करे। जो लोग ऐसा नहीं करते उन्हें व्यायाम के पश्चात् यद्यपि थकावट अनुभव होती है परन्तु उस से कुछ लाभ नहीं होता क्योंकि कतिपय अङ्ग उस समय भी व्यायाम के इच्छुक होते हैं।

इस से पहले वर्णन किया जा चुका है कि सजीव रंध्र के विकास और स्वास्थ्य के लिये लिम्फ़ का बहाव अति आवश्यक है। दुर्भाग्य वश शरीर विज्ञान की पुस्तकों में केवल रक्त परिभ्रमन पर अधिक बल दिया गया है और लिम्फ़ बहाव और अङ्गों में रक्त के उचित विभाग पर ध्यान नहीं दिया गया है, यद्यपि स्वास्थ्य का निर्भार इन्हीं पर है। लिम्फ़ रक्त की भांति हृदय के बल से शरीर के रंध्रों में नहीं पहुंचता प्रत्युत उस के बहाव का वास्तविक कारण मांस के सुकड़ने से निकटवर्ती भागों पर दबाव पड़ना है। अतः लिम्फ परिभ्रमण को शीघ्रगामी करने के लिये भिन्न २ गतियों की आवश्यकता होती है। जो लोग व्यायाम नहीं करते या प्राकृतिक रूप से ऐसे कार्य्य नहीं करते जिनमें भिन्न २ गतियों द्वारा मांस नहीं खिंचता उनके शरीर में लिम्फ़ अलस् और निरुद्योग रहता है जो बड़े विकार का कारण है क्योंकि इस के निरुद्योग रहने से लिम्फ़ की ग्रन्थियों में जो रक्त के श्वेत अणु होते हैं और रोगाणुओं को मारने की शक्ति रखते हैं उन की संख्या कम हो जाती है और इस प्रकार इस में रोगाणुओं का विकाश होता रहता है। रंध्रों में रक्त का उचित विभाग न होने से भी बहुत हानि होती रहती है क्योंकि कई भागों में अधिक आहार पहुंच जाता है और कई भाग उपवास करते रहते हैं। सारे शारीरिक अङ्गों के गति पाने से रक्त द्वारा आहार का विभाग समान रूप में होता है इस लिये शिर और धड़ और बाह्य और आन्तरिक भाग में भ्रमण के समय परस्पर समता रखना आवश्यक है।

अतः व्यायाम करते समय इस का ध्यान रखना आवश्यक है कि जो अङ्ग बहुत कम कार्य्य करते हैं उन को गति दी जाये यथा हाथ पांव दिन भर में सदैव नीचे ही लटकते रहते हैं, उनसे प्रायः किसी वस्तु के उठाने या खींचने का काम लिया जाता है। उन को ऊपर उठाना और झटका देना अच्छा होता है। प्राकृतिक रुप से भी हमें ऐसा करने की इच्छा प्रायः होती है। यथा जब हम गूढ़ निद्रा से जागते हैं तो विवश अंगड़ाई लेने के लिये हाथ ऊपर उठ जाते हैं। इस क्रिया से आलस्य का नाश होता है और शरीर में स्फूर्ति आती है। व्यायाम के नियत समय के अतिरिक्त भी यदि दिन में कई बार ऐसी गति कर ली जाये तो कोई हानि नहीं प्रत्युत अच्छा ही है।

हाथों की भांति पांव भी चलने और खड़े होने की दशा में सीधे और तने हुये रहते हैं जिस के कारण रानों को शरीर के ऊपर का सारा बोझ उठाना पड़ता है। इस लिये रानों के भीतर का मांस निर्बल हो जाता है। उन को गति देन के लिये व्यायाम किये जायें। इसी प्रकार सारे अंगों को गति दी जाये जिन से प्रायः साधारण अवस्थाओं में कार्य्य नहीं लिया जाता। बहुत से लोग कड़वी चीज़ों से घृणा करते हैं, यद्यपि वे मिर्च मसाले जैसी तीक्ष्ण वस्तुओं का सेवन करते हैं। कड़वा प्राकृतिक स्वाद है और मिर्चों से केवल चर्म पर एक जलन सी प्रतीत होती है जिसका सम्बन्ध छूने से है। कड़वे स्वाद से कतिपय विशेष स्नायुओं का संबन्ध है इस लिये कड़वी चीज़ों से इन स्नायुओं की उत्तेजना होती है। यही कारण है कि औषधियां प्रायः कड़वी दी जाती हैं। यदि हम आरंभ से कड़वी वस्तुओं के सेवन से न बचा करें तो स्यात् कड़वी औषधियों का सेवन प्राप्त न हो।

मांस को वश में करना एक कला है जिससे जो पेशी चाहें काम में लाई जा सकती है।

फेफड़ों और जिह्वा का व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। जो लोग स्पष्ट और बल सहित शब्दों का उच्चारण करने के अभ्यासी होते हैं उन के फेफड़े अच्छे होते हैं। इस विचार से रोग जहां मन बहलाने का कारण है वहां उस से फेफड़ों का व्यायाम भी हो जाता है।

मांस के व्यायाम में कई बातों पर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये। सबसे पहले तो यह आवश्यक है कि जोड़ पर्याप्त रूपसे गति

करें दूसरे गति बहुत शीघ्र हो। विविध रूपों में शरीर की परस्पर समता स्थिर रखना और मांस को खींचते समय समय की समानता का ध्यान रखना भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि शारीरिक समता से मस्तिष्क की थकन बहुत कम हो जाती है और समय का ध्यान रखने से गति की समता प्रकृति का एक अंश हो जाती है।

बहुत से लोग शरीर की कठोरता को बल का चिन्ह समझते हैं परंतु यह बात ठीक नहीं है। लचक जीवन का चिन्ह है। मनुष्य का शरीर लचीला, मृदु और शीघ्र अनुभव करने वाला होना चाहिये परन्तु जब तक मृदु और गुदगुदे बिछौनों पर सोया जायेगा यह बात प्राप्त नहीं हो सकती। मांस और चर्म की मृदुता और लचक को स्थिर रखने के लिये कठोर बिछौने की आवश्यकता है। प्रगट है कि कठोर से कठोर बल्कि ऊंचा नीचा बिछौना भी मृदु चर्म को इतना बुरा नहीं प्रतीत होता जितना कि कठोर शरीर को। मृदु और कोमल बेलें भी कठोर और ऊंची नीची चटानों और पत्थरों पर कष्ट अनुभव नहीं करतीं।

विश्राम

जहां व्यायाम मनुष्य के शरीर की सारी क्रियाओं को एक समान ठीक रखने की एक प्रभावपूर्ण विधि है वहां विश्राम थकावट दूर करने का सब से उत्तम हेतु है। सब जानते हैं रात भर की गूढ़ निद्रा के पीछे हम प्रातःकाल जागते हैं तो हमारा शरीर फुर्तीला और चित प्रफुल्लित होता है। निद्रा परस्पर समता की अवस्था के बदले में सब से उत्तम दशा है क्योंकि उस समय हमारा चेतन मन और हमारा ऐच्छिक मांस विश्राम करता है।

विश्राम भी मनुष्य के लिये इतना ही आवश्यक है जितना कि व्यायाम। व्यायाम और विश्राम इस क्रम से होने चाहियें कि थकावट का अनुभव न हो। परंतु विश्राम किसे कहते हैं पहले इसे समझ लीजिये। क्या हाथ पर हाथ धरे बैठे रहना या चारपाई पर लेटे रहना वास्तव में विश्राम या सस्ताना है। प्रायः लोगों को देखा गया है कि वह निरुद्योग बैठे रहते हैं फिर भी उनके मांस पर एक बोझ

से प्रतीत होता है। वास्तव में सस्ताना तो उसे कहते हैं कि मांस को ढीला छोड़ दिया जाय और इसका अभ्यास शनैः २ पड़ सकता है।

जिस प्रकार मांस और शरीर के दूसरे अंग विश्राम चाहते हैं इसी प्रकार भीतर के अवयवों को भी सस्ताने की आवश्यकता पड़ती है। कोष्ठबद्धता की अवस्था में आंतों पर बहुत बोझ पड़ता है और मांस थक जाता है। इसलिये इस अवस्था में उन्हें सब से उत्तम रीति पर विश्राम इस प्रकार दिया जा सकता है कि व्रत या उपवास किया जाये। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि उपवास करने और भूका रहने में अंतर है। उपवास अपनी इच्छा से किया जाता है और भूका विवश रहना पड़ता है।

उपवास में आंतों के भीतर जो जल एकत्रित होता है सब निकल जाता है। यदि आहार न भी वर्तमान हो तो पित्त निकल जाता है और उससे वह प्रफुल्लता प्राप्ति होती है जिसका वर्णन नहीं हो सकता। मानव शरीर अनावश्यक और अतिरक्त आहार को जलाने के लिये अधिक ऊष्मा उत्पन्न करने से बच जाता है परंतु भूके रहने की दशा में एक मान्सिक व्यथा होती है। इसके कारण यकृत पित्त नहीं निकलने देता। रक्त में कृत्रिम वात एकत्रित हो जाता है और कोष्ठ बद्धता के अतरिक्त रक्त क्षीणता के साथ रक्त का दबाव बढ़ जाता है।

जब मन मलीन होता है और कार्य्य करने को जी नहीं चाहता जिसके कारण मनुष्य निरुद्योग पड़ा रहता है तो उस अवस्था को सस्ताना या विश्राम करना नहीं कह सकते। इसका एक पृथक कारण होता है। जो कुछ शक्ति हमें आहार के द्वारा प्राप्त होती है वह बाह्य या आन्तरिक कार्य्य में व्यय हो सकती है। जब कोष्ट बद्धता होती है तो आन्तरिक कार्य्य बढ़ जाता है और हम इस योग्य नहीं रहते कि बाह्य कार्य्य कर सकें। प्रायः माता पिता जब अपने किसी बालक को इस दशा में निरुद्योग बैठा देखते हैं तो वह समझते हैं कि यह बुरा स्वभाव है और उसे दूर करने के लिये वह उसे मजबूर करते हैं कि वह अपने साथियों के साथ खेले कूदे या कार्य्य करे। परंतु वह इसका वास्तविक कारण नहीं जानते। कोष्ठ बद्धता को दूर रखने से ही हम फुर्तीले रह सकते हैं।

शरीर और मन की पूर्ण समता में जो विश्राम प्राप्त होता है इसी को प्राचीन समय में लोग समाधी कहते थे। इस अवस्था में शारीरिक और मान्सिक अवयव पूर्ण विश्रान्ति में रहते हैं यहां तक कि हृदय और फुफ्फुस की गति तक बन्द होजाती है परन्तु इससे मृत्यु नहीं होती है। अपने शरीर और मस्तिष्क पर इतना अधिकार प्राप्त कर लेने से कि मनुष्य धीरे २ इन गतियों को बन्द और जारी कर सके यह शक्ति उत्पन्न होती है। यह बात ऐसी नहीं है कि किसी की समझ में आसके। उदाहरण के लिये हमारे फुफ्फुसों में स्वांस लेने में और बाहिर खींचने से २ प्रकार के धनात्मक और ऋणात्मक दबाव पड़ते हैं। जब फेफड़ा शून्य होता है तो दबाव कम हो जाता है। यदि हम धीरे २ इस दबाव को कम कर सकें तो एक समय ऐसा आजायेगा कि हम स्वांस भी लेते रहेंगे और वह दबाव भी अनुभव न होगा और क्योंकि हृदय और मस्तिष्क का परस्पर सम्बंध है इसलिये आवश्यक है कि हृदय की गति स्वयम् कम होती प्रतीत होगी। इस प्रकार रक्त का दबाव कम हो जायेगा परन्तु मांस पेशियों के ढीले रहने के कारण रक्तपरिभ्रमण पर्याप्त रहेगा।

इस प्रकार स्नायु संस्थान और श्वास अवयवों को जो विश्रान्ति प्राप्त हो सकती है और किसी प्रकार से मिलना असंभव है। हम जो कुछ कार्य्य करते हैं उसमें इतनी कार्य्य संपादिनी शक्ति व्यय नहीं होती जितनी कि हृदय को निशदिन रक्तपरिभ्रमण जारी रखने में आवश्यक होती है। रक्त का दबाव अधिक होने की दशा में तो हृदय और नाड़ी को और भी अधिक क्रिया शक्ति आवश्यक होती है। परन्तु हृदय हमारी इच्छा के अधीन नहीं होता। तथापि हमारी इच्छा या संकल्प शक्ति फुफ्फुसों की गति पर प्रभाव डाल सकती है जिसका हृदय पर भी प्रभाव पड़ सकता है। इस से यदि पर्याप्त यत्न और प्राणायाम का अभ्यास बराबर जारी रक्खा जाये तो हमें अपने शरीर पर अधिकार प्राप्त कर सकता है।

हमारे सारे अंगों में नेत्र सब से अधिक कोमल होते हैं। अतः इन पर अधिक ध्यान देना आवश्यक है। स्यात ही कोई दूसरा अंग हमारे शरीर में ऐसा हो जिस से इतना काम लिया जाता हो जितना

कि नेत्र से लिया जाता है। एक ओर देर तक नेत्र जमा कर देखने से इस पर बहुत भार पड़ता है क्योंकि हम अधिकतर निकटवर्ती वस्तुएं देखा करते हैं इसलिये जब कभी हम दूर की चीज़ें देखते हैं तो हमें आराम मिलता है। नीले और हरे वर्ण से भी चक्षुओं को तरावत मिलती है। वर्षा ऋतु में हरे भरे मैदानों की ओर देखना और सन्ध्या को सैर करते समय हरे भरे वृक्षों को देखना कितना आनंददायक होता है। लिखने पढ़ने का कार्य्य करते समय उपयुक्त तो यही है कि खुले स्थान में बैठा जाये परन्तु यदि यह न हो सके तो मेज़ के पास ही खिड़की खुली रहनी चाहिये जिस से जब आंख थके शीघ्र खिड़की के बाहर नील वर्ण आकाश की ओर देख कर उसे सस्ताने का अवसर दिया जाये। हमारे विद्यार्थियों की दृष्टिनिर्बलता का एक कारण यह भी है कि कक्षा के कमरे इस प्रकार बनाये जाते हैं कि देर तक इन्हें दूर देखने का अवसर प्राप्त नहीं होता। इसी से माइयोपिया विद्यार्थियों में हो जाता है। कभी २ आंखों को झपका लेना भी आंखों के लिये लाभदायक है और ठंडे पानी के छींटे देने से नेत्रों को तरावत प्राप्त होती है।

अन्त में प्रसन्न चित रहना स्वस्थ रहने का सब से बड़ा गुर है। हंसने और मुसकराने से एक विशेष प्रकार का विश्राम मिलता है और प्रसन्न रहने वाला मनुष्य बहुत कम रोगी रहता है।

७–मन की तरङ्गें।

यूनानी चिकित्सा शास्त्र की पुस्तकों में आवश्यक वस्तुओं के वर्णन में सातवें नम्बर पर मन तरंगों को लिखा है। इन को यूनानी परिभाषा में "एराज़े नफ्सानी" कहते हैं। मन की तरंगें, मन के विकार इत्यादि यह बातें जीवन के लिये इतनी आवश्यक प्रतीत नहीं होतीं जितनी जीवन में आवश्यक हैं। कोई मनुष्य ऐसा हो ही नहीं सकता जिसका मन प्रत्येक समय कार्य्य न करता रहता हो, आह्लाद, शोक, भय, वहिम इत्यादि उत्पन्न न होते रहते हों। पागल तक भी न समझते हुए भी हंसते रोते रहते हैं।

यह बातें जीवन को बढ़ा, या घटा भी सकती हैं यहां तक कि जीवन का अन्त भी कर सकती हैं। शोक जीवन को घटाता है,

प्रसन्नता जीवन की रक्षक है, असीम शोक या आह्लाद एक दम मृत्यु का कारण भी हुये हैं।

वैद्यक पुस्कों में मनुष्य या संसार की सृष्टि अहंकार से आरम्भ हुई है। अहंकार से पञ्चतन मात्रा (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) और पञ्चन्मात्रा से पञ्च भूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) इत्यादि उत्पन्न होते हैं। अहंकार मन की एक अवस्था का ही नाम है। मन, बुद्धि, चित, अहंकार मन के कार्य्यों के विचार से चार भिन्न २ नाम हैं।

मनुष्य के पांच चोर धार्मिक पुस्तकों में यह लिखे हैं – काम, क्रोध लोभ अहंकार। कोई २ अहंकार को भी २ भागों में विभक्त करते हैं। मन की तरङ्गे प्रायः इन ही के अधीन होती हैं जो कोई लाभदायक और कोई हानि कारक होती हैं।

इन बातों का सविस्तर वर्णन यहां किया जाये तो सम्पूर्ण वेद शास्त्र यहां लिखना पड़े और इसके अतरिक्त केवल मन का ही पूरा वर्णन एक दीर्घाकार पुस्तक मांगता है। मन शरीर का राजा है। मन ही इस को स्वस्थ या रोगी रख सकता है। मान्सिक विद्या इस समय बहुत बढ़ रही है। सैंकड़ों प्रत्युत सहस्त्रों पुस्तकें इस पर लिखी जा चुकी हैं।

इन बातों का वर्णन इस पुस्तक में उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है और आगे ही पुस्तक बहुत बढ़ गई है, अतः हम केवल यूनानी पुस्तकों से उल्था करके एराज़े नफसानी के विषय में जो कुछ उनका वर्णन है वही अंकित करते हैं क्योंकि "सित्तये ज़ुरूरिया" में केवल यूनानी चिकित्सा शास्त्र ने ही इनको सम्मिलित किया है।

एराज़े नफसानी

(यूनानी विद्वानों के विचारों का सार)

एराज़े नफ्सानी मन की उन अवस्थाओं को कहते हैं जो हानिकारक अथवा लाभदायक बातों के ज्ञान से उत्पन्न होती हैं जैसे सिंह को देखने या तोप बन्दूक या किसी बनपशु के भयानक शब्द से डर लगता है, शत्रु को देख कर क्रोध आता है, प्रिय जन को देखने

और उस से मिलने से प्रसन्नता प्राप्त होती है। यह सब एराज़े नफ्सानी कहलाती हैं।

इन अवस्थाओं को एराज़े नफ़सानी कहने का कारण यह है कि उपरोक्त बातें वास्तव में नफ्स अर्थात मन ही से संबन्ध रखती हैं जैसे क्रोध, शोक, चिन्ता इत्यादि से प्रभावित होने वाला मन ही है। शरीर अथवा उसके अंगों पर इन का सीधा प्रभाव नहीं पड़ता। हां इन का प्रभाव शरीर और प्रधानांगों पर पड़ता अवश्य है। अतः क्रोध की अवस्था में मनुष्य के बाह्य अङ्ग गरम हो जाते हैं, मुख गरम और लाल हो जाता है। इसी प्रकार भय की दशा में मुख पीला हो जाता है। इस का कारण यह है कि मन की इन अवस्थाओं का प्रभाव रक्त, रूह और प्रधानाङ्गों पर पड़ता है जिस के कारण शरीर के अंगों के प्रोत्साह से रक्त या बाहर को निकल आता है या भीतर को चला जाता है। रूह और इख्लात (दोषों) के गति करने ही के कारण यह बातें "हरकाते नफ्सानी" अर्थात मन की गतियां भी कहलाती हैं।

एराज़े नफ्सानी की संख्या ६ बतलाई गई है। (१) ग़ज़ब (क्रोध) (२) फ़ज़्अ (भय), (३) फ़रह (प्रसन्नता), (४) ग़म (शोक), (५) हम (भविष्य के संबन्ध में कोई चिन्ता) (६) खजल (लज्जा)। परन्तु इन ६ में एराज़े नफ्सानी का बन्द होना ठीक नहीं ज्ञात होता क्योंकि इस से अधिक भी हो सकते हैं जैसे कि कइयों ने लज़्ज़त (आनंद) को भी सम्मिलित किया है। जानना चाहिये कि सारे एराज़े नफ्सानी में रूह भी अवश्य गति करती है चाहे वह उस एराज़े नफ्सानी के साथ हो और चाहे उस के नीचे। और नफ्स के गति करने का कारण यह है कि नफ्स किसी वस्तु से जो उस के अनुकूल या प्रतिकूल हो या उस में अनुकूलता और प्रतिकूलता दोनों का समावेश हो प्रभावित होता है। अतः वह वस्तु जिस से नफ्स प्रभावित हुआ है नफ्स के अनुकूल है (यथा कोई प्रसन्नकारक बात) तो नफ्स उसे मांगता है और उसकी प्राप्ति के लिये उसी ओर गति करता है जिस से उस के साथ मिल जाये क्योंकि मित्रता का आशय यही है कि प्रिय के साथ मिले। किन्तु यदि वह वस्तु नफ्स के प्रतिकूल है तो नफ्स उस का सामना करने के लिये उस की ओर बढ़ता है परन्तु यदि नफ्स उस का सामना नहीं कर सकता (यथा

भयानक वस्तु से) तो वह उस से भागता है जिस से उस का छुट-कारा हो और किसी प्रकार का कष्ट न हो।

परंतु इस दशा में जब कि कोई ऐसी बात हो जो नफ्स के अनकूल भी हो प्रतिकूल भी (यथा लज्जा जनक बात) तो नफ्स एक बार थोड़ा २ भीतर की ओर गति करता है कि उससे भागे और फिर शीघ्र बाहर की ओर गति करता है क्योंकि बुद्धि उस बात को जिससे उसे लज्जा हुई है उसे तुच्छ प्रगट करती है और नफ्स को वीर बनाती है। अतः लज्जा भय और प्रसन्नता दोनों से मिल कर बनी है।

नफ्स की गति के लिए रूह की गति आवश्यक है और इसी प्रकार नफ्स की शांति के लिये रूह की शांति आवश्यक है। जानना चाहिये कि इस स्थान पर रूह से आशय रूहे क़ल्बी है क्योंकि जब प्रतिकूल बात से नफ्स को घृणा होती है तो मन मलीन हो जाता है। परंतु जब वह बात नफ्स के अनुकूल है तो हृदय आनन्दित होता है और हृदय पाशियक शक्ति और जठराग्नि की खान है। अतः जब मन मलीन होता है तो उसके साथ शक्ति और जठराग्नि भी कम हो जाती है और जब हृदय प्रफुल्लित होता है तो शक्ति और जठराग्नि भी बढ़ती है और हृदय के कारण रूह भी गति करती है क्योंकि हृदय रूह को रखता है और रूह के साथ रक्त भी गति करता है इससे उस रूह का स्थान भरता रहे जो गति के कारण घुल गई है।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि पराज़े नफ्सानी की आवश्यकता क्यों है ? सो जानना चाहिये कि शरीर की आवश्यकताओं और जीवन के आवश्यक कार्य्यों से उनकी आवश्यकता है क्योंकि जब तक यह बातें होंगी मनुष्य शरीर की आवश्यकताओं को प्राप्त न कर सकेगा और यह प्रगट होता है शरीर के लिये गतियां आवश्यक हैं और उन का अस्तित्व पराज़े नफ्सानी पर निर्भर है जो कि रूह की गति के लिये आवश्यक है जैसे भूक और क्रोध। अतः सिद्ध हुआ कि पराज़े नफ्सानी जीवन की आवश्यकतओं में है क्योंकि शरीर का अस्तित्व इन्हीं पर निर्भर है।

हरकाते नफ्सानी (मन की गति) के वास्ते सुकूने नफ्सानी (मन का विश्राम) भी आवश्यक है क्योंकि रूह सुक्ष्म और सहज

घुल जाने वाली है। यदि सदैव गतिवान रहे, नितान्त घुल जाये। अतः विश्राम भी आवश्यक हुआ जिससे रूह जितनी गति से व्यय हो चुका है और उत्पन्न हो जाये।

जानना चाहिये कि एराज़े नफ्सानी में रूह की गति या बाहर की ओर होती है या भीतर की ओर और दोनों दशाओं में गति अचानक होगी या धीरे धीरे।

यद्यपि मन की तरङ्गों इत्यादि का वर्णन ऊपर हो चुका है तथापि हम उनकी सविस्तर व्याख्या अलग २ नीचे करते हैं:—

(१) ग़ज़ब (क्रोध) उस मान्सिक अवस्था को कहते हैं जिन में रूह बाहर की ओर मूज़ी से बदला लेने के लिये गति करती है।

(२) फ़रह (प्रसन्नता) उस मान्सिक अवस्था का नाम है जिस में रूह बाहर की ओर आनन्द प्राप्त करने के लिये गति करती है।

(३) फ़ज़अ (भय-डर) उस मान्सिक अवस्था का नाम है जिस में रूह भीतर की ओर गति करती है जिस का कारण मूज़ी का भय होता है चाहे मूज़ी (कष्ट दायक) वास्तविक हो या काल्पनिक जैसे अंधेरे में रस्सी को सर्प समझ कर भयभीत हो जाना यह मूज़ी काल्पनिक होगा।

(४) गम् (दुःख-शोक) उस मान्सिक अवस्था को कहते हैं जिस में रूह वास्तविक मूज़ी के भय से भीतर की ओर गति करती है।

(५) हम् वह मान्सिक अवस्था है जिस में रूह शरीर के भीतर की ओर भी गति करती है और बाहर की ओर भी, जिसका कारण यह होता है कि कोई ऐसा कारण प्रगट होता है जिस में बुराई की प्रतीक्षा के साथ भलाई की आशा भी हो। हम्म् मानों आशा और भय से मिला होता है। आशा और भय में जो प्रबल होगा उसी की ओर नफ्स गति करेगा। अतः यदि भविष्यत बात से भलाई की अशा अधिक हो तो रूह भीतर की ओर गति करती है इसी लिये चिकित्सकों ने कहा है कि हम्म् किसी बात के लिये मान्सिक युद्ध है और यह भी कहा है कि कभी हम्म से ग़ज़ब (क्रोध) और ग़म (दुःख) भी उत्पन्न होता है। परंतु ग़ज़ब (क्रोध)

उस अवस्था में होता है जब कि वांछित वस्तु की प्राप्ति के लिये बल अथवा शक्ति का ध्यान हो। इस दशा में रूह बाहर की ओर प्रतिकार के लिये गति करती है और उसके पश्चात जब प्रतिकार के निष्फल होने से अवगत होती है तो दुखी होकर भीतर की ओर गति करती है।

ग़म और हम्म का भेद–यद्यपि दोनों अवस्थाओं का जो वर्णन अलग २ किया गया है उससे इनका भेद समझ में आ सकता है परंतु अधिक व्याख्या के लिये जिससे कोई शंका न रहे लिखते हैं। इससे दोनों का परस्पर भेद समझ में आजायेगा।

जानना चाहिये कि जिस समय कोई आवश्यक वस्तु हाथ से जाये या उस तक पहुंचा न जाये कोई ऐसी बुरी बात हो जाये जिस को न तो रोक सकते हों और न बुरा भला कह सकते हों और न उसका बदला लेना संभव हो तो उस कारण से नफ्स की जो अवस्था होती है उसे ग़म कहते हैं। यथा अपने किसी प्रिय मित्र के मर जाने से जो अवस्था उत्पन्न होती है वह ग़म है। इस के अतरिक्त और भी उदाहरण हैं परन्तु जिस समय मनुष्य किसी कार्य्य का प्रबन्ध करे परन्तु उसका प्राप्त होना या न होना निश्चय न हो या कोई बात बीच में रोड़ा अटकाती हो और अभीष्ट की सिद्ध में बाधा डाल कर कष्ट पहुंचाने वाली हो किन्तु निश्चय न हो तो वह अवस्था मन में उत्पन्न होती है वह हम्म है यथा विद्यार्थी ने परीक्षा दी है, उसका परीक्षा में उत्तीर्ण होना निश्चय नहीं या पथिक के मार्ग में नदी आ गई है और विचार होता है कि ऐसा न हो डूब जाये (यद्यपि निश्चय नहीं क्योंकि सकुशल पार उतर जाना भी संभव है) तो इन बातों से जो अवस्था नफ्स में उत्पन्न होती है वह हम्म् कहलाती है।

तात्पर्य्य यह है कि ग़म में अभीष्ट सिद्धि असंभव होती है और ग़म करने वाले में उसको प्राप्त करने की शक्ति नहीं होती। इस के विरुद्ध हम्म में अभीष्ट की प्राप्ति सम्भव होती है चाहे उसमें कठिनाइयां क्यों न हों।

(६) ख़जल (लज्जा) वह मान्सिक अवस्था है जिस में रूह और हरारते ग़रीज़ी (जठराग्नि) प्रथम तो धीरे २ भीतर की ओर गति करती है, इसके पीछे बाहर की ओर।

एराज़े नफ्सानी का प्रभाव शरीर पर

जानना चाहिये कि मनुष्य के शरीर में एराज़े नफ्सानी का प्रभाव खाने पीने से अधिक होता है इसी प्रकार स्वप्न जागृति, गति और विश्राम, और अन्य क्रियाओं से अधिक प्रभाव एराज़ नफ्सानी का है। अतः खाने पीने की वस्तुओं और औषधियों में से जो कि मनुष्य खाता है सब से अधिक बलवान् और प्रभाव करने वाली वस्तु विष है परन्तु बहुधा जबकि मनुष्य स्वयं विष खाता है या कोई अन्य पुरुष विष खिलाता है तो वह विष जब शरीर में स्थिर नहीं होता और आमाशय और यकृत की शक्ति और ताप इस विष में प्रभाव नहीं करती है उस समय तक उसकी कोई हानि प्रगट नहीं होती। विरुद्ध इसके एराज़े नफ्सानी उसी समय बिना बिलम्ब के प्रभाव करते हैं। अतः कोई सन्देह जो मन में उत्पन्न हो और बहुधा बातें बुरी भली शीघ्र विलम्ब किये बिदून प्रभाव करती हैं।

और यह भी स्मरण रखना चाहिये कि सब व्यक्तियों पर एराज़े नफ्सानी का प्रभाव एक सा नहीं होता। अतः यदि उस व्यक्ति की जिस पर एराज़े नफ्सानी में से कोई हुआ है जीवनीय शक्ति बलिष्ट हो या वह व्यक्ति अनुभवी हो अर्थात् उस ने समय का उलट फेर देखा हो तो उस में एराज़े नफ्सानी का प्रभाव कम प्रगट होगा। परन्तु यदि जीवनीय शक्ति निर्बल हो या मनुष्य अनुभवी न हो तो उस में प्रभाव अधिक होगा यहां तक कि कई व्यक्ति जिन की शक्ति निर्बल होती है या जो अनुभव हीन होते हैं वह आह्लाद, शोक या भय से, जो अचानक हो मर जाते हैं।

एराज़े नफ्सानी से मनुष्य की मृत्यु की फ़िलास्फ़ी

यह प्रायः सुनने में आता रहता है कि अमुक पुरुष को ऐसा आघात पहुंचा कि वह शीघ्र मर गया या ऐसा क्यों होता है? यद्यपि इस के संबन्ध में शक्ति की निर्बलता और अनुभवहीनता इस के कारण बताये गये हैं किन्तु पाठकों के मनोरंजन के लिये हम इस बात को प्रकट रूप से वर्णन करते हैं क्योंकि कतिपय समय यद्यपि मनुष्य की शक्ति भी पर्याप्त होती है परन्तु वह एराज़े नफ्सानी का आखेट ही हो जाता है।

चूंकि दराज़े नफ्सानी में रूह की गति आवश्यक होती है चाहे वह गति शरीर के बाहर हो या शरीर के भीतर और यह भी पहले वर्णन हो चुका है कि रूह की गति के साथ रक्त की गति भी आवश्यक है अर्थात् जिस ओर रूह गति करती है उसी ओर रक्त भी गति करता है, जिस ओर रूह गति करती है उस के उल्टी ओर शीतता उत्पन्न होती है क्योंकि उस ओर रूह, रक्त और हरारते ग़रीज़ी (जठराग्नि) में कमी हो जाती है, अतः जिस समय रूह की गति अधिक होगी चाहे वह गति शरीर के बाहर हो चाहे भीतर जानलेवा और प्राणहर है।

बाहर की ओर रूह की अधिक गति से मृत्यु होने का कारण यह है कि रूह के कारण से रक्त और हरारते ग़रीज़ी (जठराग्नि) भी बाहर की ओर गति करती है और यह भीतर थोड़ी मात्रा में रहती है और क्योंकि इनके बाहर की ओर गति करने से शून्य रह जाता है इस लिये वह थोड़ी रूह उसे भरती है और फैलती है। इस से उस के भीतर और निर्बलता हो जाती है और वह शरीर की क्रियाओं के सञ्चालन के लिये पर्याप्त नहीं होती। इस दशा में अवश्य भीतरी भाग ठन्डा हो जाता है और जो रूह और हरारत बाहर की ओर गई थी वह भी घुल जाती है। क्योंकि भीतर से कमी के कारण सहायता नहीं मिल सकती इस लिये बाहर से भी शरीर ठन्डा हो जाता है। ऐसी अवस्था में मूर्छा या मृत्यु हो जाती है जैसा कि आह्लाद और क्रोध की अधिकता में मनुष्य मर जाता है। आह्लाद की अधिकता में तो प्रायः मृत्यु हो जाती है किन्तु अधिक क्रोध की अवस्था में मृत्यु होने का कारण यह है कि क्रोध में रूह हृदय की उत्तेजना और बल के साथ बदला लेने के लिये गति करती है क्योंकि शक्ति की निर्बलता से बदला नहीं लिया जा सकता। इस दशा में मृत्यु की घटना बहुत कम होती है। अधिकतर मूर्छा होती है यद्यपि मृत्यु भी कभी हो जाती है।

और इस दशा में जब कि रूह भीतर की ओर गति करे मृत्यु का कारण यह है कि जब रूह और खून बाहर की ओर गति करते हैं तो रूह और खून के अधिक एकत्रित होने से घुटन होती है और अवश्य हरारते ग़रीज़ी बुझ कर शरीर का भीतरी भाग शीत हो जाता

है और बाहर शीत होती ही है। अतः इस का परिणाम मृत्यु होता है। परा़जे नफ्सानी से मृत्यु का होना यद्यपि अधिकता की दशा में है परन्तु ज्वर, शिरः शूल इत्यादि तो प्रायः मनुष्यों को हो जाया करता है।

नोट—कभी शरीर ग़ज़ब, खुशी, ग़म खौफ़, हम्म और खजल के अतिरिक्त दूसरे हैयात नफ्सानी से प्रभावित होता है और वह तसव्वराते नफ्सानी (मान्सिक कल्पनायें) हैं। तसव्वराते नफ्सानी के द्वारा भविष्य के संबन्ध में भविष्य वाणी और दूसरी बातें भी संभव हैं। अतः संभोग के समय विशेष कर बीर्यपतन के समय जिस बुरी या अच्छी शक्ल का बालक उत्पन्न होता है इस के लिये किसी युक्ति की आवश्यकता नहीं। प्रायः देखने में आया है। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति खटाई खाता है या खटाई की कल्पना करता है तो मुख में पानी भर आता है या दांत खट्टे हो जाते हैं। इसी प्रकार दुखती आंखें देख कर नेत्र दुखने आ जाते हैं। या जिस व्यक्ति में रक्त की अधिकता हो और शिर की ओर अधिक ध्यान दे यदि वह लाल वस्तुओं की ओर देखता रहे तो उस की नक्सीर फूट जाती है। यह सब मान्सिक संकल्प से होता है और इसी प्रकार भयजनक अथवा आनंद दायक वस्तु से प्रकृति के भीतर तबदीलियां होती रहती हैं। यथा वह आशिक़ जिस की अवस्था माशूक़ की निर्दयता से यहां तक पहुंच गई हो कि बल क्षीण होकर मृत्यु के निकट पहुंच गया हो यदि उस को अचानक माशूक़ दिखाई दे जाये तो उसकी अवस्था संभलने लगती है और इसी प्रकार स्वास्थ्य या रोग की कल्पना करने से स्वस्थ पुरुष रोगी और रोगी स्वस्थ हो जाता है। अतः एक कथा मौलाना रूम की मस्नवी में लिखी है कि एक पाठशाला के विद्यार्थी अपने अध्यापक की निर्दयता से बहुत घबरा गये थे और उन को पढ़ना बहुत कठिन था। अन्तिम सब ने मिलकर एक उपाय सोचा। एक विद्यार्थी ने अध्यापक से पूछा कि क्या आप को कुछ रोग हैं! गुरु ने कहा 'नहीं"। दूसरे लड़के ने कहा "आप का मुख कुछ उतरा हुआ सा है।" तीसरे और चौथे और इसी प्रकार सब लड़कों ने गुरु को अलग २ बीमार बताया। उन के इस प्रकार कहने से गुरु को भ्रम हो गया और

उस ने रोगी हो कर लड़कों को छुट्टी दे दी। इस के अतिरीक्त यह मानसिक कल्पना ही होती है कि ऊंचे और तंग स्थान पर चलने से उस की ऊँचाई और गिरने का संकल्प कर के मनुष्य गिर जाता है, नहीं तो अभ्यासी लोग रस्सी को २ स्तम्भ से बांध कर उस पर चले जाते हैं जैसा कि प्रायः नटों को देखते हैं।

तात्पर्य यह है कि तसव्वराते नफ्सानी को मनुष्य के शरीर में महत्व प्राप्त है और यह भी एराज़े नफ्सानी ही में हैं।

एराज़े नफ़सानी से लाभ और हानि

एराज़े नफ्सानी का प्रभाव मनुष्य के शरीर में दो प्रकार से होता है (१) यह कि कई एराज़े नफ़सानी का प्रभाव ऐसा होता है कि आज़ा (अङ्ग), खि़ल्तें (दोष) और रूहें सब गर्म हो जाती हैं और गति करती हैं (२) यह कि कई एराज़े नफ़सानी का प्रभाव ऐसा होता है कि आज़ा, खि़ल्तें और रूहें सब शीत हो जाती हैं और गति नहीं कर सकतीं।

वह एराज़े नफ्सानी जो उष्ण करती हैं और गति में लाती हैं गुस्सा (क्रोध) खुशी (प्रसन्नता), लज़्ज़त (आनंद), उम्मीद (आशा) और हम्म (सदेह) हैं और वह एराज़े नफ्सानी जो ठण्डा करती हैं ग़म (दुःख,शोक), ख़ौफ़ (भय) और इसी प्रकार की और हैं।

आज़ा, इख्लात, और अर्वाह क्रोध से बहुत गर्म होते हैं। इतने प्रसन्नता इत्यदि से नहीं होते। और भय से शोक मे अधिक ठन्डे होते हैं। जो क्रोध मर्यादा के भीतर हो वह प्रायः प्रकृतियों के लिये लाभदायक होता है और विशेष कर उस व्यक्ति को लाभदायक होता है जिसकी प्रकृति शीत हो और व्यायाम कम करता हो।

भय और शोक स्वास्थ्य में सब को हानिकर होते हैं परन्तु चिकित्सा के रूप में कई प्रकृतियां जो गर्मी की ओर झुकाव रखती हों और इस कारण से उनके दोष बहुत पतले हो गये हों और गति में आये हों लाभदायक होते हैं और मर्यादा की ओर ले आते हैं और इससे महान् क्रोध भी शान्त हो जाता है। और गर्व जो कि प्रसन्नता के कारण से प्रगट होता है वह भी इसके करण से जाता रहता है।

भय और शोक रक्त और जठराग्नि (हरारते ग़रीज़ी) को शरीर की गहराई में पहुंचा देते हैं और प्रकृति को शीत रुक्ष कर देते हैं और मनुष्य को अति शीघ्र बुढ़ापा आ जाता है। इसी कारण से मुख का वर्ण पीत हो जाता है कान्ति और प्रफुल्लता जाती है और सब शक्तियां निर्बल हो जाती हैं और शक्ति की निर्बलता के कारण रोग प्रबल हो जाते हैं।

ऐसा क्रोध जो मर्यादा के भीतर हो अधिक तीव्र न हो उसका लाभ यह है कि रक्त का शरीर में सञ्चार करता है और रूह की शक्ति और ताप को शरीर के बाहर पहुंचाता है।

अधिक क्रोध अर्थात वह क्रोध जो मर्यादा से बढ़ जाये वह पित्त को जलाता है और शरीर में फैलाता है और मुख का वर्ण पीत करता है। इस लिये अधिक क्रोध उष्ण पित्त प्रकृति वालों को बहुत हानि कारक होता है और आर्द्र शीत प्रकृति वाले को और उस मनुष्य को जिसकी हरारते ग़रीज़ी (जठराग्नि) निर्बल हो गई हो और शरीर सूखा हुआ कान्तिहीन हो और शक्तियां जीर्ण हो गई हों क्रोध लाभ दायक होता है।

प्रसन्नता और आनंद जो मर्यादा सहित हो हरारते ग़रीज़ी को भड़काती और सारे शरीर में फैलाती है और जो मनुष्य सदैव प्रसन्न रहता है उस पर बुढ़ापे का प्रभाव देर में प्रगट होता है। प्रसन्नता मर्यादा सहित हो तो प्रकृति को उष्ण और आर्द्र करती है शरीर को मोटा और शक्तियों को बलवान करती है। इसी कारण प्रसन्नता में खाना भली प्रकार पचता और शरीर को आहार का अधिक भाग मिलता है, मुख पर कान्ति और प्रफुल्लता आ जाती है शरीर से रोग और अधिक मवाद निकल जाते हैं।

लज्जा अग्नि और रक्त को फैलाती है और बाह्य शरीर की ओर पहुंचाती है और आर्द्रताओं को पिघलाती और घुलाती है और इस कारण से प्रथम मुख को लाल करती है और रक्त को चलाती है। और इस कारण से कि अग्नि थोड़ी नष्ट होती है और

आर्द्रता थोड़ी पिघलती है अन्त में मुख पीतवर्ण हो जाता है। जितनी अग्नि नष्ट होती है उसी के अनुसार प्रकृति शीत होती है और आर्द्रता घुलने के कारण कुछ निर्बलता भी होती है।

आशा की ओर पहुंचने और किसी कार्य्य से निर्भय हो जाने से इतना ही लाभ होता है जितना मर्यादा सहित प्रसन्नता से और आशा की ओर न पहुंचने की हानि शोक की भांति है। प्रायः ऐसा होता है कि कठिन और जीर्ण रोग मनुष्य के शरीर में हो जाते हैं और किसी प्रकार उनका पतन संभव नहीं। फिर जब वह रोगी किसी अपनी बड़ी आशा की ओर पहुंचता है तो उसकी प्रसन्नता के कारण वह रोग कम हो जाता है और शीघ्र अच्छा होने लगता है यहां तक कि कुछ समय में परमेश्वर की इच्छा से पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। और प्रायः ऐसा भी होता है कि मनुष्य किसी बात से डरता है और वह अचानक सामने आ जाये तो रोग शीघ्र बढ़ जाता है और कठिन हो जाता है। और यदि मनुष्य बड़े २ कामों के संबन्ध में मन को आशा या निराशा के विचार (हम्म) से शून्य रक्खे तो मन मलीन रहता है और हरारत और सब शक्तियां निर्बल हो जाती हैं और मुख का वर्ण तबदील हो जाता है, पीड़ायें और रोग बढ़ते हैं जैसे बड़े कामों के संबन्ध में आशा और निराशा की उलझन में रहने से और कार्य्य करने का साहस और वीरता मनुष्य की पीड़ाओं और रोग को भुला देती है और प्रायः रोग भी दूर करती है। अतः यात्रा करना और नगर २ फिरना और विचित्र २ वस्तुयें देखना जीर्ण रोगों और कठिन कष्टों के लिये लाभदायक है।

और इश्क़ (प्रेम) भी अराज़े नफ्सानी में से है। जिस किसी पर उसका प्राबल्य होता है उसको बहुत हानि होती है और उसके दूर करने में कोई प्रयत्न ऐसा लाभदायक नहीं है कि उसको क्रोध में लाया जाये और अभिवेशन कार्य जिन में क्रोध और भय भी होता है लाभ भी देते हैं। विरुद्ध इसके अकर्मण्यता और निश्चिन्त और निर्भय होना सब से अधिक हानिकारक हैं। और यात्रा करना नगर २ फिरना, विचित्र २ कार्य्य और वस्तुयें देखना और अभिषेणन के कार्य्यों में रहना इशक़ को दूर करता है।

एराज़े नफ़सानी से लाभ प्राप्ति और हानि रोकने के उपाय

हकीमों ने एराज़े नफ्सानी से लाभ उठाने और उन से जो हानि होती है उसके दूर करने के लिये उपाय बताये हैं। परन्तु एराज़े नफ्सानी में सब से अधिक लाभदायक प्रसन्नता और आनन्द हैं क्योंकि दोनों मानव शरीर के अनुकूल और प्रतिकूल हैं और रूह की प्रकृति रखते हैं और शरीर की प्रकृति को गर्म करते हैं। और सब से हानिकारक एराज़े नफ्सानी शोक और भय हैं।

एराज़े नफ्सानी से लाभ प्राप्त करने और हानि दूर करने की दो विधियां हैं। एक विधि यह है कि देखें एराज़े नफ्सानी में से प्रत्येक शरीर पर क्या प्रभाव करते हैं। अतः जो कुछ प्रभाव करता है उसके विरुद्ध उपाय करें जैसेः—

गुस्सा मनुष्य के शरीर में हरारत को भड़काता है। इसका उपाय इस प्रकार करें कि क्रोधी मनुष्य को मनोहर हास्यरस की कथायें सुनायें, उत्तम २ शोबदे (खेल) दिखायें, जिन लोगों के साथ उस को प्रेम हो वह उसके पास उपस्थित किये जायें। इन उपायों के अतरिक्त ठन्डे शर्बत यथा चन्दन और केवड़ा इत्यादि के शर्बत पिलायें। इन से क्रोध शान्त होजाएगा और उससे शरीर को जो हानि पहुंची है वह भी दूर हो जायेगी।

ख़ौफ़ और ग़म जो कि हरारत को बिठाते और प्रकृति को शीत रुक्ष बनाते हैं उनकी हानि इस प्रकार दूर करें कि भयभीत अथवा दुःखी व्यक्ति को पक्की आशा दिलायें, आनन्द से परिपूर्ण सभा में बिठायें, उष्ण वस्तुयें जो हृदय प्रफुल्लित करने वाली हों खिलायें, पिलायें मन को कथा कहानियों के पढ़ने और सुनने की ओर ले जायें। स्त्रियों और बालकों (जो कि बुद्धि के परिपक्व नहीं हैं) के भय शोक दूर करने के लिये भिन्न २ प्रकार के विचित्र खेल दिखायें, सुरीले गीत सुनायें जिससे उन्हें प्रसन्नता और आनन्द प्राप्त हो।

दूसरी विधि एराज़े नफ्सानी से लाभ उठाने और हानि दूर करने की यह है कि मनुष्य अपना आदर बढ़ाये रक्खे, साहस ऊंचा रक्खे और खुशी, लज्ज़त, ग़म और ख़ौफ़ से जो बात सन्मुख आये

प्रत्येक में स्वाभिमान का विचार रक्खे और इन में किसी की आंखों में अपमान न होने दे और घटना को अधिक महत्व न दे जिससे कोई परिवर्तन उसके भीतर न हो। यदि कोई परिवर्तन हो तो उस को अन्य पुरुषों पर प्रगट न करे, मित्र शत्रु सब से छिपाये रक्खे जिससे समय की अच्छाई और बुराई झेलने का अभ्यासी हो जाये यहां तक कि पराज़े नफ़्सानी उस पर प्रभाव न करने पायें।

८—वस्त्र

जीवन की आवश्यकताओं में पहिली सात बातें जो वर्णन की हैं वह यूनानी हकीमों के विचार का फलस्वरूप हैं और सित्तये ज़ुरूरिया के नाम से हर यूनानी पुस्तक में कहीं संक्षिप्त रूप में कहीं विस्तार के साथ इन का वर्णन है। हम इन सातों के साथ आठवीं आवश्यकता वस्त्र का भी वर्णन करना चाहते हैं।

यूनानी के बुद्धिमानों ने स्यात इस लिये इस का वर्णन नहीं किया कि जीवन का निर्भर इस पर नहीं है। जो लोग कपड़े पहिनने का अभ्यास छोड़ दें वे कपड़ों के बिना भी रह सकते हैं। किन्तु जब संसार की अवस्था का अनुमान किया जाये तो कपड़े पहिनना भी आहार की भांति आवश्यक प्रतीत होता है। वस्त्रों के बिना बहुत सी मृत्युयें होती हैं। जाड़ों में ठिठरते हुये कंगाल लोगों की दशा पर विचार कीजिये तो ज्ञात होगा कि मनुष्य कपड़ों का अभ्यासी हो चुका है।

मानव जीवन के लिये अग्नि की आवश्यकता है और वस्त्र शारीरिक अग्नि को सुरक्षित रखते हैं। वस्त्रों में भिन्न २ प्रकार के फ़ैशन मनुष्य की सौन्दर्य्य की इच्छा का कारण हैं। जीवन अथवा स्वास्थ्य के लिये तो यह आवश्यक है कि वस्त्र अनुकूल हो जो शारीरिक अग्नि की रक्षा करे वाह्य उष्णता से सुरक्षित रक्खे और अवयवों की वृद्धि और विकास में रुकावट न डाले या शरीर को बन्द न रक्खे। यह एक विचित्र बात है कि यूरोप जो कि एक ठन्डा प्रदेश है उस में भी वस्त्र अब दिन प्रति दिन अब कम किये जा रहे हैं और यह विचार होता जाता है कि मनुष्य ने वस्त्र को व्यर्थ बढ़ाया है विशेष कर स्त्रियों के वस्त्र तो बहुत कम हो रहे हैं।

और कई स्थान पर ऐसे लोग भी हैं जो कि नितान्त नग्न रहना ही अच्छा समझते हैं। वह कहते हैं कि जब से मनुष्य ने अपना शरीर ढांपना आरंभ किया है तब ही से संसार में व्यभिचार बढ़ता जाता है। लैंगिक इन्द्रियां भी दूसरे सामान्य शारीरिक अङ्गों की भांति हैं। यह लोग घरों में नितान्त नग्न रहते हैं। स्त्री, पुरुष, वृद्ध, बालक नंगे काम करते हैं। बाहर जाने की आज्ञा सरकार नहीं देती इस लिये बाज़ार में वस्त्र पहिन लेते हैं परन्तु इस मत के लोग जब आपस में पार्टियां उत्सव करते हैं तो सब वहां जाकर नग्न हो जाते हैं।

जर्मनी में ऐसे लोग अधिक हैं। अन्य देशों में अब होते जाते हैं। मैं जर्मनी में था तो उन पार्टियों के चित्र भी देखे थे।

कभी २ यह लोग पब्लिक में नंगे आने का साहस भी करते हैं। लन्डन में एक होटल में एक लेडी बिल्कुल नंगी आ बैठी और खाना मांगा। पुलीस आ कर एक चादर उस पर डाल कर उस को वहां से ले गई। एसेक्स में एक जोड़ा बागों में नंगा फिरता कई बार पत्रों में लिखा गया है।

फ्रान्स के एक फिलास्फर ने अपना अनुभव एक जर्मन कुटुम्ब में जाने का वर्णन किया है। घर वाला, उस की स्त्री, लड़की सब नंगे थे। उन्हों ने कहा कि आप को भी नंगा होकर हमारे साथ खाना खाना चाहिये। वह कहता है कि जब एक कमरे में जाकर मैं ने कपड़े उतार दिये मेरा जी बाहर निकलने को नहीं चाहता था। घर वाली मुझको पकड़ लाई और जब कुछ समय व्यतीत होगया तब मुझे ज्ञात होने लगा कि इस में कोई भी बुराई नहीं है। उस स्त्री ने मुझ से प्रश्न किया कि मुझ को नग्न देख कर आप के मन में क्या विचार उत्पन्न होते हैं तो मैं ने यह उत्तर दिया कि मैं ऐसा समझता हूं कि मैं एक मूर्ति के सामने खड़ा हूं।

इस कथा के वर्णन से हमारा आशय है कि वस्त्र पहिनना निःसंदेह जीवन के लिये आवश्यक है किन्तु मनुष्य ने इसको आवश्यकता से अधिक अवश्य बढ़ाया है और स्यात् इसी लिये इसके विरुद्ध सभ्य संसार ने ही जिहाद आरम्भ किया है। कुछ भी

हो कपड़े की आवश्यकता तो उनको भी पड़ती है। रात्रि को सोते समय ही या अधिक जाड़े के समय ओढ़ना तो पड़ता ही है। यदि पर्याप्त ओढ़ना दिन को न रक्खें तो उष्ण कमरों में बैठ कर आ अग्नि ताप कर यही काम लेना पड़ता है। भारतवर्ष में नांगे लाखों की संख्या में हैं। जाड़ों में अग्नि वह भी जलाये रखते हैं।

यूरोप में नंगा रहने की रौ हो परन्तु सर्व साधारण तो अभी तक भी सारी सभ्यता वस्त्रों में ही समझते हैं। उनके मिशनरी असभ्य देशों में जाकर लोगों को वस्त्रों का अभ्यासी बनाने में बड़ा भारी गर्व मानते हैं।

वस्त्र का आरंभ कैसे हुआ, भिन्न २ देशों में क्यों भिन्न २ प्रकार के वस्त्र पहिने जाते हैं, भिन्न २ फ़ैशन क्यों हुये कौन से फ़ेशन बुरे हैं, भारतवर्ष में कौन सा वस्त्र पहनना चाहिये, ऐसी बातों का वर्णन इस पुस्तक का विषय नहीं। यहां हम केवल कुछ आवश्यक बातें वस्त्रों के विषय में ऐसी लिखना चाहते है जो कि वस्त्रों के उद्देश्य को प्रगट कर सकें।

सब से पहिले वस्त्र के विषय में यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि वस्त्र मनुष्य की अग्नि को सुरक्षित रखते हैं। वह स्वयम् मनुष्य के शरीर में गर्मी नहीं पहुंचाता। अग्नि आहार से उत्पन्न होती है और यदि आकाश कम गर्म हो तो वह मनुष्य के शरीर की अग्नि को खींच लेता है। इस लिये कपड़ों की आवश्यकता होती है जिस से आकाश शारीरिक उष्णता को सहज में न खींच सके। उष्ण कपड़े से यह आशय होता है कि वह कपड़ा उष्णता खींचने की बहुत कम शक्ति रखता है अर्थात जब गर्म कपड़ा पहिना हो तो जो अग्नि शरीर से निकलती है उसको वह खींच कर बाहर नहीं ले आता, वहीं सुरक्षित रखता है। ऐसे ही बरफ़ के चारों ओर जब कपड़ा लपेटा जाये तो वह नहीं पिघलती क्योंकि गर्म कपड़ा बाहर की अग्नि को वहां तक पहुंचने नहीं देता है। ठंडे कपड़े से यह आशय है कि यह कपड़ा अग्नि को खींचने वाला है। इस लिये गरम देशों में बहुधा जाड़ों के दिनों में कपड़ा पहिननेकी आवश्यकता होती है और शेष दिनों में यदि बस्त्र न भी पहने जायें तो अधिक हानि नहीं होती। वैसे गर्मी के दिनों में लू से बचने के लिये भी हलका कपड़ा आवश्यक है। कपड़ा रीति के अनुसार पहिनना होगा।

भारत वर्ष में भिन्न२ भाग अपने जल वायु के विचार से भिन्न हैं। अतः कोई एक प्रकार का वस्त्र हर समय और हर स्थान के लिये ठीक नहीं हो सकता। उत्तरीय भारत के शरद ऋतु और ग्रीष्म ऋतु के ताप में बड़ा अन्तर होता है। बङ्गाल में कई मनुष्य जाड़े के दिनों में पर्याप्त वस्त्र न होने के कारण मर जाते हैं। ठन्डी वायु चलती है और लोग ज्वर ग्रस्त हो जाते हैं और गर्मियों में गर्मी से मृत्यु हो जाती है। बम्बई की ओर १२ मास लगभग एक सा मौसम रहता है। पहाड़ों पर जाड़ों में बर्फ़ जमी रहती है, गर्मियों में गर्मी नहीं होती और गर्मियों में बीकानेर इत्यादि मरूभूम से बने हुये हैं, जाड़ों में तीव्र जाड़ा नहीं पड़ता।

इन सब बातों का विचार कर के ऋतु और जल वायु को देख कर कपड़े पहनने चाहियें जिनसे अग्नि सुरक्षित रहे और बाहर की गर्मी से रक्षा हो। इतना ध्यान रहे कि जाड़ों में शरीर को लगता हुआ वस्त्र फ़लालैन इत्यादि का होना चाहिये और गर्मियों में ऐसा होना चाहिये जो हल्का हो किन्तु पसीना सोख सके।

मानव शरीर के कोमल २ भाग सिर और आंतें हैं। उनका ध्यान सब से अधिक आवश्यक है उन पर गर्मी सर्दी का प्रभाव अति शीघ्र होताहै। आंतों या पेट के निम्न भाग में अपान वायु होती है। उसका प्रभाव शीतल है। इस लिये वह प्रायः ठन्डा रहता है। वहां पसीना नहीं आता है इस लिये वस्त्र ऐसा होना चाहिये कि पेट ढका रहे। जाड़ों में जिन के पेट के भीतर वायु है वह पेट को अधिक उष्ण रक्खें। शिर पर गर्मी सर्दी का शीघ्र प्रभाव होता है। यद्यपि बङ्गाली नंगे सिर भी रहते हैं तथापि अधिक गर्मी और सर्दी में नंगे सिर रहना ठीक नहीं है। पगड़ी भारत वर्ष के लिये उचित है। टोपी भी उचित है।

कई स्थानों में पांव खुले रहने की प्रथा है। दक्षिण भारत में बड़े २ आफ़िसर नंगे पांव फिरते हैं। कालिज में देखा किसी ही विद्यार्थी के पांव में जूता होगा। स्त्री पुरुष दोनों नहीं पहनते। यह ढंग कोई अच्छा नहीं है। तंग जूता स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है। कभी २ हरी भरी घास पर नंगे पांव फिरना स्वास्थ्यरक्षक है किन्तु कभी जूता न पहिनना अच्छा नहीं है।

वस्त्र के सम्बन्ध में रंग का प्रश्न भी बड़ा महत्व रखता है। गर्मियों में तो उस का महत्व और भी बढ़ जाता है। गहरे रंग के कपड़े हरारत को खींचने का गुण रखते हैं। इस लिये ऐसे कपड़े सूर्य्य की गर्मी खींच कर पहिनने वाले को बहुत कष्ट देते हैं। इस के अतिरिक्त बहुत काले और गहरे रंग के वस्त्र रोशनी को शरीर तक नहीं पहुंचने देते। इस प्रकार हम अपने शरीर को एक तङ्ग और अंधेरी कोठरी में बन्द रखते हैं जहां वायु और रोशनी का गुज़र नहीं होता। इस का अनिवार्य्य परिणाम रोग है। हमारे शरीर को वायु और रोशनी दोनों की आवश्यकता है इसलिये गर्मियों में हल्के रंग के वस्त्र या श्वेत रंग के पहिनना अच्छा है। जाड़ों में काले रंग का कपड़ा शरीर को गर्म रखता है। इस लिये ऋतु के विचार से वस्त्र के रंग का बदलते रहना चाहिये।

प्रत्येक देश में वस्त्र का एक लाभ शरीर को ढांपना भी रहा है। अतः वस्त्र का आरम्भ बहुधा स्त्री पुरुष के लिङ्गेंद्रिय के ढापने से होता है। भारत वर्ष के समुद्र तट पर दक्षिण की ओर अब भी बहुत सी जातियां बसती हैं जिन का कुल कपड़ा एक लंगोटी होती है। इन की स्त्रियां केवल एक धोती पहिनती हैं जो नीचे बांध कर फिर छातियों पर से छाती ढांपने के लिये ली जाती हैं। स्त्री को अधिक ढांपने की आवश्यकता है यह विचार भी प्रत्येक देश में रहा है। इस ने स्त्री के वस्त्र को बहुत बिगाड़ा है। मुसलमान देशों में बहुत बढ़ गया है। और वहां और वस्त्रों के अतिरिक्त बुर्का भी आवश्यक होगया है। यूरोप के देशों में भी पहिले बड़े २ गहने और गाउन पहने जाते थे परन्तु वहां दिन प्रति दिन विचार बदलता गया और अब पुरुष की अपेक्षा स्त्री अधिक खुली रहती है। कम होते २ अब स्त्रियों का वस्त्र ऐसा रह गया है कि बाहु सब नंगे छाती आधी नंगी और टांगें घुटने के ऊपर तक नंगी। टांगों पर लम्बी जुर्राबें भी पहिनी जाती हैं परन्तु अब तो इस के विरुद्ध भी विचार हैं और आज कल कई लेडियां गर्मियों में नंगी टांगों से घूमती दिखाई देती हैं। जुर्राब पहिनी भी जाये तो ऐसी कि शरीर के रंग से मिले और टांग नंगी ही दिखाई दे। कई लोग ऐसा भी कहते हैं कि स्त्री का वस्त्र ऐसा हो जाना चाहिये जैसा कि स्नान के समय पहिना जाता है। १९२९ ई०

में जब यूरोप में गर्मी की बड़ी लहर चली थी उस समय समाचार पत्रों में चित्र छपे थे जिन में स्त्रियां दफ्तरों में स्नान के कपड़े पहिने कार्य्य कर रही थीं।

वर्षा ऋतु में तो नंगे पांव रखना नितान्त हानिकारक है। स्वास्थ्य रक्षा का नियम यह है कि सिर को ठन्डा और पांव को गरम रखना चाहिये। परन्तु इसका तात्पर्य्य यह भी नहीं है कि गर्मियों की ऋतु में जुर्राबें और भारी जूते पहने जायें। पांव और मस्तिष्क की नसों का सीधा सम्बन्ध है। इस लिये पांव अधिक ठन्डे रहने से प्रतिश्याय और सर्दी और आवश्यकता से अधिक गर्म रहने से शिरः शूल, रूक्षता इत्यादि हो जाती है।

वस्त्र सदैव खुले बनवाने चाहियें। अधिक तंग कपड़ों से जीवनदाता वायु शरीर को भली भांति नहीं लगने पाती। गरमी से पसीना आता है और हवा न लगने के कारण शीघ्र शुष्क नहीं होता है। इससे अंधौड़ियां अर्थात् छोटी २ फुन्सियां निकल आती हैं और भिन्न २ प्रकार के चर्मज रोग उत्पन्न हो जाते हैं जो कष्ट देते हैं। इस के अतरिक्त जो अवयव तंग कपड़ों में कसे रहते हैं उन की वृद्धि में बाधा पड़ जाती है। तंग अचकन या कोट पहिनने वालों के सीने चौड़े नहीं होते। तंग बिरजिस पहिनने से पिण्डलियां निर्बल हो जाती हैं, तंग जूते पहनने से पांव छोटे हो जाते हैं और उन में भिन्न २ प्रकार के कष्ट हो जाते हैं। जो लोग बहुत तंग टोपियां पहिनते हैं उनके माथे पर चिन्ह हो जाते हैं और अंगरेज़ों में तो अधिकतर गंज उन्हीं लोगों के सिर पर होता है जिनका हैट बहुत तंग होता है और खोपड़ी से चिम्टा रहता है। तंग कालर से गले और कण्ठ के बहुत से रोग हो जाते हैं। तंग पेटियां पहिनने से कोठे के सब अवयव बिगड़ जाते हैं। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि पहिनने का प्रत्येक वस्त्र ढीला हो जिससे अंगों की गति में कोई कठिनाई न हो, वायु शरीर को भली भांति लगती रहे और स्वांस लेने में आसानी हो।

मिस्टर बर्नार मैकफ़ेडन वस्त्रों के विषय में लिखते हैं :—

"यदि मुझे पुरुषों के लिये सर्वोत्तम वस्त्र चुनना पड़े तो मेरा विचार है कि मैं रोमनों, यूनानिकों या स्काटलैण्ड वालों के विशिष्ट

वस्त्रों को अच्छा समझूंगा। यह वस्त्र न केवल शारीरिक अवयवों को गति देने में उचित रूप में स्वतंत्र रखते हैं और शरीर को उचित पोज़ीशन में रखने में सहायक होते हैं प्रत्युत शरीर के केन्द्रीय स्थानों तक वायु को स्वतंत्रता पूर्वक प्रविष्ट नहीं होने देते। स्वास्थ्य रक्षा के विचार से यह बात बहुत महत्व रखती है। वायु का चर्म से लगते रहना सदैव उत्तम है परन्तु उन शारीरिक अङ्गों के उन आवश्यक भागों में इनका लगना विशेष कर आवश्यक है। इन भागों को बन्द रखने और स्वास्थ्य को हानि पहुंचाने वाली विधियों से ढांपने से बहुत प्रकार की निर्बलतायें होती हैं। तंग पतलून और तंग पाजामा उत्तम वस्त्र नहीं हैं, यदि इन में केन्द्रीय अंग भिंचे रहें और वायु का गुज़र न हो।

जो कपड़े पहिले पहने जाते हैं अर्थात् चर्म से लगे रहते हैं उनको शीघ्र २ बदलते रहना चाहिये। इन वस्त्रों में यह बात विशेष रूप में देखनी चाहिये कि यह पसीना सोख सकते हैं या नहीं। पसीने को सोखने वाले कपड़े नीचे पहिनने के लिये अच्छे होते हैं। शरद और ग्रीष्म ऋतु दोनों में खद्दर इस आशय के लिये अच्छा होता है। बहुत से अंगरेज़ खद्दर को नीचे पहिनने के काम में लाते हैं। दुकानदार इसको (Sponge Cloth) स्पञ्ज क्लाथ के नाम से उनके हाथ बेचते हैं। नीचे पहिनने के कपड़े अधिक संख्या में हों तो अच्छा है, नहीं तो धोना चाहिये।

शेष सब कपड़ों की स्वच्छता पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये। जो लोग अधिक रुपया नहीं व्यय करना चाहिते वह कम मूल्य का साधारण कपड़ा खरीदें प्रत्युत वस्त्रों के कई जोड़े बनवायें जिससे धुलवाने में आसानी हो। मैले वस्त्र मनुष्य के स्वास्थ्य के लिये बहुत हानिकारक हैं। जब आप नहा कर धुले हुये या नये वस्त्र पहिनते हैं तो कितनी प्रसन्नता प्राप्त होती है, हृदय और मस्तिष्क प्रफुल्लित होता है, मन आनन्दित होता है। बहुत से लोग नहाते तो दिन में २ बार हैं परन्तु कपड़े वही मैले कुचैले पहिन लेते हैं। यह लोग नहीं समझते कि मैल चाहे शरीर का हो चाहे कपड़े का स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है।

जो वस्त्र रात्रि को पहिने जाते हैं उनको दिन के समय पहिनना और दिन के पहिने हुये कपड़े रात्रि को पहन कर सोना भी ख़राब है। दिन और रात्रि के कपड़े अलग २ होना चाहियें और यदि दैनिक पानी में धोया न जाये तो भी धूप में सुखा लेना अच्छा है। धूप में रोगाणुओं को मारने मैल को दूर करने और कपड़े को श्वेत करने का गुण है, इस लिये कभी २ कपड़े उतार कर सुखाने को डाल देना चाहिये और थोड़ी देर वायु में कपड़े उतारे हुये शरीर को भली प्रकार मलना चाहिये जिससे रोमछिद्रों को वायु लग सके। रोम छिद्रों को वायु लगने से शरीर में फुर्ती और स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

वस्त्र में यह कमी स्वास्थ्य के विचार से भी हुई है। तंग पेटियां, कार्सेट इत्यादि इसी वास्ते छोटे हैं कि शरीर खुला रहे, फुर्ती रहे, वायु लगती रहे, यह सब विचार कर रहे हैं। परन्तु इस के साथ यह विचार भी यूरोपियन सभ्यता में काम करता है कि स्त्री को ऐसी रहना चाहिये कि पुरुष को सुन्दर दिखाई दे। स्त्री अपने सौंदर्य्य को जितनी अच्छी प्रकार दिखा सके दिखाये।

मुसलमानी देशों में भी इस सभ्यता का प्रभाव है। टर्की में हम ने देखा कि प्रायः यूरोपियन वेष ही हो गया है। मिश्र में एक पतला सा जालीदार कपड़ा नाक से आरंभ कर के मुख पर डाला जाता है परन्तु नीचे वस्त्र प्रायः वही हैं।

भारत वर्ष में भी मुसलमानों का एक भाग है जो पर्दे और बुर्के का विरोधी है। भारत वर्ष में दिन प्रति दिन वस्त्रों में परिवर्तन हो रहा है। पश्चिमीय सभ्यता प्रत्येक स्थान पर अपना प्रभाव डाल रही है। हम केवल इतना कहना चाहिते हैं कि परिवर्तन के साथ स्वास्थ्य का ध्यान रहना तो उचित है ही परन्तु उस के साथ यह पश्चिमीय विचार कि स्त्री अपने सौन्दर्य्य को अच्छे से अच्छा पब्लिक में दिखाये यह न होना चाहिये। जितनी सरलता रहेगी उतना ही यह परिवर्तन अच्छा होगा। समय पर जताने के विचार से हम ने यह अन्तिम नोट दे दिया है।

अन्त में हम एक पत्र सहेली में लिखे हुये एक मुसलमान देवी ग० र० बेगम के लेख को उद्धृत कर के इस विषय को बन्द करते हैं क्योंकि इस में स्त्री का दृष्टिकोण प्रकट होता है।

वस्त्र कैसा होना चाहिये और उस का प्रभाव पुरुष के प्रेम पर

संसार की सृष्टि के साथ ही स्त्री और पुरुष के लिये वस्त्र भी पैदा हुआ था और स्त्री पुरुष इस से शरीर के गुप्त अंगों के ढांपने का काम लेते थे। हमारे पूर्वज कहते थे कि आदम और हव्वा ने बहिश्त में गेहूं का दाना खाया तो उन के वस्त्र उन के शरीर से गिर गये थे और उन्हों ने अपने शरीर को पत्तों से ढांपा था और कुछ समय तक संसार में स्त्री और पुरुष वृक्षों के पत्तों ही से अपने शरीर को ढांपते रहे।

उस समय को अज्ञानता या अंधकार का समय कहते हैं परन्तु उस समय में भी इस शरीर ढांपने में बनावट और नेकी के चिन्ह पाये जाते हैं।

वस्त्र का वास्तविक उद्देश्य स्त्री के लिये शरीर को ढांपना और उस के पश्चात दूसरा उद्देश शरीर को गरम रखना है परन्तु इससे ही वस्त्र में इतनी कांट छांट और बनावट से काम लिया गया है कि वस्त्र बनाव श्रृङ्गार और पुरुष को अपनी ओर आकर्षित करने का साधन बन गया।

आज यदि स्त्रियों के विचित्र और अमूल्य वस्त्रों पर ध्यान दिया अथवा उन से आप इस का वास्तविक कारण पूछें तो बड़े वाद विवाद के पश्चात आप इस परिणाम पर पहुचेंगे कि स्त्री अपने वस्त्र द्वारा अपनी अमीरी प्रगट करती है। वह पहले दूसरी स्त्रियों पर प्रभाव डालने के पीछे पुरुषों को अपना प्रेमी बनाना चाहिती है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि पुरुष उन से प्रभावित होते भी हैं या नहीं और यदि होते हैं तो किस सीमा तक।

स्त्री सदैव अपनी रुचि के अनुसार वस्त्र पहिनती है। आप उस के लिये किसी प्रकार का वस्त्र चुनें या उसको बल पूर्वक पहनादें

परन्तु वह कुछ समय पीछे उस को उतार फेंकती है। स्त्री केवल अपनी रुचि के अनुसार ही वस्त्र पहिनती है। पुरुष स्त्री के लिये वस्त्र, वस्त्र का रंग या फ़ैश्न तजवीज़ करने में ९९ प्रति शत असफल रहत हैं। अतः पुरुषों का कर्तव्य है कि वह वस्त्र के विषय में स्त्री को खुले बन्दों अपने मत और अधिकार के बरतने की आज्ञा दें और उस को बलात् स्वयम अपनी रूचि का वस्त्र पहिनने के लिये वाधित न करें।

हम को जानना चाहिये कि पुरुष हमारे वस्त्र से इतने प्रभावित नहीं होते जितना कि भूल से हम ने समझ रक्खा है। पुरुष उस वस्त्र से प्यार नहीं करते जो स्त्री पहिनती है वरन् उस स्त्री से प्रेम करते हैं जो उस वस्त्र के भीतर होती है। यद्यपि पहिले पहिल पुरुष स्त्री के वस्त्र से प्रभाबित होते हैं और वस्त्र अपनी आकर्षण शक्ति से पुरुष का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती हैं किन्तु यह जादूवत प्रभाव शीघ्र चला जाता है। कोई स्त्री अपने पति को केवल वस्त्र ही से प्रसन्न नहीं कर सकती क्योंकि वस्त्र का प्रभाव चिरकाल तक रहने वाला नहीं होता। हमें स्मरण रखना चाहिये कि पुरूष स्त्री से वस्त्र के लिये विवाह नहीं करते प्रत्युत वह सत्य रूप में एक सफल पत्नी के इच्छुक होते हैं। पुरुष के ध्यान आकर्षित होने का निर्णय स्वयम् स्त्री पर निर्भर है। फिर भी इस में संदेह नहीं कि स्त्री पुरुष का परस्पर प्रेम स्थिर रखने और उसे उत्तम बनाने में वस्त्र एक अच्छा साधन है परन्तु जब स्त्री पुरुष में झगड़ा हो जाता है तो स्त्री का बुरा वेष कांटे की भांति खटकने लगता है।

हमारा कर्तव्य है कि ऐसे वस्त्र पहिनने में व्यर्थ रुपया न बहायें। वस्त्र की उत्तमता इसी बात में नहीं है कि वह बहुमूल्य हो प्रत्युत उस की अच्छाई उसकी स्वच्छता और पहिनने वाली के शरीर के अनुसार उस की काट पर निर्भर है। यदि हम बहुत अच्छा वस्त्र पहनें जो भाग्य से अच्छा तैयार हो जाये परन्तु जिस पर इतना रुपया व्यय हुआ है कि एक बोझ पड़ गया हो तो क्या हमारा पति उस वस्त्र से प्रसन्न हो सकता है जिसमें उसकी मेहनत की कमाई के बड़े भाग को खर्च कर दिया हो और जो उसको अपनी हैसियत से ऊंचा ख्याल करता हो!

स्त्री के लिये सादा और सर्वोत्तम प्रकार का वस्त्र वह है जो उस के दैनिक कार्य्य के अनुसार हो और उस के पति की आमदनी उस की तैयारी का खर्च उठाने के योग्य हो। वही उस के लिये सब से अच्छा वस्त्र कहलाया जा सकता है। स्त्रियों को समझ लेना चाहिये कि पुरुष सब से पहिले उस के मुख की ओर दृष्टि डालता है इस के पीछे उसकी निगाह शीघ्र स्त्री के पांव पर पड़ती है।

इस लिये हमारे वस्त्र में सब से प्रथम वस्तु हमारे सिर का दुपट्टा और उसका रंग है। इस के पीछे हमारे पांव में पहिनने की वस्तु है, चाहे जूती हो या गुरगाबी या बूट। इसके साथ ही जुर्राब भी अच्छे हों। फिर मनुष्य सारे वस्त्रों पर एक निगाह डालते हैं। इस समय यदि वह वस्त्र को स्वच्छ और सादा पाता है तो उससे प्रसन्न होता है। यह कोई आवश्यक नहीं कि वस्त्र भड़कीले और अमूल्य ही हों। विरुद्ध इसके मेरा तो यह है कि पुरुष भड़कीले और बहुमूल्य वस्त्रों से घबराते हैं। वह गहरे रंगों को भी नहीं चाहिते। पुरुष विवाह इत्यादि के उत्सवों पर बहुमूल्य बस्त्र पहने और गहनों से लदी हुई स्त्रियों से यथासम्भव अलग रहा करते हैं और उनके साथ चलने फिरने से घबराते हैं। हां! सादा फ़ैशन में घबराहट कम हो जाती है।

हमारी बहनें जिनमें शिक्षित बहनें भी सम्मिलित हैं अपने वस्त्रों को ईर्षा के कारण दिन प्रति दिन अधिक अनुचित और बहुमूल्य बनाती जाती हैं। स्त्रियां एक दूसरे के वस्त्रों को देख कर ईर्षा करती हैं। वह इस बात को नहीं सह सकतीं कि किसी अन्य स्त्री के वस्त्र उनके वस्त्रों से उत्तम या बहुमूल्य हों। कई स्त्रियों पर तो इसका बड़ा प्रभाव होता है और यह कोई अच्छी बात नहीं। इससे साहस की कमी, निर्बलता और अज्ञानता प्रगट होती है। बुद्धिमती स्त्रियां दूसरों के बस्त्रों से प्रभावित नहीं होतीं, न उनके पीछे चलना पसन्द करती हैं वरन् वह अपनी अवस्था के अनुसार सर्वोत्तम प्रकार के वस्त्र स्वयम् तजवीज़ करती हैं और यही बात स्त्री की सुशीलता और योग्यता को प्रगट करती है क्योंकि स्त्री जितनी निपुण होती है उतनी ही रुचि से घर का प्रबन्ध करती है। और इस घर के प्रबन्ध में बस्त्रादि और बालकों का पालन पोषण भी सम्मिलित है। वस्त्र क्यों कर संभाल

कर रक्खे जा सकते हैं, इस के विस्तार के लिये यह अवसर नहीं। इस लिये केवल इतना लिखती हूं कि बहनें केवल एकही वस्त्र पहने रहती हैं, इस नियम में परिवर्तन की आवश्यकता पड़ती है। हमारे दिन के वस्त्र और रात्रि के वस्त्र अलग २ होने चाहियें। इससे हमारे कपड़ों का व्यय ३/४ रह जायेगा और कपड़े बहुत दिनों तक चलेंगे और सुंदर दिखाई देंगे। रात्रि के समय बिछौने पर सोने से अच्छे से अच्छे कपड़े का सत्यानास हो जाता है। रात्रि के वस्त्र सादे और ढीले ढाले होने से निद्रा भी अच्छी आती है और दिन में पहने जाने के कपड़े भी शीघ्र नहीं बिगड़ते। हमको यह बात कदापि नहीं भूलनी चाहिये कि हम केवल फ़ैशन अथवा बहुमूल्य वस्त्र से अपने पति का प्रेम प्राप्त नहीं कर सकतीं वरन् हम अपने प्रबन्ध में निपुण, अच्छे सलीके और वफ़ादार पत्नी होने के कारण कपने पति का प्रेम जीत सकती हैं। हां! सर्वोत्तम सादा वस्त्र पुरुष के इस प्राप्त प्रेम को वश में रखने का एक साधन होता है। वस्त्र प्रेम उत्पन्न नहीं कर सकते परन्तु उसे जीवित रखने में सहायक अवश्य हैं। अतः भद्दे, गन्दे, और बुरे वस्त्र पहिन कर अपने पति के प्रेम में बाधा न डालो और इस प्रकार प्रत्येक क्षण अपने पति बर बुरा प्रभाव न डालती रहो।

पं० हीरानन्द शर्म्मा प्रकाशक ने अमृत इलैक्ट्रिक प्रैस, रेलवे रोड, लाहौर में पं० ईश्वर दास भार्गव मुद्रक द्वारा छपवा कर प्रकाशित की।

अमृतधारा की सिल्वर जुबली

१० मार्च १९२६ से १६ मार्च १९२६ तक बड़े समारोह से मनाई गई थी

इस सिल्वर जुबली का अद्भुत वृत्तान्त जो सज्जन पूरा २ पढ़ना चाहें, एक कार्ड भेज कर बिना मूल्य मंगवा सकते हैं, संक्षिप्त तौर पर यहां भी लिख दिया जाता है।

१०मार्च १९२६ को प्रातः काल वेद पाठ तथा हवन हुआ और विद्यार्थियों आदि को खाना खिलाया गया। सायंकाल को प्रदर्शिनी और विद्युत चिकित्सा का उद्घाटन—

श्री राजा नरेन्द्रनाथ जी. एम. ए.एम .एल.सी. भूतपूर्व कमिश्नर पंजाब, तथा प्रधान हिन्दु महा सभा ने किया।

उस उत्सव में सहस्रों उपस्थिति थी। पहले पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्य ने प्रदर्शिनी के लाभ वर्णन किये और बतलाया, कि यह प्रदर्शिनी ७दिन तक खुली रहेगी। आपने कहा कि विद्युत चिकित्सा को भी जिसकी मशीनें विलायत से मैं लाया था आज से जारी कर दिया जायेगा। इसके **पश्चात् डाक्टर नन्दलाल जी.बी.ए.एल एल.डी.** बैरिस्टर ने एक संक्षिप्त भाषण में पंडित जी की वैद्यक योग्यता, उन की मानसिक उन्नति धार्मिक भिज्ञता, उनके आचार और दानशीलता का वर्णन किया और कहा कि उन्होंने कई दर्जन पुस्तकें लिखकर और पत्र जारी करके देश और चिकित्सा की भारी सेवा की है और आज वह हम सब के धन्यबाद के पात्र हैं।

इस के पश्चात् मौलवी **महबूब आलम सम्पादक "पैसा अखबार"** ने प्रदर्शिनी की चाबी राजा साहिब के अर्पण की। आपने चाबी लेते हुये एक युक्तियुक्त भाषण में बतलाया कि वह समय गया, जब कि प्रत्येक बिदेशी वस्तु अच्छी समझी जाती थी। हमको स्वदेशी बस्तुओं का सन्मान करना चाहिये। देशी चिकित्सा में बहुत गुण है। हां वर्तमान पदार्थ विद्या के अनुभवों को अपने भीतर स्थान देना चाहिये। वैद्यक चिकित्सा के साथ विद्युत

चिकित्सा की सहायता लेना भारतवर्ष में पहिला उदाहरण है। इस के लिये पंडित जी धन्यवाद के पात्र हैं। इस के पश्चात आपने प्रदर्शिनी और विद्युत चिकित्सा विभाग को खोल दिया और, सहस्त्रों पुरुषों ने देखना अरंभ किया।

यह प्रदर्शिनी बराबर सात दिन खुली रही, और सहस्त्रों की संख्या में जनता प्रतिदिन देखनेके लिये आती थी। अमृतधारा भवन बिजली के प्रकाश से खूब जगमगा रहा था। बिजली की अद्भुत पुतलियां और मशीनें जनता को अपनी ओर खेंचती रहती थीं। ४ बजे सायंकाल से १० बजे रात तक अमृतधारा भवन के सामने एक मेला लगा रहता था, बल्कि किसी समय तो रास्ता भी बंद हो जाता था। प्रत्येक मत और प्रत्येक व्यवसाय के स्त्री पुरुष बालक वृद्ध लाभ उठा रहे थे। हर एक ने सराहा और पंडित जी के काम की प्रशंसा की

११ मार्च को प्रातः अनाथों तथा दीनों को भोजन दिया गया और २ बजे से ४ बजे तक हकीमों और वैद्यों का सम्मेलन हुआ जिस में वैद्य सभा और अन्जुमने अतिब्बा के सेक्रेटरियों ने पं०जी के कार्य और उनकी वैद्यक सेवा की प्रशंसा की और यह निश्चय हुआ कि इस जुबली के उपलक्ष में वैद्यों और हकीमों की एक सम्मिलित समिति बनाई जावे जिस के प्रधान पं० जी और मंत्री कविराज हरनामदास बी० ए० नियत किये जावें। कान्फ्रेंस के पश्चात सब वैद्यों तथा हकीमों को एक पार्टी दी गई।

१२ मार्च को ५ बजे से ९ बजे सायंकाल तक जुबली का दिन मनाया गया। लोग चार बजे से एकत्रित होने आरम्भ हो गये थे। आठ दस सहस्र स्त्री पुरुष इस उत्सव में सम्मिलित हुए। लोगों का तांता लग रहा था। हर एक पहिले स्थान लेने के लिये उत्सुक था। इस के प्रधान—

जनाब मसीहउल मुल्क हकीम अजमलखां साहब शाही हकीम देहलवी थे। सब से प्रथम पं० जी ने अपने जीवन के मनोरंजक और शिक्षादायक वृत्तान्त सुनाए, जो कि सम्पूर्ण "जुबली वृत्तान्त में छापे गये हैं। इस के पश्चात्—

डाक्टर मियां सर मुहम्मद शफी साहिब एम० ए० के० सी० ऐस० आई० ऐल० ऐल० डी० भूतपूर्व सदस्य शिक्षा विभाग

(गवर्नमेंट इंडिया) ने पं० साहब को धन्यवाद दिया, और कहा कि अमृतधारा अपने गुणों के कारण कामयाब है, और मेरे यहां ऐसा कोई समय नहीं होता जबकि दो चार शीशियां मौजूद न रहती हों।

ख़ान बहादुर शेख़ सर अब्दुल क़ादिर साहब बैरिस्टर भूतपूर्व वज़ीर पंजाब ने फ़रमाया, कि पं० साहिब ने साबित कर दिया है, कि देशी औषधियां विदेशी औषधियों को मात भी कर सकती हैं। **महाशय कृष्ण बी. ए. सम्पादक "प्रताप"** ने कहा कि पं० जी की उन्नति उनके शुभ गुणों के कारण से है। **जहां कमाते हैं देते भी हैं। आपने अपने पुत्र के बिवाह पर एक बार ही ४० हज़ार रुपया दान कर दिया था।** उपदेशक विद्यालय को आजकल आप ४००) मासिक दे रहे हैं और कोई भी किसी शुभ कार्य के लिये उनके पास जावे, ख़ाली हाथ नहीं जाता।

डाक्टर गोकुलचन्द जी नारंग एम. ए. मेम्बर पंजाब कौंसिल ने कहा कि परमात्मा की दी हुई योग्यता के साथ धैर्य्य और संगठन शक्ति भी हो तब ही सिद्धि प्राप्त हो सकती है। यह सब बातें पं० जी में मौजूद हैं। आप उन लाभकारी प्राणियों में से हैं, जिनकी मेघ, नदी अथवा वृक्षों से उपमा दी जा सकती है। **मौलवी गुलाम मुहीउद्दीन साहिब** वकील क़सूरी ने आप के कार्य की प्रशंसा करते हुए फ़रमाया, कि इसके उपलक्ष में पं० साहिब को कोई ऐसा उपाय सोचना चाहिए, कि अनाथों को वैद्यक सहायता प्राप्त हो सके।

सरदार सरदूलसिंह कवीश्वर ने बयान किया, कि बिजयी सदा पराजित जातियों की विद्या तथा शिल्प का सम्मान नहीं करते। पं० साहिब धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्हों ने देशी चिकित्सा का सम्मान बढ़ा कर मुक़ाबिला किया।

लाला दुनीचन्द साहिब बैरिस्टर ने घोषणा की कि मौलवी गुलाम मुहीउद्दीनसाहिब की अपील से पं० **जी ने मुझे यह सूचना दने को कहा है, कि वह २० हजार रुपया**

दीनों तथा असहायों की वैद्यक सहायता के लिए जुदा करते हैं।

उत्सव के **प्रधान जनाब मसीहुल मुलक** साहब ने जनता को धन्यवाद दिया और कहा, कि वह पं० जी को १७, १८ वर्षों से जानते हैं। वह सचमुच परिश्रम धैर्य्य और सत्यता से कार्य्य करने वाले हैं। यदि ऐसे सब लोग मिलकर देश के लिये काम करें, तो स्वराज्य क्यों प्राप्त न हो। हिन्दू मुसलमान जैसे आज एकत्रित हुए हैं, उनको सदा मिलना चाहिए। हिन्दू मुसलिम झगड़ों से देश को बहुत हानि पहुंच रही है। उत्सव के पश्चात् तालियां और "अमृतधारा की जय" के शब्दों से पिंडाल गूंज रहा था *।

एक अद्वितीय विज्ञापन।

अमृतधारा के सहस्रों ऐसे विज्ञापन तैयार हो सकते हैं, जिन में शब्द भी अपनी ओर से न मिलाना पड़े और एक पूरा विज्ञापन बन जावे (क्योंकि ३६ हज़ार पुरुषों के प्रशंसा—पत्र मौजूद हैं)। नीचे हमने कुछ पत्रों के थोड़े २ शब्द छांट कर दरज कर दिये हैं। जिन महाशयों के ये शब्द हैं, उनके नाम कोष्टों में साथ २ छाप दिये हैं। आरम्भ से अन्त तक पढ़ जाइये आप को अमृतधारा का वर्णन मिल जायेगा, और हमारा इस में एक भी शब्द नहीं।

आप की आविष्कृत अमृतधारा की किसी जिह्वा से श्लाघा करूं। यह एक अद्वितीय औषधि है। इसने बड़े २ चमत्कार दिखलाये हैं,

---

* विस्तृत विवरण जो कि बड़े मनोरंजक हैं "रिपोर्ट सिल्वर जुबली" में देखिये जो कि मुफ्त मिल सकती है।

जो किसी दूसरी दवाई से असम्भव थे। (मियां शेर मुहम्मद चक नं० ४५ पत्तोकी) इसमें किंचित मात्र अत्युक्ति नहीं, कि अमृतधारा 'यथा नाम तथा गुण' है। निश्चित रूप में यह आबेहयात (अमृत) है, और जगत में कोई इस प्रकार की अद्भुत औषधि आज तक निर्माण नहीं हुई है। सचमुच भारतीय चिकित्सा पद्धति का एक चमत्कार है। भारतवासियों को इस बड़े आविष्कार का अभिमान करना चाहिए। (राजा नरेन्द्र चन्द्र बहादुर सी० एस० आई० आफ नादौन) मैं प्रसन्न हूं कि आपने इस दवाई को ईजाद करके जगत का बड़ा उपकार किया है (बा० त्रिबेनी सहाय डिप्टी कलैक्टर आगरा) और सब मनुष्यों को इस उत्तम आविष्कार से अपना ऋणी बना लिया है (पं० दीनदयालु शर्मा व्याख्यान वाचस्पति) सबको जनता के उपकारार्थ किए गए पुरुषार्थ के लिए आपका कृतज्ञ होना चाहिए (टिक्का बलदेवसिंह गुलेर रियासत) निश्चय ही अमृतधारा सब रोगों पर जादू का प्रभाव रखती है, और जितनी भी इसकी प्रशंसा की जावे थोड़ी है (कुंवर प्रद्युम्नसिंह बहादुर वज़ीर बीजा) अमृत-धारा में खुदा ने बड़ा प्रभाव दिया है। इस दवाई की कहां तक प्रशंसा करें (शेख़ महम्मद अयूब एण्ड सन्ज़ जनरल मर्चेण्ट सहारनपुर) क्योंकि यह जादू भरी दवाई है, और कई कठिन रोगों के रोगी अजीब तौर से इससे राज़ी हुए हैं। (मिस्टर टी ब्रैडशा लाल-बाग़ लखनऊ) वस्तुतः इसकी पूर्ण प्रशंसा हो ही नहीं सकती है। कोई दूसरी दवाई इसकी तुलना नहीं कर सकती, बल्कि पास ठहर नहीं सकती (मैडम ई० जानसन साहिबा चुनार) मैं नहीं कह सकता कि संसार में कोई और दवाई भी इतनी शीघ्र प्रभावशाली और निश्चय तौर पर लाभदायक हो सकती है (लाला मोहनलाल मतलब कलर्क आफ़ कोर्ट सिशन जज लाहौर) निःसन्देह यह बहुत उपयोगी दवाई है। (श्री स्वामी सत्यानन्द जी राजोपदेशक) यह एक सचाई है कि अमृतधारा अक्सीरे-आज़म है।(हकीम फ़ीरोज़दीन मुंशीफ़ाजिल लाहौर) सच कहता हूं, कि अमृतधारा में आबेहयात से कहीं बढ़कर गुण हैं। तीरव तलवारका वार खाली जा सकता है,मगर अमृतधारा का रोग पर वार ख़ाली नहीं जा सकता है। यह अपने गुणों के कारण सबजगतमें प्रसिद्ध होरही है। (बाबू पी.एन.जी मालिक नैशनल ग्लास वर्क्स नगीना)मैंने तो जो रोगी आया उसको अमृतधारा देदी,

और सब ही राज़ी होकर खुशी से हंसते हुए वापस हुए। (लाला राजाराम सब डिवीज़नल अफ़ीसर अकलेरा) रोग नया हो या पुराना कोई भी हो अमृतधारा दे दो, यह आराम दे देगी। (मिस्टर एन. आर आरिस्टन बदायूं) मेरा पहिले ख़याल था, कि एक दवाई इतने रोगों को कैसे उपयोगी हो सकती है, परन्तु जब से यह अमृतधारा इस्तेमाल करना शुरू किया है, मुझे इस बात का पूरा विश्वास होगया है (ला० नरायनदास इंजीनियर) अमृतधारा में बहुत से गुण हैं इसकी पूरी प्रशंसा करनी तो असम्भव है। इससे वैद्यों और डाक्टरों की आवश्यकता नहीं रहती। (शैख़ मुहम्मद जहूर-उल हक भद्रक) बहुत से औषधियों के बक्स खरीदने की आवश्यकता ही क्या है, जब कि अकेली अमृतधारा इतने रोगोंको दूर कर सकती है (राय दीवानचंद एम.ए. सेशन जज) बड़े परिवार वाले घर में सैकड़ों औषधियां रखने की बजाय अमृतधारा को मौजूद रखना काफ़ी है (मियांमुहम्मदअली रईस करंजा ज़िला अकोला) हर घर में चन्द शीशियां अमृतधारा ज़रूरी रखनी चाहियें। अगर कोई घर खाली रहे तो वह अभागा है। (मुहम्मद खुरशीद उद्दीन फ़ारुकी) अमृतधारा सचमुच अमृत की तरह गुणकारी है। इसकी जितनी तारीफ़ की जाये थोड़ी है। गत तीन वर्षों से मैं जंगल में हूं, और मेरी अकेली और सच्ची मददगार केवल अमृतधारा है। (राय बहादुर किशनसिंह झील टोला) इस दवा ने परदेश में भरोसा और आश्वासन देने में माता पिता का सा काम किया है। मैं इसकी दिलोजान से उन्नति चाहता हूं। राउ चरणदत्त अलमोड़ा) ऐसी प्रभावशाली और उत्तम औषधि की एक शीशी प्रत्येक मनुष्य को अपने पास रखनी चाहिये। मिस्टर जे. लूई साहब गवर्नमेंट रेलवे आफ़िस लाहौर) प्रत्येक अमीर ग़रीब के घर में इस दवाई को रखना चाहिये। अमीरों को चाहिए कि वह अधिक मंगवा कर ग़रीबों को मुफ्त बांटें। (सरदार देवेन्द्रसिंह रईस पट्टी) मेरे पास पूरे शब्द नहीं कि मैं हर एक मनुष्यको विश्वास दिला सकूं, कि अमृतधारा प्रत्येक स्त्री पुरुष को अपने पास रखना आवश्यक है। (लाला हरसुखराय मैनेजर पञ्जाब नैशनल बैंक लाहौर) अमृतधारा दोषों से बिलकुल ख़ाली है, और इस स अधिक प्रशंसा की असल तौर पर हक़दार है जो अब तक भिन्न

भिन्न प्रान्तोंके लोगों नेकी है। सचमुच अपने लाभ के ख्याल से यह आप आपनी मिसाल है। (हकीम नासरुद्दीन अहमदखां सुपुत्र शफाउल मुल्क देहली) अगर सब विज्ञापन देने वाले हकीम आप की अमृतधारा जैसी उपयोगी दवाइयों के विज्ञापन देने लग जावें तो लोगों का विश्वास विज्ञापनों में होजावे। (सरदार मुजीब उर्रहमान आनरेरी मजिस्ट्रेट मुजीब नगर) अमृतधारा यक़ीनी तौर पर अमृत सरोवर है, और इस के गुणों के ख्याल से इस का मूल्य २॥) कुछ भी नहीं है। (बाबू जगन्नाथ प्रसाद भानु कवि ई० ए० सी० विलास पुर) मेरा तो ख्याल है, कि अमृतधारा के प्रत्येक विन्दु का मूल्य इस की नमूना की शीशी के मूल्य ॥) से अधिक है। (मियां मुहम्मद यासीनखां मुन्सिफ़ सराय मनीली) ईश्वर से प्रार्थना है कि इस का प्रचार घर घर होजावे ताकि लोग कष्ट से बच सकें। प्रभु आप के कार्यालय को दिन दुगुनी रात चौगनी उन्नति दे और सदा आपका नाम चांद की तरह रौशन रहे। (ठाकुर वीरसिंह हाज़िर बाशी मुसाहिब महाराजा साहब बहादुर जम्मू) जो लोग अमृतधारा जैसी औषधि तैयार करने के दावे करते हैं वह असल में जनता को धोखा देना चाहते हैं मगर वह इस में कृतकार्य न हो सकेंगे। प्रत्येक पुरुष जानता है कि वह आपकी अपनी आविष्कार है, और किसी पुस्तक में इसका प्रयोग नहीं मिल सकता है। मैं अपना कर्तव्य समझता हूं कि आपकी औषधियों विशेष कर अमृतधारा को प्रसिद्ध करूं। मैं जनता के उपकार के लिए ही अपने मित्रों को यह विश्वास दिलाने का सदा यत्न करूंगा, कि अमृतधारा की नक़लें किसी काम की नहीं हैं, और इनको नक्क़ालों के फन्दे में न फंसना चाहिये। (पं० श्रीधर कौल बी. ए. श्रीनगर) मैंने सुपरिण्टेण्डेण्ट बहादुर की मेम को जब कि वह पेट दर्द से तड़प रही थी, और सिविल सर्जन इलाज कर चुका था, अमृतधारा दी, और पन्द्रह मिनट में बिलकुल आराम हुआ। मेम साहिब ने मुझे दस रुपया इनाम दिये और पूछा कि यह दवाई कहां से मिलती है? मैंने बताया कि लाहौर में जनाब पं० **ठाकुरदत्त शर्मा** वैद्य की यह दवाई है (अज़ीज़खां गनूज मुल्क वरार)

आगत पत्र ।

अब हम अमृतधारा की प्रशंसा में आये ३६ हज़ार पत्रों में से कुछ पत्र नीचे दरज करते हैं, और पाठकों से प्रार्थना करते हैं, कि वह अवश्य इनको पढ़ें, और ऐसे आविष्कार की दाद दें। अधिक प्रशंसा पत्र देखने हों, तो "अमृत" पुस्तक मुफ्त मंगवायें। इन प्रशंसा पत्रों से मालूम हो जायगा, कि अमृतधारा न केवल मनुष्यों के प्रायः सब रोगों का हुक्मी इलाज है, बल्कि पशु पक्षी आदि के रोगों को भी हितकर है। कठिन रोग जैसे प्लेग, इनफ्ल्युअञ्जा नमोनिया, क्षय, सांपका विष, विषमज्वर, विशूचिका, हिस्टीरिया, शूल, उपदंश, गंठिया, गौट और कई अज्ञात रोगों में भी अद्वितीय प्रमाणित हुई है। साधारण रोगों की तो क्या बात है अकस्मात् होने वाली घटनाओं तथा रोगों जैसे चोट से रक्त जाना, आग या गरम पानी या तेजाब आदि से किसी भाग का दग्ध हो जाना, सांप, बिच्छू, भिड़, मच्छर, बावला कुत्ता आदि का काट खाना, शिर पीड़ा, कर्ण पीड़ा, दरद गुरदा, आमाशय का दरद, दन्त पीड़ा, वमन, विशूचिका, अतिसार, मरोड़, पीनस, नज़ला, लू लगना, मूर्छा, किसी विषैली वस्तु का खाया जाना आदि, को अचानक ही खाने अथवा लगाने से दूर करती है। तीव्र कीटाणु नाशक है और छूतदार रोगों से बचने के लिये इसका आंतरिक वा बाह्यिक प्रयोग अत्यन्त सन्तोषजनक है। पुराने रोगों में भी यह जादू का प्रभाव रखती है। यात्रा में इससे बढ़ कर कोई सहायक नहीं है। इस का योग दोष रहित है, यदि किसी रोगी को किसी कारणवश लाभ न करेगी, तो हानि भी न पहुंचायेगी। इसकी इतनी प्रसिद्धि देखकर लोग नकलें भी करने लग गये हैं। पाठकों को सावधान रहना चाहिये। धनी, निर्धन राजे महाराजे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, ब्रह्मो, सिख, आर्य, देव समाजी, राधा स्वामी, देशी, विदेशी, सब इसकी प्रशंसा करते हैं, और सब की यह सम्मति है कि यह बहुत कष्ट, चिन्ता, और व्यय

से बचाती है । इस लिये इसको प्रत्येक मनुष्य को सदा पास रखना चाहिये । नीचे लिखे थोड़े से प्रशंसा पत्र अवश्य पढ़िये ।

मखौल उड़ाया करता था ।

ला० नारायणदास साहिब चड्ढा बी० ए० सी० आई० ई० लिखते हैं :—"लगभग दो वर्ष हुए होंगे कि मुझे पहले ही पहल आप की निर्मित अमृतधारा सेवन करने का अवसर मिला इस अरसा के बीच में "अमृतधारा" की शीशी हमेशा मेरे पास मौजूद रहती रही । मैं पहिले समाचार पत्रों में इश्तिहार औषधियों पर जो दुनिया भर के सर्व रोगों को दूर करने का दावा रखती है, मखौल उड़ाया करता था, परन्तु अमृतधारा का जो थोड़ा बहुत तजरुबा मैंने किया है, उस से यह प्रमाणित हुआ है कि एक ही दवाई एक से अधिक बिभिन्न रोगों पर हितकर हो सकती है। आप इसको खूब ज़ोर से प्रकाशित करें, ताकि लोगों को जितना अब लाभ पहुंचा है, उससे भी अधिक पहुंचे" ।

पाकिट केस व्यर्थ हैं ।

राय दीवान चन्द साहिब एम० ए० एल एल० बी० सेशन जज लिखते हैं:—आज कल पाकिट केसों के बाबत विज्ञापन निकल रहे हैं। मेरी राय में बहुत सी औषधियों और पाकिट केसों को खरीदना व्यर्थ है । अमृतधारा अकेली इस प्रकार की औषधि है जो कि बहुत से रोगों में अति शीघ्र लाभ देती है और जिसके सामने कोई और औषधि दम नहीं मार सकती । मेरी राय में यह औषधि वास्तव में अमूल है और इसके द्रव्य पूर्णतया हानि रहित हैं ।

रोग निदान की आवश्यकता नहीं ।

बाबू चन्द्रप्रकाश साहिब रियासत साहनपुर जिला बिजनौर से लिखते हैं:—"आज कल जहां कहीं गिल्टी या दर्द मालूम हुई प्लेग का भ्रम हो जाता है। अब तक ऐसे रोगियों पर

बरती, बड़ा फ़ायदा हुआ ।"अमृतधारा" में विशेष गुण है कि गर्दन के पास गिलटी हो, या रान के जोड़ में, बद्ध हो या चोट, या दूसरी कोई फुन्सी प्लेग की आकृत वाली हो, सब में विचित्र लाभ देती है। किसी अवस्था में निदान की बड़ी अवश्यकता नहीं हुई। ऐसा प्रभाव दुनिया की और किसी दवा विशेषतःइशितहारी दवा में आज तक नहीं देखागया। सत्य यह है, कि यह सब औषधियों की शाहन-शाह और यथा नाम तथा गुण है"।

रोग का पता न था।

मीर उसमान अलीहुसैन सज्जादा नशीन माजा नसरुल्लाबाद लिखते हैं:—"सचमुच अमृतधारा हर रोग का हुक्मी इलाज है। आधासीसी, दर्द सिर, आंख, गठिया, बद्ध खांसी, सब प्रकार के वाह्यिक व आन्तरिक रोगों पर मैंने आज़माया जादू का प्रभाव पाया। इसके अतिरिक्त मेरी नाक में मास बढ़ गया जिस से सांस रुक कर बड़ा कष्ट रहता था। रूई के फाया से लगाया ईश्वर की कृपा से बहुत सा मांस गल गया"।

आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

लाला राम लभाया साहिब ठेकेदार गुजरांवाला से लिखते हैं:—"जब से मुझ को अमृतधारा का पता मिला मैंने न कोई और औषधि सेवन की है न मुझे कोई हकीम या डाक्टर के बुलाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। जब कभी घर में कोई बीमार होता है अमृतधारा ही देता हूं। मेरी राय में कोई व्यक्ति भी अमृतधारा के बिना नहीं रहना चाहिये"।

हकीम बन गया हूं।

जनाब अमजद अली साहिब ज़िलादार गढ़ौर जिला मिर्जा पुर लिखते हैं:—मेरे पास अमृतधारा हमेशा मौजूद रहती है। चूंकि मेरा अधिकतर निवास ग्रामों में होता है इस लिये सैकड़ों रोगी मेरे पास बिच्छू के काटे हुए आये, जिनकी

आंखों से बराबर आंसू जारी थे, मगर जिस समय मैंने अमृतधारा लगाया, शीघ्र आराम हुआ और हंसते हुए वापस गये। इस के अतिरिक्त सिर दर्द के जो रोगी मेरे पास आये उनको बराबर आराम हुआ। मलेरिया बुखार के अक्सर रोगी मेरे पास आये, पानीमें डाल कर ३ बूंद अमृतधारा दिया, आराम होगया। जितनी प्रशंसा अमृतधारा की की जावे, वह थोड़ी है, कोई हकीम नहीं हूं मगर जब से आपके कारखाने से अमृतधारा मंगाई है, ग्रामों में लोगों ने मुझको हकीम मशहूर कर दिया है"।

कोई घर खाली न रहना चाहिये।

श्रीमान् अमृतलाल साहिब सुपरिन्टेन्डेण्ट पुलिस सिटी मजिस्ट्रेट व जज अदालत ख़फ़ीफ़ा राज्य उदयपुर मेवाड़ लिखते हैं कि:—मैं अपने दो साल के तजुर्बे के बाद पबलिक को इस बात का निश्चय दिलाता हूं कि "अमृतधारा" में वे सब लाभ निःसंदेह वर्तमान हैं जिनको कि देशोपकारक पंडित जी ने अपने विज्ञापन में प्रकाशित किया है। सचमुच कोई गृहस्थ और बाल बच्चों घर ऐसा नहीं होना चाहिये कि जिस में "अमृतधारा" हर समय मौजूद न रहे। समय पर यह सब प्रकार के रोगों से रक्षा करती है। यदि मैं अपने तजुर्बों को प्रकट करूं तो एक भारी ग्रन्थ होजाए। इसलिये इतना पर्य्याप्त है, कि हमको इस विश्वास के साथ एक शीशी "अमृतधारा" की अपने घर में मौजूद रखनी चाहिये, कि मानो एक चतुर वैद्य और डाक्टर घर में मौजूद है।

नक़ल नक़ल है और असल असल है।

सैयद गुलाम सफ़दर पुरी मुल्क उड़ीसा लिखते हैं:—

"निस्सन्देह आप की औषधि अमृतधारा ने वह प्रसिद्ध प्राप्त की है कि अन्य औषधियों को स्थान ही मिले। यद्यपि इसकी नक़लें की गई हैं परन्तु असल असल है और नक़ल नक़ल है।

अमृतधारा असली ने वह काम कर दिखाया है कि जहां नक़ली पूरी शीशी भी ख़तम होजाए फिर भी कुछ प्रभाव नहीं। अतः

आप से इस समय एक शीशी अमृतधारा रिआयती मूल्य पर मांगता हूं।

खेद है वैसी तैयार न हो सकी।

आजाद खां स्टोर कीपर मिलिटरी वर्क्स एबटाबाद से लिखते हैं:— "आप की भेजी हुई शीशी अमृतधारा अब ख़त्म होने पर है। कृपया एक शीशी और भेजें क्योंकि इस पर मैं आसक्त हूं और जब तक यह शीशी मेरे पाकिट में न हो चैन नहीं आता। अमृतधारा मैं स्वयं भी तैयार कर सकता हूं परन्तु जैसी अमृतधारा आप की है वैसी तैयार नहीं हो सकती। खुदा जाने आप कौन कौन से द्रव्य इस में डालते हैं"।

मुक़ाबिले को नहीं पहुंचता।

जगमोनलाल कायस्थ भगवन्तपुर जिला कानपुर से लिखते हैं:—"आप की अमृतधारा सचमुच सब से अधिक प्रभावशाली और अच्छी औषधि है। मैं आप का बड़ा कृतज्ञ हूं। सत अजवायन सत कपूर इत्यादि से जो एक प्रकार का अर्क बन जाता है वह आप की अमृतधारा के मुक़ाबले में नहीं पहुंचता"।

कुत्ता तोता इत्यादि

"अब हाल में जो अनुभव मुझे अमृतधारा से हुआ है उसका वर्णन करता हूं। एक कुत्ता जिसकी आंखें क़रीब २ ऐसी धुन्धली थीं कि अच्छी तरह से देख नहीं सकता था केवल शब्द से इधर उधर जाता था आंखों में अमृतधारा तीन चार बार लगाने से अच्छी हो गईं। आंखें पहिले देखने में श्वेत थीं। इसके पश्चात् श्वेतता दूर होने पर क़रीब क़रीब असली हालत पर आ गईं। यह कुत्ता अभी छोटा बच्चा है।

मेरे पास एक तोता छोटी क़िस्म का है।

उस के दायें पंख में एक प्रकार की खाज थी, उस के कारण से उसने अपने सारे बाल नोच दिये। 'अमृतधारा' लगाने

से बाल नोचना बन्द होगया। अब उसके पंख जम रहे हैं,। और अच्छी अवस्था में आ रहा है। आशा है कि किंचित् दिनों के लगाने से पूर्णतया अच्छा होजावेगा और पंखादि उग आवेंगे।

एक कुत्ते ने दो रोज़ कुछ न खाया था।

"बड़ी चिन्ता थी कि इसको क्या दिया जावे। निदान मन में आई कि 'अमृतधारा, देनी चाहिये अतः शक्कर में मिला कर ज़बरदस्ती उसके मुख में डाली गई एक घंटा पीछे थोड़े चावल और रोटी का टुकड़ा दिया तो थोड़ा सा खाया। दूसरी बार अमृत-धारा, देने से राजी हो गया। फिर अब तक बीमार नहीं हुआ। मेरी ६ शीशियां ६ मास में समाप्त हुई हैं। १२ शीशियों का आर्डर अब दिया है। काश कि 'अमृतधारा' का मूल्य अल्प होता जिससे दिल खोल कर पशुओं की सहायता की जाती। आशा है इस लेख को देशोपकारक में सर्व साधारण के लाभार्थ प्रकाशित कर देंगे"।

लेखक—राधाकिशन सिंह इन्स्पेक्टर कन्टोन्मेन्ट सरवे सेकशन नं० २ सरवे आफ़ इण्डिया मकान नं० ५ रसूलपुर छावनी

अन्य प्रदेशों में

श्रीमान् महाशय शिवव्रत लाल साहिब एम० ए० सम्पादक "साधू, मार्त्तण्डादि" लिखते हैं:—

श्री मान् पंडित जी! आपका पत्र मिला अमृतधारा के विषय में मेरी सम्मति चाहते हैं। मैं तो यों ही उसको प्रभावशाली मानता हूं, इस कारण से नहीं कि आपके पास १५ सहस्र प्रशंसापत्र वर्त्तमान हैं, वरन् इस कारण से कि मैंने तजरुबे से इसको बहुत गुणकारी पाया है। मैं इसकी शीशी सदैव चीन, जापान, अमेरिका आदिकी यात्रा में साथ रखता था, और जहां कहीं सम्भव हुआ, मित्रों और मिलने वालों को इसके मंगाने की सम्मति दी। जापान और सानफ्रांसिस्को में मैंने अपने मैनेजर कन्हैया लाल साहिब से अमृतधारा की शीशियां मंगाकर लोगों में बांटीं। मेरे विचार में जहां वैद्य और डाक्टर न हो वहां अमृतधारा को पास रखना अत्यन्त हितकर है। इससे अधिक मैं और क्या सम्मति दूं"।

विशेष सूचना

अमृतधारा शब्द हमारा है। कोई दुकानदार अगर धोके से इस नाम से कोई और दवाई देते हों, तो कृपा करके इस की सूचना हमको दिया करें। अमृतधारा कार्य्यालय लाखों रुपया के विशाल भवन में स्थापित है। इसके लिए विशेष डाकखाना अमृतधारा डाकखाना के नाम से खुला हुआ है। साथ ही की सड़क का नाम अमृतधारा सड़क है। अमृतधारा भवन के एक भाग का प्रवेश संस्कार सर प्रतूलचन्द्र चैटरजी चीफजज हाईकोर्ट पंजाब ने और दूसरे भाग का एफ. डबल्यू. कन्वे साहिब डिप्टी कमिश्नर लाहौर ने किया था। लाहौर में आने वाले महाशय मैनेजर की आज्ञा से कार्य्यालय को देख सकते हैं।

मैनेजर

अमृतधारा के पांच मिश्रण

सुविधा के वास्ते निम्न लिखित पांच औषधियां अमृतधारा से तैयार करके रक्खी जाती हैं।

(१) अमृतधारा साबुन।

इस साबुन में जो गुण हैं, वह किसी और में नहीं। यह साबुन चर्मज रोग दाद, चम्बल, फोड़ा फुन्सी, खाज, पित्ती, कील, छाइयां आदि को दूर करता है, त्वचा को कोमल व सुन्दर बनाता है, और डिसइन्फैक्टैण्ट भी है, रोगियों को देखने के पश्चात् इससे हाथ साफ़ करने से रोग कीटाणु नष्ट होते हैं, और रोग का भय नहीं होता जनता ने इसे बहुत पसन्द किया है। मूल्य प्रति बक्स ३ टिकियां ॥।=) प्रति टिकिया ।-)

(२) अमृतधारा मरहम।

बहुत से पुराने चर्मज रोगों के दूर करने वाली औषधियों को अपनी प्रसिद्ध अमृतधारा के साथ मिलाने से तैयार की गई है।

अमृतधारा मरहम में कोई पाशविक चर्बी शामिल नहीं है। समस्त चर्म रोगों की अद्वितीय औषधि है। सब प्रकार के घाव, चोट रगड़, फुन्सी, दद्रु, चम्बल, एगजीमा, खाज, छपाकी, छाले, हाथ पांव का फटना, उपदंश के घाव, अर्श मस्से, मच्छर भिड़ आदि के डंक, आग उष्ण जल व तेज़ाब आदि से जलना सब इससे दूर हो जाते हैं। बड़े से बड़े घाव इतनी जल्दी भरने शुरू हो जाते हैं, कि बड़े बड़े डाक्टर चकित रहते हैं। मूल्य १) प्रति डिबिया ।

(३) अमृतधारा बाम ।

इसमें अमृतधारा के साथ ऐसी २ चीज़ें मिलाई गई हैं जो कि चर्म को कोमल करने और बादी बलग़म को दूर करने में उत्तम हैं। इसकी ऐसी शकल है जैसी कि वैसलीन की होती है। बादी बलग़म की पीड़ाओं जैसे गंठिया इत्यादि के लिए अनुपम औषधि है। चर्म फटने के लिए गुणकारी है। शरीर में किसी स्थान पर पेशियों या नाड़ियों की पीड़ा हो उसको मलें। पौडर की भांति भी सेवन कर सकते हैं। मूल्य प्रति शीशी १)

(४) अमृतधारा लोज़ेंजिज़

(अमृतधारा की मीठी टिकियां)

विलायत से पेपरमेण्टादि की मिष्ट टिकियां विक्रयार्थ भारतवर्ष में आती हैं। हमने अमृतधारा की टिकियां तैयार की हैं। इन के चूसने से अमृतधारा का कुछ लाभ होने के साथ २ दन्त रोग, कफज रोग, कण्ठ खाज, गले पड़ना, कासादि को लाभ होता है। बालकों को विदेशी टिकियां और गोलियां आदि खाने के बदले इन को अपने पास रखना चाहिए। मूल्य १०० टिकियां ।) चार आने ।

(५) अमृतधारा लोशन

मुख और गले के सम्पूर्ण नए पुराने रोगों के लिये यह लोशन संसार भर में अनुपम है । रोग कृमि नाशक गरारे करने के लिये, हैजा प्लेग एन्फ्लूएंजा मलेरिया आदि महामारियों के दिनों में अमूल्य वस्तु है मूल्य १)

अमृतधारा औषधालय की कुछ विचित्र औषधियां— जिन्हों ने संसार को आश्चर्य में डाल दिया है ।

मीठा फल——यह विचित्र फल संसार को अचम्भे में डालने वाली औषधि है । जब गर्भ होजावे तो दो मास के पश्चात् तीसरे मास ३गोली दूध से खिलाई जाती हैं । पुत्र ही उत्पन्न होता है । मूल्य १०) लड़का न हो तो मूल्य वापिस करने की शर्त है ।

फूलो फलो—यह सूखिया मसान की विचित्र औषधि है, इसको केवल कटि पर मला जाता है, और वहां से महीन २ कृमि निकलते हैं, वही रोग का कारण होते हैं । मूल्य १)

तृतीयक ज्वर तन्त्र—इस औषधि को ज्वर चढ़ने से पहले उंगली पर बांध देने से ज्वर नहीं चढ़ता । मूल्य ॥)

दरद शिकन—इसकी एक पुड़िया के सेवन से चाहे किसी प्रकार की मांस व पट्ठों की पीड़ा हो, जाती रहती है । शिर पीड़ा, जोड़ों की पीड़ा, कटि पीड़ा, गुल्फ, रान या किसी जगह की पीड़ा हो, १५ मिनट में आराम । पुरानी पीड़ा हो तो कुछ दिन सेवन करनी चाहिये । मूल्य १) नमूना ।)

बला दूर (अफीम निवारक)—इन गोलियों को खाने से अफीम छूट जाती है । सैंकड़ों मनुष्य इससे अफीम छोड़ चुके हैं । मूल्य ६० गोली १॥)

सिपचाच—यह विचित्र नाम एक अकसीर दवाई का है जो कि बड़े कठिन रोगों में रसायन का काम करती है । शरीर में नाड़ी व्रण इत्यादि हो बन्द न होता हो लगाने की औषधि रोगन मसीहा इत्यादि के साथ इसको खाने को दिया जाता है । शीघ्र लाभ होता है गरमी (आतशक) का माद्दा जब शरीर से निकलता न हो तो ईश्वर कृपा से लाभ होता है । आतिशक को भी गुणकारी है । कुष्ट को लाभदायक है कफज कास और श्वास को दूर करती है बुढ़ापे के गिरे हुए शरीर को उठाती है । वृष्य भी है । जिनको प्रतिश्याय आदि का कष्ट रहता हो या जो बात रोगों से पीड़ित हैं उनके लिये नियामत है । मूल्य ६० गोली २) आधी ३० गोली १)

रोगन मसीहा—नाड़ी व्रण (नासूर तथा भगन्दर को दूर

करता है। इसके लगाने से प्रथम सब पीब निकल कर भीतर से व्रण भरना आरम्भ होता है। मूल्य १ औंस ३), ४ ड्राम १॥) नमूना १ ड्राम।-)

ज्वरार्क—मलेरिया' जूड़ी या मौसमी ज्वर किसी प्रकार का हो तीन दिन के भीतर २ जाता रहता है। मूल्य ॥) शीशी।

ज्वर नाशक—ज्वर नामकी शत्रु है। प्रायः हकीम इसको अपने पास रखते हैं और इसके बल पर प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं। वृद्ध बालक युवा, स्त्री पुरुष किसी प्रकार के ज्वर यहां तक कि प्लेग तक के ज्वर ग्रस्त हो आधी सारी या चौथाई गोली आयु अनुसार दोष तथा प्रकृति को देख कर देदो। दो चार दिन में अच्छा हो जायगा। रियासत जम्मू के एक शाही हकीम ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है और योग निर्माण करनेवाले को सैकड़ों आशीषें दी हैं। मूल्य २६ गोली १) ८ गोली ॥)

अक्सीर बदन—गले व छाती के रोग, कास, श्वास, गले पड़ना आदि के लिए हितकर है। जीर्णज्वर, राजयक्ष्मा की खांसी में, पीप या रक्त जाने को पूर्ण गुण करती है। मूल्य फी शीशी १॥)

अमृत गोलियां—कफज कास श्वास, पेट दर्द, शीत ज्वर, नेत्र पीड़ा, नेत्र रोग, सब प्रकार का बिष, ज्वर, सन्निपात, दन्तरोग, कोष्टवद्धता, सर्पदंश, बिच्छूंदंश, भिड़ का डंक, उदर कृमि, मूत्रबद्ध, आमाशय की निर्बलता, संग्रहणी, मूत्रकृच्छ्र, सन्धिवात, उपदंश, मुख गन्ध, शिर पीड़ा, कामला, जलोदर, धातुक्षीणता, मृगी, नासूर, अतिसार, मरोड़, कर्णपीड़ा, दन्तपीड़ा, आर्तवबद्धता, गुदभ्रंश, शीत दोष, नाभिपीड़ा, अश्मरी, क्लीव, प्रतिश्याय, मूत्रातिसार, बालकों का डब्बा रोग, इत्यादि २० रोग दूर होते हैं। मूल्य ६० गोली १) नमूना =)

ज्वरारि अभ्रक—यह गोलियां बिषम ज्वर के वास्ते अनुपम व अद्वितीय है। पुराना ज्वर चढ़ता उतरता हो, प्रायः पहले दिन छोड़ देता है। मूल्य १६ गोली १) ८ गोली ॥)

गन्धार रस—प्रायः एक ही मात्रा से अतिसार मरोड़ादि को आराम आता है। विशूचिका के वमन विरेचन को भी आराम होता

है। अतिसार व मरोड़ के वास्ते ऐसी हितकर अन्य औषधि न होगी। मूल्य १) रुपया नमूना =)

दत्त नस्वार—इससे शिर वेदना, आधा शीशी, दाढ़ दर्द, कर्णपीड़ा, नेत्रपीड़ा, प्रतिश्याय, दूर होते हैं। मृगी सन्निपात को हितकर है। मूल्य १) तोला' नमूना।)

सूर्य्य घृत—इसको शरीर पर मलने से सब प्रकार की खाज तर व खुश्क दूर होती है। फोड़ा फुन्सी जिनको कई प्रकार के निकलते रहते हैं, उनके शरीर भी सर्वथा स्वच्छ होजाते हैं। मूल्य २ औंस १), नमूना ४ ड्राम।)

ऐराटी मेद—मोटापे की औषधि है। इस औषधि से प्रति मास ४-५ सेर और कभी १० सेर तक भार कम हो सकता है। मूल्य फी शीशी खुराक १ मास ४), मात्रा १५ दिन २)

प्राणदाता—यों तो अमृतधारा भी विशूचिका के वास्ते अमृत है तथापि ऐसे भयंकर रोग में सहायतार्थ अन्य औषधियां भी हमेशा तैयार रखनी चाहिएं। यह हमारी अनुभूत औषधि है, और ५ घन्टे के भीतर ही इससे प्रायः अराम आ जाता है। मूल्य १५ गोली १)

बाग़ फूल तैल—बालों के तैल जो आज कल तैयार होने लगे हैं समझदार सेवन करने वाले जानते हैं कि इनमें आम अङ्गरेज़ी सफ़ेद तैल (साफ क्रिया मिट्टी का तैल) में केवल रंग और सुगन्ध देकर बनाये जाते हैं। रंग और सुगन्धि में आपने बहुत तैल देखे होंगे मगर बाग़ फूल तैल बालों के लिये बहुत गुणकारी है। उनको नरम व कोमल करता है स्याही को स्थिर रखता है, नज़ला जुकाम इत्यादि की अधिकता को रोकता है। सुगन्धि इसकी भीनी २ मनोरंजक और देर तक रहने वाली है। संक्षिप्त में इसके भीतर वह सारे गुण वर्तमान हैं जो एक लाभदायक उत्तम तैल के भीतर होने चाहिएं। मूल्य प्रति शीशी १)

अखण्ड—यह सुरमा दैनिक सेवन के वास्ते है। नेत्रों को

प्राय: रोगों से सुरक्षित रखता है, दृष्टि स्थिर रखता है, और शीतलता प्रदान करता है। मूल्य १ तोला ॥)

अखरौशन—नेत्र रोग तथा पानी जाना, धुन्ध, नया फोला, जाला, कुक्करे, पड़वाल आदि को दूर करता है। मूल्य १ तोला ॥।) नमूना -)॥

फोला क्योरा—यह सुरमा फोला के वास्ते विशेष रूप से हितकर है। धुन्ध, जाला, कुक्करे आदि को भी बहुत शीघ्र दूर करता है। मूल्य ८) तोला, ६ माशा ४) नमूना १)

पड़वाला क्योरा—पड़वालों के लिए विशेष रूप से हितकर है। पड़वालों को उखाड़ २ कर लगाया जाता है, तो फिर नहीं उगते। मूल्य ४) तोला, ६ माशा ४), नमूना ३ माशा १)

मंजन नं० १—दंत रोग यथा रक्तस्राव, पानी लगना दंत पीड़ा, मुख दुर्गन्ध को हितकर है। दांतों को स्वच्छ करता है। मू० ।), नमूना -)

मंजन नं० २—विशेष कर दांतों की सफ़ाई के लिए बनाया गया है। इसके मलते रहने से दांत मोतियों के समान चमकने लगते हैं। जिनके टारटर (मल) जम गया हो, वह उसे उतार कर मलते रहें तो फिर न जमेगा। मू० ।) नमूना -)

मंजन नं० ३ (कारबोलिक मंजन)—यह मंजन अङ्गरेज़ी प्रकार का है। रंग गुलाबी, कारबोलिक टूथ पौडर है, दन्त कृमि नाशक है, दांतों को स्वच्छ करता है। जो विलायती मंजन को पसंद करते हैं, वह इसको सेवन करें। मू० ।) नमूना -)

मंजन नं० ४ हिलते हुए दांतों के लिये विशेष रूप से, और जबकि मसूढ़े पृथक हो रहे हों, गुणकारी है मू० ॥) नमूना =)

मुखरक्षक—मुख के छालों के वास्ते हितकारी है चाहे बालकों के हों, वा बड़ों को। मू० ॥), नमूना ।)

दवाई दाद—इसको चन्द दिन लगाने से दद्रु चाहे जहां हो अच्छा हो जाता है। चम्बल को भी गुणकारी है। बहुत कोमल स्थान पर जब कि खुजलाया हुआ हो थोड़ी देर लगती है और दूसरी जगह नहीं लगती। लगा कर कोई काम बन्द नहीं करना पड़ता। मू० ४ ड्राम १), नमूना १ ड्राम ।)

हरदिल अजीज़—जिन लोगों के मुख में दुर्गन्धि आती है यद्यपि उन्हें ज्ञात न हो परन्तु कोई व्यक्ति उनके पास बैठ कर बात करना नहीं चाहता। इन गोलियों को मुख में रख कर चूसते रहने से मुख की दुर्गन्धि दूर होकर सुगन्धि पैदा होती है। और दांत दृढ़ होते हैं। मू० ६० गोली १) नमूना =)

मसालह पान—हमने देखा है कि बाज़ारी पान विक्रेता प्रायः मलीन बर्तन आदि में सामग्री रखते हैं, इस लिए यह मसालह नाया गया है, एक पान पर चुटकी रख दीजिए पान तय्यार है, वैसा ही रंग देगा, इसके अतिरिक्त मुख दुर्गन्धि को दूर करेगा, स्तम्भन करेगा, दांतों को दृढ़ करेगा, कफादिको शुष्क करेगा मू०१) नमूना=)

गोली पान—वह लोग जो पान के वड़े २ पत्र मुख में डालने के विना पान का आनन्द लेना चाहते हैं, वह मंगवावें। शेष गुण "मसालह पान,, के से हैं। मू० ६० गोली १), नमूना =)

गला क्योरा—यह गोलियां कंठ व छाती के रोगों के लिए रसायन हैं। जिनको शीघ्र २ स्वर भेद हो जाता है, उनके वास्ते गुणकारी है। धांस, कण्ठ खाज, मुख में छाले, लाल जिह्वा इत्यादि को लाभदायक है। मुख में रख कर २-३ गोली प्रति दिन चूसना चाहिए। मू० १६ गोली ||)

बाल उड़ाने की अनुपम औषधि—इस को पानी में घोल कर लगाने से एक मिनट के भीतर कठोर और कोमल से कोमल स्थान के बाल जड़ से दूर होते हैं। जिस २ ने मंगाया प्रशंसा की है। मू० फी डिबिया |=), नमूना -)||

रसबेला (बाल उड़ाने की दवाई) इस औषधि के लगाने से जिस स्थान के बाल चाहो पैदा कर सकते हो। मू० १)

काका तैल (दवाई बाल झड़)—बाल झड़ने बन्द हो जाते हैं। मू० २ औंस २) नमूना |)

मुख रोब (मूछ बढ़ाने का तैल) यह तैल न केवल मूंछों को वरंच प्रत्येक स्थान के बालों को बढ़ाता है और उनको स्याह रखता है, अहा! रोबदार मूंछों वाला चेहरा कैसा भला मालूम होता है। मूल्य फ़ी शीशी ३ औंस २), नमूना |=)

चित्त मोहनी—इस उबटन को स्नान समय मलने से चेहरे के बुरे दाग़, कील, छाइयां आदि दूर होकर चेहरा साफ़ होता है। झुर्रियां नहीं पड़तीं, चेहरे का रंग दिन प्रतिदिन निखरता जाता है। सूरत मन मोहनी हो जाती है। मू० १) नमूना ≈)

दिल सुन्दरी—यह स्नान के पश्चात् सेवन किया जाता है। एक प्रकार का तैल है, जो चेहरे को चमकाता हैं और दाग कीलादि को दूर करती हैं। यदि स्नान से पहले चित्त मोहनी और स्नान के पश्चात् दिल सुन्दरी का सेवन हो तो बस कहना ही क्या है। मूल्य फी शीशी ॥≈), नमूना।)

प्राणसुख—स्तनों को ढलकने से बचाता है, और ढलके हुए को प्रकृति अवस्था पर लाता, और कठोर व उन्नति करता है। भद्दे स्तन स्त्री के लिए दुखदाई हो जाते हैं। मूल्य ४), नमूना १)

पुरुषों के विशेष रोगों सम्बन्धी कुछ औषधियां।

पूर्ण सूची तथा 'नपुंसकत्व' नाम की पुस्तक मुफ्त मंगाने पर मिलेगी।

इन औषधियों की प्रशंसा में सहस्रों प्रशंसापत्र मौजूद हैं

अकसीर नं० १ महत बाजीकरण औषधि—बहुत सी वीर्यवर्द्धक, उत्तेजक औषधियों का संग्रह है। नपुंसकता की सम्पूर्ण अवस्थाओं में हितकर है। यह पुरुषों के गुप्त रोगों के वास्ते जेनरल औषधि है। शुक्रमेह, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष को बहुत लाभदायक है। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नं० २ लक्ष्मीविलास रस—वैद्यक में लिखा है कि यह रस नारद जी ने श्रीकृष्ण जी महराज को बताया था। दूध के साथ नित्य खावे तो बूढ़ा भी युवा के तुल्य होवे। कामदेव के समान हो जावे, सन्निपात, प्रमेह, भगन्दर, कण्ठशोथ, संग्रहणी, मरोड़, खांसी, जुकाम, बवासीर, सन्धिवात, कटिपीड़ा, नेत्रपीड़ा, दृष्टिमांद्य, घ्राण दुर्गन्ध, गलगण्ड, शिरपीड़ा, प्रदरादि को हितकर

है। यह ज्वर अन्य रोग के पश्चात् जो निर्बलता, नपुंसकता, प्रमेहादि होता है। उसको विशेष रूप से हितकर है शुक्रमेह' स्वप्नदोष, शीघ्रपतन को लभदायक है। मूल्य ६४ गोली ४)

अकसीर नं० ११—हृदय, मस्तिष्क, यकृति, आमाशय, मूत्राशय को पुष्टिदायक है, आनन्दवर्द्धक है, सुस्ती, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष को हितकर है। याकूती का काम भी देती है, अमीरों के खाने के योग्य प्रत्येक प्रकृति के अनुकूल इसका प्रधानांग स्वर्ण है। मूल्य ६४ गोली १०), १६ गोली २॥), नमूना ४ गोली ॥=)

अकसीर नं० १२—विशेषतया शीघ्रपतन के रोगियों के वास्ते है। तीसरे पहर एक दो गोली दूध से खाने से पूरा प्रभाव होता है। नित्य सायं प्रातः एक गोली खाने से शीघ्रपतन का मूलवच्छेद होता है। इसके खाने वाले को खांसी, नजला, जुकाम, कटि पीड़ा, वातज, कफज आदि रोग नहीं सताते। मूल्य ६० गोली ३), २० गोली१), नमूना ५ गोली ।)

अकसीर नं० १४—प्रमेह, शीघ्रपतन, तथा स्वप्नदोष नाशक है। कुसमय की अधिक रतूबत बन्द होती है मात्रा १ माशा सायं प्रातः दूध के साथ दें। मूल्य ३० तोला का ३), १५ तोले का १॥)है॥

अकसीर नं० २० (मन्मथ रस)—वृद्ध को युवा और युवा को मल्ल बनाने के वास्ते यह योग शिव जी महाराजा का निर्मित है। उत्तमता यह है कि तीव्र नहीं है। चिरस्थाई लाभ धीरे २ करता है। सदैव खाने में कोई हानि नहीं है। शिथिलता शीघ्रपतन, स्वप्नदोष, शुक्रमेह, को दूर करता है। खांसी नज़ला, जुकाम, श्वास, पाण्डु, कामला, अपाचन को हितकर है। रक्त उत्पन्न करता है। पौष्टिक उत्तेजक व स्तम्भक है। मूल्य ६४ गोली ४, ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नं० २४ सुखकारक—शीघ्रपतन रोगी का जब तक रोग दूर न हो तब तक कभी २ तीसरे प्रहर दूध के साथ खावें। पश्चात् कोई खट्टी लवणयुक्त वस्तु न खावें। चौगुना असर होता है। मूल्य ३२ गोली २), नमूना ४ गोली ।)

अकसीर नं० २७—........पश्चात् एक दो गोलियां खा

लीजिए उदासी दूर, सुस्ती चकनाचूर, बल ज्यो का त्यों । नित्य दूध के साथ सायम् प्रातः खावें तो शीघ्रपतन को हितकर है। मूल्य ६० गोली १), नमूना ≈)

अकसीर नं० २७ (ख)—जिसमें कस्तूरी डाली है। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २)

अकसीर नं० ३१ (धातुवर्धक)—इससे वीर्य बहुत बढ़ता है, और पुष्ट होता है, शुक्रमेह, स्वप्नदोष, शीघ्रपतन को भी हितकर है। मूल्य २) पाव, नमूना ५ तोला ॥)

अकसीर नं० ३१ चन्द्रप्रभा वटी—यह वैद्यक योग विबिधि नामों से बड़े २ वैद्य बेच रहे हैं, २० प्रकार के प्रमेह, पथरी, अफारा, शूल, मन्दाग्नि, अण्डवृद्ध, पाण्डु, कामला, बवासीर, भगन्दर, नासूर कटिपीड़ा, कास, श्वास, हिक्का, डकार, नज़लादि को हितकर है। वीर्य को शुद्ध करके सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनाती है। मू० ३२ गोली १), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नं० ३३ अयुर्वेदिक टानिक—स्त्री पुरुष के रज वीर्य को शुद्ध करके सन्तानोत्पत्ति के योग्य बनाती है। यह गोलियां पौष्टिक, बल वर्द्धक, सन्धिवात नाशक, हैं और कटिपीड़ा गुल्फपीड़ा, पार्श्वशूल, रींघनवायादि सर्व वातज कफज रोग मिटाती हैं। मूल्य ६४ गोली ४), ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नँ० ३४ (क)—धातुस्राव के वास्ते यह अद्वितीय औषधि है। स्वप्नदोष, शीघ्रपतन को भी शीघ्र दूर करती हैं। मूल्य ३२ गोली २), नमूना ८ गोली ॥)

अकसीर नँ. ३९—शुक्रमेह शीघ्रपतन व स्राव को दूर करती है शारीरिक बल को अधिक करती है मस्तिष्क को लाभ पहुंचाती है। लेसदार औषधि होने पर भी क़ाबिज़ नहीं है। इस के खाने से प्रकृति स्तम्भन बढ़ता है। मूल्य प्रति पाव २), आधा पाव १), नमूना १ छटांक ॥)

तिला नं. १—कुछ सुगन्धी युक्त है। बूढ़ों को विशेष रूप से लाभकारी है, जो शौकिया बल बढ़ाना चाहें यह तिला हितकर है मूल्य ४ ड्राम ५), नमूना १ ड्राम १।)

तिला नं. ३—अपना आप गंवाने वालों को विशेष रूप से हितकर है साधारण अवस्था में बहुत गुण करता है। मूल्य १) रुपया नमूना ।)

तिला नं. ४—यह बड़ा भारी प्रचण्ड है चरम का एक परत उतार देता है, परन्तु नसों पट्ठों को बहुत शीघ्र ठीक करता है। ध्वजभंग, नपुंसकता दूर करके पूरा बल प्रदान करता है। मूल्य ३), नमूना ॥।)

तिला नं. ६ (स्थूली करण)—स्थूलता के लिए है। मू० ४), आधी शीशी २) इससे कम नहीं भेजा जाता।

स्त्रियों व बालकों की कुछ औषधियां

अबलाराम—हर प्रकार का प्रदर लाल, पीला, श्वेत इससे दूर होता है। कटिपीड़ा, सोम रोग आदि को भी हितकर है, मू० ३२ गोली २), नमूना ।)

पताली—मासिक का कम होना, वा न आना, वेदना सहित आना और तत्सम्बन्धी सर्व रोगों को दूर कर के गर्भाशय को गर्भ धारण योग्य बनाती है और बल प्रदान करती है। मू० २), नमूना ॥)

सोमावती—स्त्रियों को जो श्वेत पानी जाता है, चाहे किसी प्रकार का और किसी दर्जा का हो, इससे आराम आ जाता है। मू० २४ मात्रा २), नमूना ८ मात्रा ॥।)

गर्भ चिन्तामणि रस—गर्भिणी के सर्व रोग, ज्वर, कास, अजीर्ण, शोथ, जी मचलाना, वमन, अतिसार, उदरशूल, शीतादि को लाभ करता है। गर्भिणी की कोई भी व्याधि हो इससे लाभ होता है। मू० ३२ गोली २), नमूना ४ गोली ।)

रक्त स्तम्भक—जब रक्त ऋतुकाल के अतिरिक्त जारी हो तो तीन के सेवन से बन्द होगा। मात्रा, ६ दिन की २), ३दिनकी ॥।)

गोदभरी—जब कि पुरुष का वीर्य ठीक हो यह गोली स्त्री को खिलाई जाती है। प्रथम तो प्रथम ही मास, अन्यथा चौथे मास के भीतर ईश्वर की कृपा से गर्भ स्थित होजाता है। मू० ५)

अबला सुख—यह औषधि स्त्रियों के अनेक रोगों को गुणकारी है, जो स्त्रियां निर्बल हो, दिनों दिन रोगी रहें, यह दवाई गुण करती है। मू० ४० गोली ३), नमूना १० गोली ॥।),

---

अबलानन्द—इस के भी उपर्युक्त गुण हैं और पित्त प्रकृति वाली स्त्रियों के लिये है। मूल्य ४० खुराक ३), नमूना ।।।)

मन रजन (हिस्ट्रिया की दवाई)—स्त्रियों के इस रोग की अनुभूत औषधि है। मूल्य ६४गोली ४), नमूना १६ गोली १)

ब्रह्मपुत्र रस (अठरा की औषधि)—अठरा से जो सन्तान छोटी अवस्था में मर जाती है। उसकी दवाई मू० ७०७गोली१०

सुखजनाई—इस औषधि को केवल कटि पर बांधने से बालक सुगमता से उत्पन्न होता है। मूल्य १)

गर्भ प्रतिबन्धक—जब कभी गर्भावस्था में स्त्री के प्राणों का भय हो, तो ऐसे यत्न की आवश्यकता पड़ती है कि ठहरे। मूल्य २)

बाल सुख—यह बालकों के वास्ते टानिक औषधि है। मन्दाग्नि कोष्ठबद्धता, हरे पीले दस्तों का आना, ज्वर, तृषा, कृषता, बालक का सूखते जाना और सदैव रूग्ण रहना, पित्ताधिकता सब दूर होते हैं। मूल्य ६४ गोली १), नमूना ८ गोली =)

काकड़सत—बालकों को प्रायः होने वाले रोग तथा अजीर्ण अतिसार, ज्वर खांसी आदि को हितकर है। प्रत्येक बालकों वाले गृह में होना चाहिए। मूल्य ।।), नमूना =)

दूधजा—दूध सुखाने की दवाई। मू० २) नमूना ।।)

दूधला—दूध बढ़ाने की दवाई। मू० ७ तोला १)

मान—विषय वासना को दूर करने वाली है। मूल्य २)

पसलीनी—बालकों के डब्बा अर्थात् पसली रोग के वास्ते यह औषधि अति गुणकारी है। मू० ३२ गोली ४), नमूना १)

सरसोब—इस औषधि को गले में बांधा जाता है। बच्चों के दांत आसानी से निकलते हैं। मू० १)

मुश्कबेद—मृगी रोग प्रायः बालकों को हो जाता है। बड़ा दुष्ट रोग है। ईश्वर इस से रक्षा करे। इस औषधि से प्रायः १४ दिन में आराम आता है। मू० १४ गोली २)

बाल- विरेचन—बालकों को सहल और सुगमता से दस्त होता है। मूल्य ६४ गोली १), नमूना ८ गोली =)

काली दूर—यह औषधि काली खांसी के लिये परीक्षित है। मू० १६ गोली ॥)

भयानक रोग आतशक व सोज़ाक

उसके दर्जे, और उस पर जो औषधियां देशोपकारक औषधालय में वर्ती जाती हैं, उनमें से कुछ लिखते हैं

आतशक—उपदंश कठिन रोग है। यदि लापरवाही की जाय, तो पीढ़ियों तक पीछा नहीं छोड़ता उपदंश नर तथा मादीन के भेद से दो प्रकार का होता है। नर उपदंश में गहरे घाव केवल लिंग पर होते हैं, मादीन आतशक का विष रक्त में प्रविष्ट हो जाता है और शरीर पर फूट पड़ता है। इस का पहला घाव साधारण होता है। इसके तीन दरजे होते हैं। पहिले दर्जे में घाव केवल जननेंद्रिय पर होता है। दूसरे में शरीर पर काले दाग, ताम्र रंग की फुंसियां और छोटे २ घाव आदि निकलते हैं। तीसरे दर्जे में हड्डी तक प्रभाव चला जाता है। बड़े २ घाव कुष्टवत होते हैं। आतशक के वास्ते कई औषधियां तैयार रहती हैं। साधारण रूप से यह हैं। अपनी अवस्थानुसार मंगवा लें। या सब वृत्तान्त १) फीस के साथ आने पर हम स्वयं निश्चित करते हैं।

उपदंशौषधि नं. १३—उपदंश नर तथा मादीन को १४ दिन में आराम करती है। अव्वल दर्जे में अकसीर है। दूसरे दर्जे में भी गुणकारी है। मू० ४), आधी २),

उपदंशौषधि नं. १४—इससे २० या अधिक से अधिक ४० दिन के भीतर आराम आता है। दर्जा अव्वल में अद्वितीय है। मू० ४० गोली ४)

उपदंशौषधि नं. १६ (उपदंश विरेचन)—जब कि रोग जीर्ण हो चुका हो, या ऐसा दुःसाध्य हो, कि आराम न आता हो, तो पहिले जुल्लाब लेना उचित होता है। जब असूज, कातिक या चैत्र फाल्गुण के उपदंश के फूटने का भय हो तो ऋतु के आरम्भ में यह विरेचन ले लें। मू० ६ माशा १)

उपदंशौषधि नं. १७—यह औषधि द्वितीय तृतीय दर्जे उपदंश दुःसाध्य जीर्णोपदंश के घाव, फोड़ा, फुंसी, व्रणादि को हित कर है, तालू छिद्र को भी गुणकारी है। नासूर को दूर करती है। मू० ६४ गोली ४), ३२ गोली २)

सारसारिष्ट मिश्रित—बहुत सी वैद्यक औषधियों का संग्रह चम्बल, दाद कृष्णादाग, ताम्रवर्ण, धप्पड़ खुजली, आदि व अन्य किसी भी रक्तदोष को दूर कर के शरीर को कुन्दनवत करता है। मू० ३ औंस २), नमूना ।≈)

सोजाक—सोज़ाक में पहिले जलन व पीड़ा होती है, नितान्त कष्ट होता है। दूसरे दर्जे में पीप आना आरम्भ होती है, कुरेह हो जाता है। जलन धीरे २ बन्द हो जाती है और केवल पीप जाती है वा तार से निकलते हैं। इस से भी बढ़ जावे तो, तीसरे दर्जे में मुत्रावरोध हो जाता है मूत्र की नाली संकीर्ण हो जाती है। कभी २ मूत्र रुक जाता है। तीसरे दर्जे में पहुचा हुआ सोज़ाक बड़ी मुश्किल से दूर हो सकता है और जीर्ण हो जावे तो जाता ही नहीं सोजाक के वास्ते बहुत सी औषधियां तैयार रहती हैं। अवस्थानुसार दी जाती हैं। साधारणतः यह हैं:—

औषधि सोजाक नं. १ (सोजोशाफ)—प्रथम दर्जे में रामवाण का काम देती है। २४ घंटे के भीतर जलन दूर होती है। कष्ट कम होता है, थोड़े दिनों में पूर्ण लाभ होता है। मू०४ ड्राम १)न०।)

औषधि सोजाक नं. २ (चिनाक)—बड़े ही अनुभवों के पश्चात् हमारा स्वयं निर्माणकृत यह योग अकसीर सोज़ाक व कुरेह है जो कि सोज़ाक की प्रत्येक अवस्था में गुणकारी है। दाह भी हो, पीप हो या दोनों मिले हुए हों, सबको अकसीर है। शुक्रमेहादि को हितकर है। मू० ६० गोली ४), नमूना १५ गोली १)

औषधि सोजाक नं. ३—यह औषधि केवल कुरेह अर्थात् पीप जाने पर दी जाती है। एक ही दिन के भीतर पीप बन्द होनी आरम्भ होती है। इसके अतिरिक्त उपदंश को हितकर है। मू० २), नमूना ।)

अर्श, प्लीहा, हृदय, यकृत, उदर आदि की औषधियां ।

यूं तो अर्श (बवासीर) ६ प्रकार की होती है, परन्तु बड़े दो ही भेद हैं रक्तार्श व वातार्श । कभी पैतृक भी होती है, जो कष्ट साध्य है । प्रसिद्ध औषधियां लिखी जाती हैं ।

अर्शौषधि न. ३—यह खूनी व बादी दोनों को हितकर है । मूल्य ४० गोली २), नमूना ।)

अर्शौषधि नं. ७—यह विशेष कर रक्तार्श को लाभदायक है । ७ दिन के भीतर रक्त बन्द हो जाता है और ३ सप्ताह में पूर्णतया लाभ होता है । मूल्य ४० गोली २), नमूना ।)

अर्शौषधि नं. ९—यह औषधि बलवर्द्धक, शीघ्रपतन, स्वप्न-दोष, शुक्रमेहादि को भी लाभदायक है । विशेष कर रक्तार्श के लिए उपयोगी है । मू० ३० गोली ५), ६ गोली १)

अर्शौषधि नं. १०—बवासीर खूनी बादी को विशेष कर जब कि कोष्टवद्धता साथ रहती हो, अद्वितीय है । मू० २), न० ।)

प्लीहा--मलेरिया ज्वर अधिक देर रहने से तिल्ली बढ़ जाती है । ज्वर हट जाने पर भी तिल्ली बनी रहती है । कभी उदर की अन्य खराबियों से तिल्ली बढ़ती है । निम्नलिखित औषधियां प्रायः देते हैं ।

प्लीहोदरौषधि नं. २—यह औषधि उस समय दी जाती है, जबकि आमाशय निर्बल हो, तिल्ली साधारतः बड़ी हो । मू०२), न० ।)

प्लीहोदरौषधि नं. ३—पौष्टिक है चेहरे को शीघ्र लाल करती है, बल को बढ़ाती है, अग्नि सदींपन है । मलेरिया के पुराने कीटाणु दूर होते हैं सब प्रकार की तिल्ली दूर होती है । मात्रा २ रत्ती । मूल्य ६ माशा ४) रु०, २॥ मा० १) रुपया

प्लीहारि रस नं. ५—प्लीहा के साथ कोष्टवद्धता हो या तिल्ली बहुत ही पुरानी हो तो यह औषधि गुणदायक है । दूसरी किसी भी औषधि के खाते समय इस औषधि को जारी रक्खा जा सकता है । मूल्य ६० गोली १), नमूना ।)

प्लीहोदरौषधि नं० ६—उस दशा में विशेष रूप से हितकर है, जब कि ज्वर भी साथ हो या कभी २ हो जाता हो। यकृत बिकार को भी लाभ करती है। मूल्य १) नमूना ।)

हयात अफ़ज़ा—हृदय की निर्वलता और धड़कन के वास्ते अनुपम औषधि है। मास में आराम आता है। मू० २), नमूना ।=)

हृदार्णवरस—हृदय की निर्बलता, धड़कन, हृदय के भेद को हितकर है। मू० १६ गोली २)

मण्डूर वटिका—यरक़ान पांडुरोग यकृत निर्बलता इत्यादि के लिए अक्सीर है। मूल्य १६ गोली १)

शर्करारि—मधुमेह, जिस में शक्कर आती है विशेष कर उसके लिए हितकर है मू० ४), नमूना १)

लाल जवाहर—उदर पीड़ा, गुड़गुड़ाहट, वमन, विषूचिका अतिसारादि रोगों को हितकर है। पाचनशक्ति खूब बढ़ती है। मू० २), आधी शीशी १), नमूना ।)

दीपाचन—पाचन के लिए अक्सीर है। कफ़ व बादी को दूर करने वाली भोजन को पचाने वाली, भूख को बढ़ाने वाली, उदरशूल, अफरा, वमन इत्यादि को दूर करने वाली है। मूल्य ॥)

एलवासा—शूल, पेट की बादी, गुड़गुड़ाहट, अफारादि को हितकर, क्षुधावर्द्धक है, कोष्ठबद्धता दूर करता है। मू० १), न० =)

दत्तविरेचन—यह गोलियां जुलाब के लिए अनुपम हैं, एक गोली रात को सोते समय खाने से प्रातः खुल कर १-२ शौच हो जाते हैं। मूल्य ६४ गोली १) रुपया नमूना =)

आराम जान—इससे विरेचन नहीं होता, केवल शौच खुल कर आता है, और प्रतिदिन खाने से अंत्रियों का बल बढ़ कर सतत कोष्ठबद्धता दूर हो जाती है। मूल्य ३२ गोली १), १६ गोली ॥)

श्री पं० ठाकुरदत्त शर्मा वैद्यरचित सर्व साधारण के उपयोगी स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकें

काम व रतिशास्त्र (प्रथम भाग)—इसके भीतर २४५ हस्त लिखित चित्र और ५० फ़ोटो के चित्र हैं। स्त्री और पुरुष के सम्भन्ध पर आज तक ऐसी कोई दूसरी पुस्तक नहीं लिखी गई है। मू० ६), उर्दू ५)

क्या हम लड़का या लड़की अपनी इच्छानुसार उत्पन्न कर सकते हैं?—इच्छानुसार सन्तानोत्पत्ति करने के विषय में आज तक के वैद्यक, यूनानी, डाक्टरी, कुल अनुसन्धानों का पृथक २ वर्णन है। मू० ।)॥, उर्दू =)॥

घर का वैद्य—घरों में बूढ़े, जवान अथवा बालक स्त्री पुरुषों को होने वाले सम्पूर्ण छोटे बड़े रोगों और अचानक होने वाली घटनाओं के लिए प्रयोग बता देती है। मू० ।)॥, उर्दू =)॥

क्या मैं स्वस्थ हूं—आज तक हिन्दी भाषा में कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिखी गई। मर्द, औरत, बच्चा, बूढ़ा, जवान, तन्दुरुस्त बीमार हर एक को ऐसी पुस्तकों के नियमों को जानना चाहिए। मू० ॥।), उर्दू ।≡)॥

मीठी निद्रा—जीवन का तृतीयांश से अधिक निद्रा में व्यय होता है पढ़ो और आयु को बढ़ाओ। मू० १।), उर्दू ॥।)॥

स्वास्थ्यरक्षा के दस नियमों का वर्णन—यह एक अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है। साधारण नियमों के पालन से स्वास्थ्य प्राप्त होता है और बुढ़ापे में भी जवानी का आनन्द आ सकता है। मू० ॥।), उर्दू ।≡)॥

ऋतु चर्या—इसमें ६ ऋतुओं का सविस्तर वर्णन, इनका मनुष्यों पर प्रभाव, ऋतु अनुसार रोगादि का वर्णन और इलाज रहन सहन खाने पीने, पहिनने के नियम उत्तमता से वर्णन किए हैं। मू० १।), उर्दू ॥।)॥

भोजन और स्वास्थ्य—भोजन सम्बन्धी अज्ञान के कारण वर्णन है। मू० १।), उर्दू ।॥)॥

दूध और दूध की वस्तुयें—इसमें दूध और दूध से बनने वाली तमाम वस्तुओं का वर्णन है। मू० १॥), उर्दू १।)

मेरे डाक्टर चचा ने मुझे गृस्हथ की शिक्षा कैसे दी—एक बालक को उसके डाक्टर चचा ने गृहस्थ के कार्यों की शिक्षा बहुत ही उत्तम प्रकार से दी है। मू० ।), उर्दू –)॥

वीर्य—इसमें वीर्य के सम्बन्ध में पूरा ज्ञान, स्त्री व पुरुष की जननेद्रियों का आवश्यक वर्णन और स्त्री के वीर्य सम्बन्धी पूर्ण व्याख्या है। मू० ॥=), उर्दू ।=)॥

हई—हई का सम्पूर्ण व्याख्या और सेवन बिधि दरज ह। मू० ।), उर्दू –)॥

ब्रह्मी—इसमें ब्राह्मी का पूरा वर्णन करके सेवन करने के कई उपाय लिखे गए है। मू० –), उर्दू)॥

शीघ्रपतन—सविस्तार चिकित्सा और सर्व प्रकार के योग भी दिए गए हैं। मूल्य ।=)॥, उर्दू ।–)॥

मलेरिया ज्वर का वर्णन—मलेरिया के विषय में आज तक का अनुसन्धान, रोग लगने की विधि, उस के कारण लक्षण दिए हैं। मूल्य ॥=), उर्दू ।–)॥

स्थानाभाव के कारण पुस्तकों के नाम कीमतें लिखते हैं

डाक्टर लुई कोहनी के चार स्नान =)॥, भारतवासियों की शारीरिक निर्बलता ॥।)॥, प्लेग प्रतिबन्धक ॥=), प्रसूतकाल ॥=) शिशुपालन १), रस हृदय तन्त्र ॥), कोष्टबद्धता ॥।) सोज़ाक ॥।), हिस्ट्रिया ॥), दोषज्ञान ॥।), शीतला१), इन्फ्ल्यूएञ्जा ॥),विषचिकित्सा प्रथम भाग ।≡), विष चिकिन्सा द्वितीय भाग १।=), प्रदर रोग ।–), गुप्त प्रकाश २॥)

पुस्तकें मिलने का पताः अमृतधारा लाहौर।

१००००-२—३१